बृहत्त्रयी में मानवाधिकार

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

अनुसंधानकर्त्री,

श्रीमती दीपशिखा पाराशर

शोध–निर्देशिका,

डॉ. साधना कंसल,

व्याख्याता, संस्कृत,

राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2017

Govt. College Kota, (Raj)

S.No..... **Date :.....**

Department of Sanskrit

PRE-SUBMISSION SEMINAR CERTIFICATE

This is to certify that :-

1) A pre-submission seminar for Ph.D. Thesis was held on 10/01/2017 in the dept. of Sanskrit, Govt. College, Kota

2) In this seminar Mrs. Deepshikha Parashar research scholar in the dept. of Sanskrit, gave a presentation on her topic 'बृहत्त्रयी में मानवाविधकार'

3) All the members present in the meeting appreciated the presentation given by Mrs. Deepshikha Parashar.

4) On behalf of all the members we recommend the thesis to be submitted for the degree of Ph.D.

Dr. Sadhana Kansal	**HOD Sanskrit**	**Principal**
Supervisor	**Govt. College, Kota**	**Govt. College, Kota**

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती दीपशिखा पाराशर आत्मजा श्री राममूर्ति पाराशर द्वारा प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध "**बृहत्त्रयी में मानवाधिकार**" मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है। शोधार्थी ने प्रतिवर्ष 200 दिन मेरे पास नियमित रहकर कार्य किया है। यह शोध–प्रबन्ध मौलिक एवं सारगर्भित है। शोध–प्रबन्ध को मूल्यांकन हेतु अग्रसारित किया जाता है।

डॉ. साधना कंसल,

व्याख्याता, संस्कृत,

राजकीय महाविद्यालय,

कोटा (राज.)

प्राक्कथन

मानवाधिकार का सम्बन्ध समस्त मानव जाति से है। जितना प्राचीन मानव है, उतने ही पुरातन उसके अधिकार भी हैं। इन अधिकारों की चर्चा भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रारम्भ से ही होती आई है, भले ही वर्तमान रूप में मानवाधिकारों को स्वीकृति उतनी प्राचीन न हो किन्तु साहित्य तथा समाज में मनुष्यों के सदा से ही कुछ सर्वमान्य तथा कुछ सीमित स्थितियों में मान्य अधिकार रहे हैं। मानवाधिकारों की आधुनिक व्याख्या के संदर्भ में प्राचीन साहित्य में वर्णित मानवाधिकारों का अध्ययन आज के समय में निश्चय ही प्रासंगिक व समीचीन है। यही कारण है कि इस विषय को शोध हेतु चुनना उपयुक्त प्रतीत हुआ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्राचीन संस्कृत साहित्य में "सर्वेभवन्तुसुखिनः" का उल्लेख मानव अधिकारों की पुष्टि करता हैं किन्तु संस्कृत साहित्य में इस विषय के अध्ययन की दिशा में अभी अधिक प्रयास नहीं किये गए। विषय की महत्ता तथा प्रासंगिकता को देखते हुए तथा यह जानते हुए कि संस्कृत साहित्य मानवाधिकारों का उद्घोष करने में अग्रणी है, मुझे प्रतीत हुआ कि इस विषय पर शोध कार्य करने की आवश्यकता है। संस्कृत का साहित्य अत्यन्त विशाल है। एक सामान्यजन के लिए सीमित समयावधि में उस विशाल साहित्य का अवलोकन करना असम्भव है अतः मैंने शोध हेतु संस्कृत की तीन प्रतिष्ठित रचनाओं के समूह 'बृहत्त्रयी' को चुना। 'बृहत्त्रयी' में संस्कृत–साहित्य की परम्परा के अनुसार अनेक स्थानों पर मानवाधिकारों का स्पष्ट वर्णन दिखाई देता है। विशेषकर स्त्रियों के अधिकार, बालकों के अधिकार और अन्य वर्गो के अधिकारों के संदर्भ में उनकी विवेचना का प्रयास किया गया है।

इसके लिए बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों का चयन किया गया–

–किरातार्जुनीयम् –महाकविभारवि
–नैषधीयचरितम् –महाकविश्रीहर्ष
–शिशुपालवधम् –महाकविश्रीमाघ

विषय का विभाजन इस प्रकार किया गया कि सबसे पहले स्त्री, जोकि मानव समाज की नींव है और समाज में बहुत अहम् भूमिका निभाती है, उसके मानवाधिकारों को उजागर किया गया। उसके पश्चात् बालक, जो मानव समाज का भविष्य हैं, उनके अधिकारों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। इसके उपरांत समाज के अन्य वर्ग यथा–कलाकार समुदाय, सेवक, दास, प्रजाजन, किसान, मोची, जुलाहा, आदि के अधिकारों का वर्णन है। तत्पश्चात् गणिका, विधवा स्त्री एवं अन्य सामान्य वर्ग के लोगों के अधिकारों को उजागर किया गया है, जिससे एक स्वस्थ और सुगठित समाज का निर्माण हो सके। इस प्रकार, यह शोध–कार्य तात्कालीन समाज के मानवाधिकार परिदृश्य को रेखांकित करता है और विशेष रूप से मानव के रूप में स्त्री के अधिकार की स्थिति को स्थापित करता है।

इस अध्ययन को संपन्न करने में मुझे जिन लोगों का अमूल्य सहयोग और मार्ग निर्देशन प्राप्त हुआ है, मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उन सबके प्रति भी अपना आभार प्रकट करूं। सर्वप्रथम, मैं संस्कृत विदुषी डॉ. (श्रीमती) साधना कंसल को कोटि–कोटि धन्यवाद प्रेषित करना चाहती हूँ। उनकी प्रेरणा और मार्ग निर्देशन से ही इतना महत्त्वपूर्ण कार्य संभव हो पाया। छात्रों के लिए प्रेरणा की पुंज डॉ. (श्रीमती) साधना कंसल, राजकीय महाविद्यालय, कोटा में संस्कृत की व्याख्याता हैं। मैं पुनः उनका आभार व्यक्त करना चाहती हूँ क्योंकि उनके कुशल निर्देशन और समुचित उत्साहवर्धन से ही यह महत्त्वपूर्ण शोध–कार्य संभव हो पाया।

इसके अतिरिक्त, राजकीय महाविद्यालय, कोटा के पुस्तकालय, दिल्ली संस्कृत अकादमी, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (दिल्ली), राजकीय पुस्तकालय (करौली), के स्टाफ का भी मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

मेरे जीवन सहचर श्री गजेन्द्र शुक्ला मेरी हर उपलब्धि में मेरे साथ कदम से कदम मिलाकर चले हैं गृहस्थ जीवन के साथ ही मेरी प्रत्येक सफलता में वो मेरे पूरक रहे हैं मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे मार्ग को हमेशा निष्कण्ठक बनाए रखते हुए प्रतिपल मेरे इस महत् कार्य में अपना पूर्णरूपेण योगदान दिया है।

प्रो. मनोज कुमार मिश्र, तथा सुश्री सुषमा शर्मा का भी उनके बहुमूल्य सहयोग हेतु आभार। आदरणीय डॉ. सुरेश शर्मा का आभार व्यक्त करना भी आवश्यक है क्योंकि इस कार्य की पूर्ति में उनके समय–समय पर दिए गए मार्गदर्शन व प्रेरणा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए अपने माता–पिता का धन्यवाद ज्ञापित करने के लिए मैं शब्दों की असामर्थ्य को अनुभव कर सकती हूँ। मेरे पूज्य सास–ससुर ने भी मेरे उच्च शिक्षा प्राप्ति के अधिकार की रक्षा में सहृदयतापूर्वक सहयोग किया। अतः उनके प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ। मेरी नन्हीं पुत्री ने अपनी बाल क्रीड़ाओं से मेरा मनोरंजन कर अध्ययन करने हेतु आवश्यक ताजगी बनाए रखने में जो अप्रत्यक्ष आह्लादमय सहयोग किया उसके लिए उसे हृदय तल से स्नेह व आशीर्वाद।

यदि मेरे इस शोध कार्य से विद्वद् वर्ग थोड़ा साभी सन्तोष पास के, यदि संस्कृत साहित्य के अध्ययन के क्षेत्र में किंचित भी सहयोग हो सके तो यह मुझे कृतार्थ करने हेतु पर्याप्त होगा। विद्वज्जनों के आशीर्वाद की कामना में।

शोधार्थी

श्रीमति दीपशिखा पाराशर

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय : मानवाधिकार–एक सामान्य परिचय **1–44**

खण्ड (क) : मानवाधिकार की अवधारणा

खण्ड (ख) : परिभाषा

खण्ड (ग) : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

खण्ड (घ) : संस्कृत साहित्य के संदर्भ में मानवाधिकार

संदर्भ सूची

द्वितीय अध्याय : बृहत्त्रयी के ग्रन्थों का परिचय **45–112**

खण्ड (क) : भारवि कृत किरातार्जुनीयम्

खण्ड (ख) : माघ कृत शिशुपालवधम्

खण्ड (ग) : श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम्

संदर्भ सूची

तृतीय अध्याय : महिलाओं के मानवाधिकार **113–207**

खण्ड (क) महिला–अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

खण्ड (ख) द्रौपदी के प्रतिकार की पृष्ठभूमि में स्त्रियों के अधिकार

खण्ड (ग) मानव के रूप में स्त्री के अधिकार

1. सामाजिक अधिकार

2. राजनैतिक अधिकार

3. सम्पत्ति विषयक अधिकार

4. सांस्कृतिक अधिकार

संदर्भ सूची

चतुर्थ अध्याय : बालकों एवं अन्य वर्गों के मानवाधिकार 208–241

खण्ड (क) : बालकों के मानवाधिकार

1. अस्तित्व रक्षा का अधिकार

2. उत्तम पोषण का अधिकार

3. शिक्षा का अधिकार

4. आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार

5. सम्पत्ति का अधिकार

6. विवाह का अधिकार

खण्ड (ख) : अन्य वर्गों के मानवाधिकार

1. सेवकों के अधिकार

2. कलाकारों के अधिकार

3. प्रजा के अधिकार

संदर्भ सूची

पंचम अध्याय : उपसंहार 242–249

संदर्भ ग्रन्थ सूची 250–255

प्रथम अध्याय

मानवाधिकार – एक सामान्य परिचय

खण्ड (क) : मानवाधिकार की अवधारणा

खण्ड (ख) : परिभाषा

खण्ड (ग) : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

खण्ड (घ) : संस्कृत साहित्य के संदर्भ में मानवाधिकार

मानवाधिकार – एक सामान्य परिचय

सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य के अधिकारों व कर्त्तव्यों का भी निर्धारण किया गया। मानव होने के कारण प्राप्त अधिकार ही मानवाधिकार हैं। वर्तमान समय में मानवाधिकार की चर्चा प्रायः सुनाई देती है, किन्तु प्राचीन काल से ही मानवाधिकार अपने वर्तमान पारिभाषिक स्वरूप में भले न रहे हों परन्तु इसके प्रति चेतना हर समय किसी न किसी रूप में अवश्य रही है। 'मानवाधिकार' शब्द का उल्लेख न करने के बावजूद मानवाधिकारों के सम्बन्ध में समाज़ ने व्यापक चेतना जागृत करने का काम लगभग हर समाज के महापुरुषों ने समय–समय पर किया। अगर हम भारतीय इतिहास में इसके उदाहरण ढूंढें, तो अनेकों स्वरूप मौजूद हैं। कभी गौतम बुद्ध और महावीर जैन, कभी कबीर, मीरा और तुलसी, कभी ज्योतिराव फुले, स्वामी विवेकानंद, राजा राममोहन राय, तो कभी रविन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी और अम्बेडकर, ये समस्त महापुरुष, मनुष्य जीवन के लक्ष्यों की खोज़ में मनुष्य मात्र की एकता, समानता एवं गरिमा के पक्षधर रहें हैं।

वर्तमान शोध इसी विषय पर आधारित है। संस्कृत साहित्य विशेषकर 'बृहत्त्रयी' में मानवाधिकारों के संदर्भ मे दिये गये दृष्टिकोण को उज़ागर करना ही इस शोध–अध्ययन
का प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए सर्वप्रथम मानवाधिकार की अवधारणा को स्पष्ट करना आवश्यक है।

खण्ड (क) : मानवाधिकार की अवधारणा

सब जीवों में मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम कृति है। अतः मानव द्वारा ही बनाए गए इस समाज में, उसे मानवीय मूल्यों और संबंधों को प्राथमिकता देने का अधिकार दिया जाना चाहिए। मानवाधिकार वस्तुतः वो मूल या नैसर्गिक अधिकार हैं,

जो हर मनुष्य को प्रकृति द्वारा प्रदत्त है। मानवाधिकार जीवन की वे दशायें हैं जो मानव को समाज एवं कानून सभी कार्यों को सम्पादित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि ऐसे अधिकार जो प्रत्येक मनुष्य को जन्मजात प्राप्त होते है, मानवाधिकार कहलाते हैं।

मानवाधिकार प्राप्त करके ही प्रत्येक मनुष्य गरिमा से जीवनयापन कर सकता है, लोकतान्त्रिक अधिकारों का उपभोग कर सकता है, राज्य का कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सकता है और स्वयं का विकास कर सकता है। मानवाधिकारों की कोई सूची बनाना एक असंभव कार्य है। क्योंकि मानवाधिकारों में अन्य अधिकारों के साथ जीवन, स्वतन्त्रता और सुख की साधना का अधिकार भी सम्मिलित है। "संयुक्त राष्ट्र महासभा" द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को सार्वभौमिक 'मानवाधिकार घोषणा पत्र' जारी किया गया, इसलिए प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को 'अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस' के रूप में मनाया जाता है। निर्बल एवं असहाय व्यक्तियों और समूहों के मानवाधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए तथा अमानुषिक कृत्यों को रोकने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ एवं कुछ अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की निगरानी में कदम उठाये जा रहे है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में जब मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा जारी की गई थी, वह ऐसा समय था जब द्वितीय विश्व–युद्ध की पीड़ा से त्रस्त, मानवता शांति की मनोरम स्थली पाने को व्याकुल थी। घोषणा के प्रपत्र में 30 अनुच्छेद हैं तथा एक लम्बी एवं व्यापक प्रस्तावना है। 'प्रस्तावना संसार में स्वतन्त्रता, न्याय और शान्ति की स्थापना का लक्ष्य रखती है'।[1]

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानावाधिकारों के लिये जो सार्वभौमिक घोषणा की है, उसका हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार है–[2]

"मानव परिवार के सभी सदस्यों की अन्तर्निहित गरिमा और सम्मान तथा अखिल विश्व में स्वतन्त्रता, न्याय और शांति मानवाधिकारों के आधार हैं। मानव अधिकारों की उपेक्षा और अवमान के परिणाम स्वरूप ऐसे बर्बर कार्य हुए है, जिन्होनें

मानव की अन्तर्आत्मा पर आघात किया है और ऐसे विश्व के निर्माण को, जिसमें सभी मानव वाक् स्वातंत्र्य और विश्व की स्वतन्त्रता का तथा भय अभाव से मुक्ति का उपभोग करेंगें, जिसे जनसामान्य की उच्चतम आकांक्षा घोषित किया गया है, यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध अन्तिम अस्त्र के रूप में विद्रोह का अवलम्ब लेने के लिए विवश नहीं किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि मानव अधिकारों का संरक्षण विधिसम्मत शासन द्वारा किया जाना चाहिए।

राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास की वृद्धि करना आवश्यक है। संयुक्त राष्ट्र के लोगों ने 'चार्टर' में मूल अधिकारों में मानव देह की गरिमा और महत्त्व तथा पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और सामाजिक प्रगति करने तथा अधिकाधिक स्वतंत्रता के साथ उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति का निर्णय किया है।

सदस्य राज्यों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति सार्वभौम सम्मान जाग्रत करेगें और उनका पालन करायेंगे। इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति एक ही दृष्टि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह सफल बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए महासभा मानव अधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा को सभी लोगों और राष्ट्रों के लिए इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सामान्य मानक के रूप में उद्घोषित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग, इस घोषणा को निरन्तर ध्यान में रखते हुए शिक्षा और संस्कार द्वारा इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान जाग्रत करेगा और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रगामी उपायों के द्वारा सदस्य राज्यों के लोगों के बीच इन अधिकारों की विश्वव्यापी ओर प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने के लिए प्रयत्न करेगा।

अनुच्छेद–1

सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र एवं समान हैं। उन्हें बुद्धि और अन्तर्चेतना प्रदान की गई है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व से कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद–2

प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा से उपवर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है। इसमें मूलवंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार, राष्ट्रीयता एवं सामाजिक उद्‌भव, सम्पत्ति, जन्म या अन्य परिस्थितियों के आधार पर कोई भेद नहीं किया जायेगा। इसके अतिरिक्त किसी देश या राज्य क्षेत्र की, चाहे वह स्वाधीन हो, न्यास के अधीन हो, अस्वशासी हो या प्रभुता पर किसी मर्यादा के आधीन हो, राजनैतिक अधिकारिता–विषयक या अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के आधार पर उस देश या राज्य क्षेत्र के किसी व्यक्ति से कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–3

प्रत्येक व्यक्ति को प्राण स्वतंत्रता और दैहिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद–4

किसी भी व्यक्ति को दास या गुलाम नहीं रखा जाएगा। सभी प्रकार की दासता और दास व्यापार का निषेध होगा।

अनुच्छेद–5

किसी भी व्यक्ति को यंत्रणा नहीं दी जाएगी या उसके साथ क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जाएगा या उसे ऐसा दण्ड नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद–6

प्रत्येक व्यक्ति को सर्वत्र विधि समकक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार दिया जाएगा।

अनुच्छेद–7

सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान हैं और किसी विभेद के बिना विधि के समान संरक्षण के हकदार हैं। सभी व्यक्ति इस घोषणा के अतिक्रमण में विभेद के विरूद्ध और ऐसे विभेद के उद्द्वीपन के विरूद्ध समान संरक्षण के हकदार हैं।

अनुच्छेद–8

प्रत्येक व्यक्ति को संविधान या विधि द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यो के विरूद्ध राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचारों का अधिकार है।

अनुच्छेद–9

किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से गिरफ्तार, निरूद्ध या निर्वासित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–10

प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों और बाध्यताओं के और उसके विरूद्ध अपराधिक आरोप की अवधारणा में पूर्ण रूप से स्वतंत्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार है।

अनुच्छेद–11 (1)

ऐसे व्यक्ति को जिस पर दंडित अपराध का आरोप है, यह अधिकार है कि उसे तब तक निरपराध माना जाएगा जब तक कि उसे लोक विचारण में, जिसमें उसे अपनी

प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी सुनिश्चितताएं प्राप्त हों, विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं कर दिया जाता।

अनुच्छेद–11 (2)

किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण जो किए जाने के समय राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन दांडिक अपराध नहीं था, किसी दांडिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाएगा। उस शास्ति से अधिक शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी, जो उस समय लागू थी, जब अपराध किया गया था।

अनुच्छेद–12

किसी भी व्यक्ति को एकांतता, कुटुम्ब, घर या पत्र–व्यवहार के साथ मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और उसके सम्मान और ख्याति पर प्रहार नहीं किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे हस्तक्षेप या प्रहार के विरूद्ध विधि से संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद–13 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक राज्य की सीमाओं के भीतर निवास और संचरण की स्वतन्त्रता का अधिकार है।

अनुच्छेद–13 (2)

प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी देश को या अपने देश को छोड़ने का और अपने देश में वापिस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद–13 (3)

इस अधिकार का अवलम्बन अराजनीतिक अपराधों या संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों और सिद्धान्तों के प्रतिकूल कार्यों से वास्तविक रूप से उद्भूत अभियोजनों की दशा में नहीं लिया जा सकेगा।

अनुच्छेद–14 (1)

किसी भी व्यक्ति को प्रताड़ना से बचने के लिए किसी भी देश में शरण लेने और सुख से रहने का अधिकार है।

अनुच्छेद–14 (2)

अराजनीतिक अपराधों अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों के विरूद्ध होने वाले कार्यो के फलस्वरूप मूलतः दंडित व्यक्ति अधिकार से वंचित रहेंगें।

अनुच्छेद–15 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रीयता का अधिकार है।

अनुच्छेद–15 (2)

किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से न तो राष्ट्रीयता से और न राष्ट्रीयता परिवर्तित करने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

अनुच्छेद–16 (1)

व्यस्क पुरूषों और स्त्रियों को मूलवंश, राष्ट्रीयता या धर्म के कारण किसी सीमा के बिना, विवाह करने और कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार है। वे विवाह के समय, विवाहित जीवन काल में तथा उसके विघटन पर समान अधिकारों के हकदार हैं।

अनुच्छेद–16 (2)

विवाह के इच्छुक पक्षकारों से स्वतंत्र और पूर्ण सम्मति से ही विवाह किया जाएगा।

अनुच्छेद–16 (3)

कुटुम्ब समाज की नैसर्गिक और सामाजिक इकाई है और समाज और राज्य द्वारा सरंक्षण का हकदार है।

अनुच्छेद–17 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर सम्पत्ति का स्वामी बनने का अधिकार है।

अनुच्छेद–17 (2)

किसी को भी उसकी सम्पत्ति से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–18

प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत अपने धर्म या विश्वास को परिवर्तित करने की स्वतन्त्रता और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा, व्यवहार, पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतन्त्रता
भी है।

अनुच्छेद–19

प्रत्येक व्यक्ति को अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इस अधिकार के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने और किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किए बिना जानकारी मांगने, प्राप्त करने और देने की स्वतन्त्रता भी है।

अनुच्छेद–20 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्वक सम्मेलन और संगम करने की स्वतन्त्रता का अधिकार है।

अनुच्छेद–20 (2)

किसी भी व्यक्ति को किसी संगम में सम्मिलित होने के लिए विवश नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–21 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में सीधे या स्वतन्त्रता पूर्वक चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद–21 (2)

प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की लोकसभा में समान रूप से पहुँच, का अधिकार है।

अनुच्छेद–21 (3)

लोकमत, सरकार के प्राधिकार का आधार होगा। इसकी अभिव्यक्ति आवधिक और वास्तविक निर्वाचनों में होगी, जो सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे तथा गुप्त मतदान द्वारा समतुल्य स्वतन्त्र मतदान की प्रक्रिया द्वारा चुने जाएँगे।

अनुच्छेद–22

प्रत्येक व्यक्ति कोसमाज के सदस्य के रूप में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और राष्ट्रीय प्रयास और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से और प्रत्येक राज्य के गठन और संसाधनों के अनुसार ऐसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को प्राप्त करने का हकदार है, जो उसकी गरिमा और उसके व्यक्तित्व के उन्मुक्त विकास के लिए अनिवार्य है।

अनुच्छेद–23 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को काम करने का, नियोजन के स्वतंत्र चयन का, कार्य की न्यायोचित और अनुकूल दशाओं का और बेरोजगारी के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद–23 (2)

प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी विभेद के समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है।

अनुच्छेद–23 (3)

प्रत्येक व्यक्ति जो कार्य करता है, ऐसे न्यायोचित और अनुकूल पारिश्रमिक का अधिकार है, जिससे स्वयं उसका और उसके कुटुम्ब का मानव गरिमा के अनुरूप जीवन सुनिश्चित हो जाए और यदि आवश्यक हो तो सामाजिक संरक्षण के अन्य साधनों द्वारा उसे अनुपूरित किया जाए।

अनुच्छेद–23 (4)

प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण के लिए, व्यवसाय संघ बनाने और उसमें सम्मलित होने का अधिकार है।

अनुच्छेद–24

प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। जिसके अन्तर्गत कार्य के घण्टों की युक्तियुक्त सीमा और वेतन आवधिक छुट्टियाँ भी है।

अनुच्छेद–25 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके कुटुम्ब के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पर्याप्त है, जिसके अन्तर्गत भोजन, वस्त्र, निवास स्थान, चिकित्सा तथा आवश्यक सेवाएँ भी हैं और बेरोजगारी, रूग्णता, अशक्तता, वैधव्य, वृद्धावस्था या उसके नियंत्रण के बाहर परिस्थितियों में जीवन यापन के अभाव की दशा में सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद–25 (2)

प्रत्येक व्यक्ति मातृत्व और बाल्यकाल में विशेष देखभाल और सहायता का हकदार है। सभी बच्चे, चाहे उनका जन्म विवाहित जीवन काल में हुआ हो या अन्यथा, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त करेंगें।

अनुच्छेद–26 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है, जो कम–से–कम प्रारम्भिक और मौलिक अवस्था में निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और वृतिक शिक्षा साधारणतः उपलब्ध कराई जाएगी और उच्च शिक्षा सभी व्यक्तियों को गुणागुण के आधार पर समान रूप से प्राप्त होगी।

अनुच्छेद–26 (2)

शिक्षा का लक्ष्य मानव शक्ति का पूर्ण विकास एवं मानवाधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की वृद्धि हो। शिक्षा सभी राष्ट्रों, मूलवंश विषयक या धार्मिक समूहों के बीच समादर, सहिष्णुता और मैत्री की अनुवृद्धि के साथ शांति बनाए रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र के कार्यकलापों को अग्रसर करेंगी।

अनुच्छेद–26 (3)

माता–पिता को यह चयन करने का पूर्ण अधिकार है कि उनकी संतान को किस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाए।

अनुच्छेद–27 (1)

प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में मुक्त रूप से भाग लेने, कलाओं का आनंद लेने और वैज्ञानिक प्रगति और उसके फायदों में हिस्सा प्राप्त कर सकने का अधिकार है।

अनुच्छेद–27 (2)

प्रत्येक व्यक्ति को स्वनिर्मित वैज्ञानिक, साहित्यिक अथवा कलात्मक कृति के परिणाम स्वरूप होने वाले नैतिक और भौतिक हितो के संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद–28

प्रत्येक व्यक्ति ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का हकदार है, जिसमें इस घोषणा में वर्णित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद–29 (1)

समाज के प्रत्येक व्यक्ति के कुछ ऐसे कर्तव्य हैं जिनसे उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।

अनुच्छेद–29 (2)

प्रत्येक व्यक्ति पर अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रयोग में वही मर्यादाएँ लगाई जाएँगी जो अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की सम्यक मान्यता और सम्मान सुनिश्चित करने और प्रजातंत्रात्मक समाज में नैतिकता, लोक व्यवस्था और साधारण कल्याण की न्यायोचित अपेक्षाओं को पूरा करने के प्रयोजन के लिए विधि द्वारा अवधारित की गई है।

अनुच्छेद–29 (3)

किसी भी दशा में इन अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों और सिद्धांतों का प्रतिकूल प्रयोग नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–30

इस घोषणा की किसी बात का यह निर्वचन नहीं किया जाएगा कि उसमें किसी राज्य, समूह या व्यक्ति के लिए कोई ऐसा कार्यकलाप या कोई ऐसा कार्य करने का अधिकार विलक्षित है, जिसका लक्ष्य इसमें उपवर्णित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं में से किसी का विनाश करना है।

इस प्रकार मानवाधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा विश्व के मानव समाज के लिए मानवाधिकारों के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण सुरक्षा कवच है।

यदि संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार संबंधी सार्वभौमिक घोषणा पत्र का सभी राष्ट्र व प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण आत्मीय निष्ठा के साथ पालन करें, तो भारतीय 'वसुधैव कुटुंबकम' की भावना सम्पूर्ण विश्व में साकार हो सकती है तथा व्याप्त वैमनस्य, रंगभेद, क्षेत्रवाद व आतंकवाद समूल नष्ट हो जाएगा, जिससे विश्व एक आदर्श समाज में बदल सकता है।

खण्ड (ख) : परिभाषा

सरल शब्दों में कहा जाए तो मानव अधिकार वे अधिकार हैं, जो मानवीय जीवन एवं व्यक्तित्व के विकास के लिए अनिवार्य हैं। लगभग सभी समाजों में मानव जाति का परम लक्ष्य एक मानवीय समाज की रचना करना रहा है। यह मनुष्य की प्राचीनतम आकांक्षा रही है। इसकी जड़ें प्राचीन भारतीय सभ्यता, विशेषकर वैदिक साहित्य और बौद्ध साहित्य तथा उनके समकालीन उपदेशों में मिलती हैं। मानवता के बारे में मानव समाज में विभेद हो सकता है लेकिन मौलिक मानवीय अवधारणा सभी तरह के वाद–विवाद में समान रही है। समकालीन समाज में इसे मानव अधिकार के रूप में जाना जाता है। अतः हम संक्षेप में ऐसा भी कह सकते हैं कि मानवाधिकार प्रत्येक मनुष्य का वह अधिकार है, जिसके द्वारा मानवता को बनाये रखा जा सके।

अपने विकास के चरणों में मानव समाज कई परिस्थितियों एवं स्तरों में विकसित हुआ है– जाति, रंगरूप, लिंग, व्यवसाय, भौतिक क्षमता के आधार पर विभाजन हो सकता है लेकिन सन्तुलित विकास एवं समतावादी समाज की स्थापना करना, विभेदों के बावजूद मानवाधिकार का उद्देश्य रहा है। सभी समाजों के लिए मूलभूत होने के कारण इन अधिकारों को मौलिक अधिकार, मूलभूत अधिकार, प्राकृतिक अधिकार और सर्वोपरि रूपों में मानवाधिकार के रूप में जाना जाता है।

'मानव अधिकार' की अवधारणा मनुष्य के सम्पूर्ण विकास से है। वर्तमान समय में राज्य की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है, कोई राज्य मानव अधिकारों का संरक्षण एवं विकास कैसे करता है, इससे उस राज्य के चरित्र का पता चलता है।'[3] अधिकार एवं कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक आदमी के लिए कर्त्तव्य, दूसरे के लिए अधिकार की स्थिति है। सामाजिक एवं आर्थिक आधार किसी भी व्यक्ति के नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों की पहली शर्त है। इन अधिकारों को सुनिश्चित किए बिना मनुष्य के राजनैतिक एवं नागरिक अधिकारों को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता।

हैराल्ड लास्की के शब्दों में "अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता"[4] मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो एक मानव को मानव होने के कारण आवश्यक रूप से मिलने चाहिएं, अर्थात् अधिकार व्यक्ति का वह दावा है जिससे समाज एवं राज्य को मान्यता प्राप्त होती है।

"मानव अधिकारों का वैश्विक घोषणा–पत्र वास्तव में समस्त मानव जाति के लिए कुछ मूलभूत अधिकारों की घोषणा करता है, स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, मानव अधिकारों के महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण हैं।"[5]

द्वितीय विश्व–युद्ध के कारण सम्पूर्ण की विश्व व्यवस्था एवं मानव मूल्यों को ठेस पहुँची, युद्ध समाप्त करने के प्रयासों के साथ ही एक समता मूलक विश्व व्यवस्था

की खोज करना महत्त्वपूर्ण है। इसी के साथ मानव जाति के मूलभूत अधिकारों को रेखांकित करने का नाम ही मानवाधिकार है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने 10 दिसम्बर, 1948 को वैश्विक मानवाधिकार घोषणा–पत्र को अपनाया है। दुनिया के सभी देशों एवं लोगों के लिए सामान्य उद्देश्य की पूर्ति को लक्ष्य रखा गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत, सामूहिक, राष्ट्रीय, संस्थागत एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों की ज़रूरत है।

भारत में राष्ट्रपति द्वारा 27 दिसम्बर 1993 को एक अध्यादेश जारी किया गया तथा संसद द्वारा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित करके राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकारआयोग एवं मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना की गई। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना से ही कार्यक्रम एवं नीति निर्धारण, प्रतिमानों तथा नियमों के निर्माण एवं क्रियान्वन एवं मूल्यांकन का पर्याप्त सूत्रपात हुआ। आयोग ने मानवाधिकारों के बारे में महत्त्वपूर्ण काम किया। पूरे भारत में सरकार ने मानवाधिकारों की राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय संस्थाओं के संरक्षण एवं प्रोत्साहन हेतु युद्ध स्तर पर कार्य किया है। मानव जीवन के समग्र विकास के लिए सभी मानवाधिकारों की सुरक्षा करना अनिवार्य है।

सारांशतः मानवाधिकारों के अन्तर्गत सभी व्यक्तियों को बिना किसी विभेद के समान अधिकार प्राप्त होते हैं। मूलतः मानवाधिकार की अवधारणा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित उस सार्वभौमिक घोषणा–पत्र से सम्बन्धित है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व के समस्त राष्ट्रों के प्रत्येक नागरिक को सम्मान–पूर्वक जीवन–यापन करने का अधिकर दिया गया। इसके अन्तर्गत जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, जन्म अथवा अन्य किसी प्रकार के भेद–भाव के बिना सभी व्यक्तियों को जीवन जीने का अधिकार व स्वतन्त्रता दी गई है।

खण्ड (ग) : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का निर्बाध अवसर ही स्वतन्त्रता है, जो कि मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। मानव एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में जन्म लेता है, परन्तु विडम्बना यह है कि स्वतन्त्रता हेतु उसे जीवन–भर संघर्षरत रहना पड़ता है। संघर्ष सम्भवतः स्वतन्त्र मानव की नियति रहीं है और सम्भवतः आने वाले भविष्य में भी रहेगी। संघर्ष एवं विकास ऐसा लगता है, मानव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार है।

अधिकार का फल, कर्त्तव्य के फूल में लगा है। अधिकार प्राप्ति हेतु निस्पृह होकर कर्तव्य–पालन की प्रेरणा भगवान श्रीकृष्ण ने गांडीवधारी अर्जुन को श्रीमद्भगवद्गीता में "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"[6] द्वारा प्रदान की थी। संघर्ष की नियति के निर्वाह में ही मानवाधिकारों एवं मानव–सभ्यता के विकास की कहानी समाई हुई है।

परिवार, समाज और शासकों के कायदे–कानून मानव की स्वतन्त्रता को कदम–कदम पर प्रतिक्षण बाधित करते रहते है, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के अधिकार के प्रति पूर्ण निष्ठा के साथ मानव, जीवन की समस्त चुनौतियों के सामने ताल ठोंक कर खड़ा हो जाता है। इस प्रकार मानवाधिकार प्राप्ति केलक्ष्य को लेकर वह अपने निर्धारित विकास की राह पर आगे बढ़ता रहता है।

मानवीय अधिकार, मानव अस्मिता का कवच, विश्व–शान्ति एवं कल्याण का मंत्र है। हकीकत में मानवाधिकार, मानवता रूपी वृक्ष के खाद और पानी हैं। इनको स्वयं जगत के स्वामी ईश्वर ने सूर्यदेव की प्रखर किरणों को लेकर मानव प्रकृति की पुस्तक में ऐसे शब्दों में लिखा है, जिसको कोई मानवीय शक्ति नहीं मिटा सकती। मानव जाति के उद्गम से लेकर अब तक की कहानी का सारभूत निचोड़ मानवीय अधिकारों की प्रगति का संदेश है। विधिशास्त्र की प्राकृतिक विधि शाखा ने मानवीय प्रतिष्ठा एवं प्राकृतिक अधिकारों को संरक्षण एवं मान्यता देते हुए शंखनाद किया है कि

किसी भी व्यक्ति को हम न्याय और अधिकार नहीं बेचेगें तथा न्याय प्रदान करने में देरी नहीं की जाएगी। मानवीय अधिकारों की सुव्यवस्थित सोच तथा उन्हें संगठित रूप देने का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास, 25 सितम्बर 1926 को दासता के विरूद्ध शंखनाद करते हुए विश्व सम्मेलन के रूप में निखर कर आया। उसके पश्चात् मानवाधिकारों की पहली सुव्यवस्थित घोषणा 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा में की गई। मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में कहा गया कि मानव अधिकार, मानव परिवार की स्वाभाविक प्रतिष्ठा एवं सम्पन्न विश्व में शक्ति, स्वाधीनता एवं न्याय की नींव है।

मानवीय अधिकारों की अवधारणा भारत में वैदिककाल से ही पल्लवित एवं पुष्पित होती रही है, विश्व के देश जब वैचारिक एवं भौतिक धरातल पर मानवीय अधिकारों के विविध पक्षों को समझने की कोशिश कर रहे थे, तब भारत समानता व समरसता एवं 'वसुदैव कुटुम्बकम्' का संदेश देकर मानवीय अधिकारों की प्रतिष्ठा एवं सम्मान को प्रतिष्ठापित कर रहा था। भारतीय दर्शन में मानवीय अधिकारों को गगनचुम्बी ऊचाइयाँ प्रदान की हैं। सब प्राणियों में स्वयं को देखना और सबके साथ समान व्यवहार करना, भारतीय मानवतावादी चिन्तन का मूल तत्त्व है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः

सर्वे सन्तु निरामाया,

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,

मा कश्चिद् दुख भाग्यवेत्।

– का शाश्वत विचार मानव–मात्र के उद्धार और कल्याण को ही रूपायित करता है। भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में मानव अधिकारों की अवधारणा के सारे तत्त्व विद्यमान हैं।

भारतीय परिपेक्ष्य में मानव अधिकारों की विकास–यात्रा को प्रकृति, अर्थ, अवधारणाएँ एवं विकास की समग्रता को समझने में मानव अधिकारों की भारतीय विरासत को निम्न आधारों पर बाँटा जा सकता है –

प्राचीन काल की भारतीय मानव अधिकार : विरासत

प्राक्कालीन लोगों द्वारा दासत्व (गुलामी की प्रथा) जीवन का एक स्थिर एवं स्वीकृत तत्त्व माना जाता था और तब इसमें कोई नैतिक समस्या नहीं उलझी हुई थी। बेबीलोन क्षेत्र की सुमेर संस्कृति में दासत्वता एक स्वीकृत संस्था मानी जाती थी जैसा कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के सुमेर विधान से पता चलता है।[7]

सर्वाधिक आश्चर्य की बात यह है कि ईसाई धर्म जो दया, करूणा एवं परोपकार की भावना से ओत प्रोत माना जाता है, उसी ईसाई धर्म के अनेक अनुयायियों (विशेष कर कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेंट) इस अमानवीय एवं जघन्य प्रथा को मान्यता दी।[8]

यद्यपि प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में भी दास प्रथा के संकेत तो प्राप्त होते है तथापि वह बर्बरता, पाश्विकता एवं हृदयहीनता से युक्त नहीं थी, जैसी कि प्राचीन यूनान, रोम, मिस्त्र आदि देशों में मिलती है। इसका सबसे प्रमुख कारण भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक होना है। भारतीय धर्माचार्यो ने मानव मात्र के प्रति दया भाव रखने के कारण दास नहीं, अपितु सेवक बनाए। अर्थात् किसी को बलपूर्वक उसकी इच्छा के विपरीत दास नहीं बनाया जाता था और न ही दासों को उनके मानवाधिकारों से वंचित किया जाता था।

भारतीय मानवीय अधिकार से जुड़े भारतीय चिन्तकों ने अनवरत चिन्तन करके भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, अहिंसा, सभी से मित्रता, समानता, मानव का सम्मान, मानव गरिमा तथा सर्वाधिकार और स्वतन्त्रता जैसे कालजयी मूल्यों के रंग घोले है। महात्मा बुद्ध ने अपने समर्थकों से कहा है कि किसी जीव की हत्या न करें तथा अपने दासों पर भी अत्याचार नहीं करें। सदाचार किसी भी बलिदान से अधिक अर्थपूर्ण है।

बुद्ध के यह विचार मानवाधिकारों की मूल भावना को ऊर्जा प्रदान करते हैं। जैन–दर्शन में तो न केवल उपेक्षित वर्ग बल्कि निरीह जीव–जन्तुओं के अधिकारों को स्वीकृति दी है। इसके अनुसार हिंसा को महान पाप बताया गया है। जीने के अधिकार को मानव अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय, जैन विचारधारा को जाता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि यह अधिकार केवल मनुष्य जाति को ही नहीं, बल्कि पशुओं तथा समस्त जीवों एवं वनस्पतियों के लिए भी स्वीकृत किया गया है। "चार्वाक् दर्शन" के प्रणेता "चार्वाक् महर्षि" ने यहाँ तक कहा है कि जब सभी लोगों के शरीर मुख तथा सभी अंग एक जैसे ही हैं तो फिर वर्ण, जाति का भेद कैसा? इस प्रकार के भेद अवैज्ञानिक हैं और उन्हें प्रथम दृष्टि में ही खारिज़ किया जा सकता है।

इन भारतीय विचारधाराओं ने अपने विराट दर्शन में मानवीय अधिकारों को बड़े प्रभावी तरीके से अभिव्यक्त करके, आज के मानवीय अधिकारों की मज़बूत बुनियाद रखी थी, जिस पर आज़ हम मानवीय अधिकारों की इमारत का निर्माण करने में सक्षम हो सके। इसी का परिणाम है कि सम्राट अशोक ने युद्ध–विरोधी दृष्टिकोण अपनाकर मानवता को एक नयी दिशा दी। उसके 13वें शिलालेख में युद्ध विरोधी कथन है, जिसे मानवाधिकारों के दस्तावेज़ के रूप में स्वीकृत करना चाहिये।[9]

मध्य युग में मानवाधिकार

प्राचीन भारत में सहिष्णुता, अहिंसा तथा सम्मान की जो गंगा प्रवाहित हुई थी, वह मध्यकाल में भी अनवरत गति से प्रवाहित होती रही है। जिस भाषा का प्राचीन काल में सम्राट अशोक ने प्रयोग किया था, उसी भाषा को मध्यकाल में मुस्लिम शासक अकबर ने आगे बढ़ाया था। दूसरे के धर्म का सम्मान करते हुए, स्वयं के धर्म का पालन करने की सीख, मध्यकाल की प्रमुख उपलब्धि थी। अकबर ने धर्म के आधार पर कोई भेद–भाव नहीं करते हुए प्रजाज़नों के साथ समान रूप से व्यवहार किया। मुस्लिम शासक होते हुए भी हिन्दुओं को तीर्थ–कर से छूट प्रदान की तथा

'जजिया' कर समाप्त किया। सदियों से चली आ रही दासता पर अंकुश लगाया एवं सभी धर्मो तथा नागरिकों को अपने धर्म पालन करने की छूट एवं स्वतंत्रता प्रदान की।

भक्ति युग में तो समरसता की गंगोत्री बह चली। ख्वाज़ा मोईनउद्दीन चिश्ती पूरे समाज़ में एक धर्म गुरू के रूप में स्वीकार्य थे। सूफी सन्तों का समग्र दर्शन ही सहिष्णुता से ओत–प्रोत था। महाराष्ट्र के नामदेव, और तुकाराम तथा बंगाल के जयदेव विद्यापति तथा चंडीदास ने मानवता का अलख जगाया। चौह्दवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी में संत रामानंद ने जाति व्यवस्था को सशक्त चुनौती दी। संत कबीर ने तो जहाँ कर्मकांड तथा अंधविश्वास की जड़ों पर प्रहार किया, वहीं सार्वभौमिक सहिष्णुता का उपदेश दिया। कबीर ने सभी इन्सानों को बराबरी का दर्जा दिया तथा जाति धर्म एवं धन पर आधारित सत्ता की जड़ों पर कड़ाई से प्रहार किया। गुरूनानक हिन्दू–मुस्लिम एकता के महान पक्षधर के रूप में उभर कर सामने आये। मुसलमानों ने जहाँ नानक को 'पीर' कहा, वहीं हिन्दुओं ने उन्हें 'गुरू' कह कर गुरू का दर्जा दिया।

यद्यपि मध्ययुग में भक्ति आन्दोलन एवं अकबर जैसे शासकों की नीति के फलस्वरूप सामाजिक समरसता, सहिष्णुता एवं उदारता का पर्याप्त प्रभावथा, तथापि इस काल में कई प्रकार की सामाजिक बुराईयों के भी संकेत प्राप्त होते है। जातीय एवं धार्मिक कट्टरता प्रमुख रूप से इसी युग में उभरी थी, जिसके फलस्वरूप मानवीय अत्याचार, शोषण एवं दमन खुलकर सामने आये। इस काल में स्त्रियों की स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगाया गया। पर्दाप्रथा, बाल–विवाह, बेमेल–विवाह एवं दहेज़ की समस्या का प्रारंभ सर्वप्रथम इसी काल में हुआ। दलित जातियों पर कई प्रकार के सामाज़िक एवं धार्मिक प्रतिबंध लाद दिए गए। इसके अतिरिक्त अस्पृश्यता के कारण उन्हें समाज़ की मुख्य धारा से पृथक कर दिया गया।

आधुनिक काल का नवचिन्तन

आधुनिक काल में विचारकों ने मानवतावाद को एक नवीन दिशा प्रदान की। पुनार्जागरण के महान योद्धा, राजाराम मोहन राय, आधुनिक भारत के पहले बौद्धिक सुधारक थे। उनका कहना था कि सभी मनुष्य समान पैदा होते हैं, नारी मुक्ति के मुद्दे को उन्होंने गंभीरता से लिया तथा सती प्रथा की जड़ों पर प्रहार किया। नागरिक स्वतंत्रता तथा मुक्ति के जुझारू योद्धा, राजा राम मोहन राय ने समाचार पत्रों की स्वतंत्रता का पूर्णरूप से समर्थन किया। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय तथा सम्राट को अपनी अपील में नागरिक अधिकारों के हनन के प्रति रोष प्रगट किया। स्वामी विवेकानंद, बकिंघम चटर्जी, ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने मानव अधिकारों के प्रति नवचेतना के जागरण का शंखनाद किया। इन सुधारकों ने विधवा–पुनर्विवाह, एवं शिक्षा जैसे कार्यक्रम शुरू किए। स्वामी विवेकानंद जी का आग्रह था कि एक मजबूत भारत के लिए हमें दो महान संस्कृतियों, हिन्दुत्त्व का वेदान्त रूपी मस्तिष्क तथा इस्लामी शरीर का संगम करना होगा। सर सैयद अहमद खान ने मुसलमानों से हिन्दुओं के प्रति अलगाव–वादी भावना का परित्याग करने का आह्वान किया। उनका कहना था कि प्रगति के मार्ग में संकीर्ण मानसिकता से बड़ी कोई बाधा नहीं है। नये युग में हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि हम पृथकता वादी विचारधारा का परित्याग करें। सर सैयद अहमद के ये विचार मानव–मात्र विशेषकर देश–वासियों और उनके अधिकारों के प्रति चिन्ता दर्शाते है। उनकी उदात्त विचारधारा ने भारतीय राष्ट्रीय नागरिकों के मन में ताज़ा हवा का संचार कर दिया। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी, भीमराव अम्बेडकर, एम.एन.राय ने दलितों के मानवाधिकारों के लिए संघर्ष किया। छुआ–छूत को समाप्त करने के लिए एक नयी दिशा प्रदान की, कि छुआ–छूत की भावना ही अपने सूक्ष्म रूपों में हमें एक दूसरे से अलग करती है और जीवन को कटु बना देती है। दक्षिण भारत में ई०वी० रामास्वामी नायकर ने 'वाईकॉम' आन्दोलन चला कर दलितों के लिए मानवाधिकार के मुद्दे को उठाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना बुनियादी अधिकार संबंधी घोषणा–पत्र सामने रखा, जिसके जरिये जनता के लिए मानव अधिकारों की माँग की गई। मोती लाल नेहरू व तेज बहादुर सप्रू ने 1928 में एक राष्ट्रीय संविधान का मसौदा तैयार किया। इस संविधान में बुनियादी अधिकारों, संसदीय किस्म की सरकार और व्यस्क मताधिकार को मुक्ति संघर्ष का केन्द्रीय मुद्दा बनाने का विचार पेश किया गया। इसी संदर्भ में बाल गंगाधर तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले जैसे प्रारम्भिक नेताओं का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। गोखले ऐसे पहले भारतीय नेता थे, जिन्होंने शिक्षा को एक मानवाधिकार के रूप में देखा। गाँधी जी की पहल पर मानवाधिकारों को प्राप्त करने की कोशिश बढ़ती ही गई। लोकतंत्र, स्वशासन, प्रेस की स्वतंत्रता, व्यस्क मताधिकार तथा संगठन बनाने के अधिकार की माँग की गई।

स्वतन्त्रता की एक बड़ी लड़ाई के पश्चात् मई 1946 में भारतीयों को एक संविधान सभा बनाने का अवसर प्रदान किया गया। जवाहर लाल नेहरू ने 13 दिसम्बर, 1946 को उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसमें भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक न्याय अवसर की और कानून के समक्ष समानता, स्वतंत्रता, विचार–अभिव्यक्ति, धर्म, आस्था, पूजा, व्यवसाय, संगति और कार्यकलाप की स्वतंत्रता देने का वादा किया। भारतीय नागरिकों के अधिकारों को अत्यधिक विचार–विमर्श के बाद संविधान की सभा में अंतिम रूप दिया। सभी भारतीयों को बिना किसी भेद–भाव के अधिकार दिये गये। समाज के कमजोर एवं पिछड़े वर्गों की उन्नति के लिए विशेष महत्त्व दिया गया। न्यायपालिका को जनता के अधिकारों का रक्षक घोषित किया गया। मानव अधिकारों के प्रति चेतना एवं जागरूकता बढ़ाने के लिए तथा उनकी अवहेलना के प्रकरणों को निपटाने के लिए विशेष कानूनों का निर्माण एवं आयोगों का गठन किया गया। इस प्रकार आधुनिक काल में मानवाधिकारों का विषय, प्रमुख विषय बन गया।

वर्तमान संदर्भ में मानव अधिकारों का मुद्दा सभी जगह एक सर्वाधिक चर्चा का विषय है। न केवल सभ्य नागरिकों के लिए मानव अधिकारों के संरक्षण की बात की

जाती है, बल्कि ऐसे पथभ्रष्ट लोगों के लिए भी मानवाधिकार सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाते है, जिनकी वजह से राज्य, समाज एवं नागरिकों को क्षति पहुँची है। समय–समय पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, अपराधियों एवं कैदियों के मानव अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए जेल की दशा एवम् उनको दिए जाने वाले भोजन, आवास एवं वस्त्रों की जाँच करके अपनी रिपोर्ट देते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार को निर्देशित करते हैं कि उनकी वर्तमान दशाओं में सुधार लाया जाए, चाहे उसके लिए राज्य–कोष पर कितना ही वित्त–भार क्यों न पड़ें। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक काल मानव अधिकारों के संदर्भ में पूर्णरूप से जाग्रत है। समाज के सभी भाग, चाहे वो महिला हो, बालक हो, वृद्धजन हों या समाज के दूसरे अन्य कमजोर वर्ग हों, सभी को समान अधिकारों से लाभान्वित करने का प्रयास निरन्तर किया जा रहा है।

खण्ड (घ) : संस्कृत साहित्य के संदर्भ में मानवाधिकार

मानव अधिकार यद्यपि अध्ययन हेतु अपेक्षाकृत नवीन विषय है, तथापि यह मानव के जन्म से ही प्रारंभ होते हैं। संस्कृत साहित्य में इस विषय के अध्ययन की दिशा में अधिक प्रयास नहीं हुए हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि संस्कृत साहित्य मानवाधिकारों का उद्घोष करने में अग्रणीय है। प्राचीन संस्कृत साहित्य वेद, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवतगीता तथा जैन बौद्ध एवं सिक्ख धर्म ग्रंथों में मानवाधिकारों की अवधारणा विद्यमान है। संस्कृत साहित्य में विपरीत आचरण करने वाले मनुष्यों के प्रति भी अनुकूल आचरण करने के लिए प्रेरित किया गया है – सभी को समान दृष्टि से देखना, सब से प्रेम करना आदि मानवाधिकारों के मूल तत्त्वों का यत्र–तत्र वर्णन है। यहाँ पर हम संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार का वर्णन कर रहे हैं।

मानव समाज में अधिकारों की अवधारणा नई नहीं है, अपितु अधिकार आर्य संस्कृति में प्राचीन काल से ही प्रतिष्ठित हैं। कुछ अधिकार प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं जैसे– सुख में हंसने, दुःख में रोने, संतान के प्रति ममता रखना, स्वयं को सुरक्षित

रखने का अधिकार, श्वास लेने का अधिकार इत्यादि। कुछ अधिकार सुसामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्रदान किए जाते हैं। जैसे– राजा का प्रजा हित व संरक्षण करना, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार आदि।

संस्कृत साहित्य में मानवाधिकार की अवधारणा निम्न रूप से दृष्टिगोचार होती है। जैसे–

1. **यज्ञ का अधिकार**

वैदिक काल में यज्ञ प्रधान संस्कृति थी। भारतीय जन–जीवन यज्ञीय भावनाओं में ओत–प्रोत रहा है। यही कारण है कि परवर्ती पुराणकाल में "सर्वं यज्ञमयं जगत्"[10] कहकर यज्ञ की व्यापकता को स्वीकार किया गया है। फलतः यजन, पूजन, उपासना, कथा श्रवण, तीर्थयात्रा, अध्यापन तथा विवाह आदि नैमित्तिक एवं राज्य प्राप्ति आदि काम्यकर्म भी आगे चलकर यज्ञ की श्रेणी में गिने जाने लगे।

"यज्ञो वै विष्णुः"[11] से स्पष्ट है कि मर्यादा पुरूषोत्तम राम और योगिराज कृष्ण के आचरण के साथ ही ब्रह्मचर्य, धर्मार्थ बलिदान, समाजसेवा आदि भी यज्ञ मान लिए गये।

ऋक्संहिता दशम–मण्डल के 45वें सूक्त में यज्ञाधिकार की अनुमति सभी को है। इसका संकेत "पञ्चजना" शब्द करता है[12] जिसका अर्थ निरूक्तकार ने "चत्वारो वर्णा निषाद पञ्चमा" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद (अतिशूद्र) है। इस प्रकार वेद पञ्चजनकर्तृक अग्नियाग की आज्ञा देता है। इस स्थिति में नारी को भी यज्ञाधिकार से वंचित नहीं रखा जा सकता है, जहां यज्ञ करने का अधिकार सभी को प्राप्त हो।

वैदिक काल में नारी नर के साथ स्वतन्त्र रूप से यज्ञ करने की पूर्ण अधिकारिणी थी। इस सम्बन्ध में अथर्व संहिता में कहा गया है – "मैं शुद्ध, पवित्र यज्ञ की अधिकारिणी, इन स्त्रियों को विद्वानों के हाथों में पृथक–पृथक रूप में प्रसन्नता से अर्पित करता हूँ।"[13]

यहां नारी के लिए प्रयुक्त शब्द– "शुद्धा", "पूता" तथा "यज्ञियाः" इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय नारी समाज में यज्ञ में भाग लेने एवं अपनी योग्तानुसार यज्ञ करने तथा दूसरों से यज्ञ कराने का पूर्ण अधिकार रखती थी।

अथर्ववेदसंहिता (11/1/17–27) में "योसितो यज्ञियाः इमाः" द्वारा स्पष्ट रूप से नारी के यज्ञाधिकार की पुष्टि की गयी है। ऋक्संहिता के पाँचवें मण्डल के 27 वें सूक्त में 'विश्वारा' नामक नारी का वर्णन है जो प्रतिदित प्रातः स्वयं यज्ञ करती थी।[14] इसी प्रकार ऋकसंहिता के दशम–मण्डल के 114वें सूक्त में नारी को "चतुष्कपर्दा" कहा है, जिसका अर्थ – यज्ञीय वेदी के निर्माण में कुशल नारी।

अतः इन सभी उदाहरणों से हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उस समय नारी यज्ञ के सभी अवसरों से सुपरिचित थी और यज्ञ करने एवं कराने का अधिकार उसे जन्म से ही प्राप्त था।

2. शिक्षा का अधिकार

वेदमाता (सरस्वती) के मंदिर में प्रवेश पाने एवं मानव सभ्यता के विकास हेतु, सभी व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार समान रूप से प्राप्त है। लेकिन "विद्या अभ्यास में विघ्न डालने वाले कुछ लोगों को विद्वानों ने ज्ञान के भण्डार से वंचित रखने का निर्देश दिया था, जो ईर्ष्या, असूया, उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता आदि अवगुणों से ग्रसित रहते थे।"[15] ऐसे लोगों के अतिरिक्त शेष सभी लोग बिना जाति एवं लिंगभेद के, माँ सरस्वती के विद्या–सरोवर में मज्जन करने में स्वतन्त्र थे। इसी प्रकार भगवान मनु ने भी कहा है कि "एक बार वेदमाता वेदवेत्ता के पास जाकर बोली – "मैं तेरी निधि हूँ, तुम मेरा पालन करो। असूया करने वाले को मुझे मत देना, इसी में मेरी शक्तिमत्ता है।"[16] वैदिक काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। यहाँ तक कि मनुस्मृति में तो बिना पढ़े ब्राह्मण को निष्फल माना है "विप्रोऽन्तचोऽफलः"[17] एवं शूद्रों को वेद अध्ययन का अधिकार नहीं था, लेकिन अपने पारम्परिक व्यवसाय की शिक्षा विधिवत प्राप्त करते थे। सामान्य शिक्षा व विधि

कलाओं की शिक्षा उन्हें मिलती थी परन्तु ऋक्संहिता में भी कहा गया है "स्त्रीशूद्रों नाधीमतामिति श्रुतिः"[18] अर्थात् स्त्री और शूद्रों को वेद अध्ययन की अनुमति नहीं थी। इसी प्रकार पुराणों के माध्यम से स्त्री व शूद्र के लिए वेदाध्ययन निषिद्ध होने के कारण उन्हें चरित्र निर्माण की शिक्षा दी जाती थी। वेदव्यास ने स्त्रियों, शूद्रों तथा अधम जातियों के लिए पुराणों की रचना की थी।–

"स्त्री शूद्र द्विजबधूनाम् न वेद श्रवणं मतम्।
तेषामेवः हितार्थाय पुराणानि कृतानि च।।"[19]

नारियों को गृह–विज्ञान की शिक्षा, व्यावसायिक ज्ञान की शिक्षा तो अवश्य ही दी जाती थी, परन्तु इसके साथ ही योग्यता, एवं कुलस्तर के भेद से धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, व्यावसायिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। इसका उदाहरण महाभारत में, द्रौपदी का 'सरन्ध्री' के रूप में 'उत्तरा' की माता की केश संरचना करना। अतः स्पष्ट है कि राजघरानों की महिलाये भी गृहकार्य में दक्ष होती थीं।

नैषधचरितम् के षष्ठ सर्ग में गन्धर्व स्त्रियों को नारद की शिष्यायें बताया गया है, जोकि संगीत विद्या में प्रवीण थीं।[20] यद्यपि ये दैवी पात्र हैं, तथापि स्त्रियाँ ललित कलाओं में प्रवीण थीं। यह प्रमाणित होता है क्योंकि दैवी पात्रों की शिक्षा का उल्लेख तो है, लौकिक पात्रों द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के विषय में संदेह नहीं किया जा सकता। स्त्रियों को प्रधानतः कलाओं, गृहकार्यो, पाककला की शिक्षा दी जाती थी लेकिन योग्य स्त्रियाँ विधिवत् शास्त्र ज्ञान भी प्राप्त करती थी जैसे लोपामुद्रा, घोषा, द्रौपदी आदि। वात्स्यायन के अनुसार नारियां 64 कलाओं में निपुण होती थीं।[21]

किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में ग्रन्थकार ने द्रौपदी के मुख से राजनैतिक ज्ञान से परिपूर्ण वाक्यों को कहलवाया है।[22] अतः द्रौपदी को राजनैतिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त था। द्रौपदी द्वारा युधिष्ठिर को समझाना, उसकी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता को भी दर्शाता है। उसकी पाण्डित्यपूर्ण एवं गूढ़ राजनीति की बातों से भीम भी सहमत है।

भीम का तो यहां तक कहना है कि 'द्रौपदी की बातें तो बृहस्पति के लिए भी विस्मय का कारण हैं।' अर्थात् अकाट्य है।[23] महाभारत काव्य की मुख्य नायिका द्रौपदी राजनैतिक ज्ञान के साथ–साथ दार्शनिक तत्त्वों से भी अनभिज्ञ नहीं थी।[24]

कैकयी का देव–दानव युद्ध में दशरथ के साथ जाना इस बात को स्पष्ट करता है कि युद्ध की विलक्षण घड़ी में अपने पति की सहायता करना अथवा जख्मी हालत में परिचर्या करना ही नारी ध्येय था।[25]

संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि स्त्री जाति को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु स्त्रियों के लिए गुरूकुलों की व्यवस्था नहीं थी। अपितु उन्हें घर में ही किसी सम्बन्धित पुरूष द्वारा शिक्षा दी जाती थ

पुरुषों के लिए गुरूकुल द्वारा सभी प्रकार की शिक्षा व कला ग्रहण करने की व्यवस्था थी।

3. नारी को सम्मानीय अधिकार

वैदिक काल में स्त्रियों को अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण व गौरवशाली स्थान प्राप्त था। स्त्री को नित्य नवीना, यौवनसम्पन्ना, शुभ्रवसना, सत्यभाषिणी आदि विशेषणों से सम्बोधित कर उसके कन्या, भगिनी, पत्नी, मातृ आदि रूपों के प्रति आदर व्यक्त किया गया है।[26] पत्नी रहित गृह को जंगल मानकर गृहिणी को गृह की संज्ञा दी गयी।[27] जोकि स्त्री के सम्मानीय अधिकारों का व्यंजक है। पत्नी को गृहिणी, एकान्त की सखी, योग्य सचिव आदि विशेषणों से अभिहित करना और अर्धांगिनी कहना भी पत्नी–पति दोनों के समान अधिकार एवं भावना के परिचायक हैं।[28]

धार्मिक कार्यो में भी स्त्री सहधर्मिणी होती थी। उसके बिना कोई भी धार्मिक कृत्य पूर्ण रूप से सफल नहीं माना जाता था। क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि, "अपत्नीक पति को यज्ञ का अधिकार नही था।"[29] अतः श्रीराम ने भी सीता की

अनुपस्थिति में सीता की स्वर्णमयी मूर्ति, सीता के स्थान पर रखकर अपना अश्वमेघ यज्ञ पूर्ण किया था।[30]

नारी को मातृ रूप में भी आदरणीय स्थान प्राप्त था। नारी सन्तानोत्पत्ति की शक्ति के कारण सम्मानित है। आज हमारे समाज में माता का स्थान गुरू और पिता दोनों से ही ऊँचा है– यथा –

दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश।
दश चैव पितृन्माता सर्वा वा पृथिवीमपि।।
गौरवेणायिभवति नास्ति मातृ–समो गुरूः।
माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः।।[31]

स्त्री को घर में सम्मानजनक पद प्राप्त था, मनु ने तो यहां तक कहा है कि जहाँ पर नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"

पत्नी को यह अधिकार भी प्राप्त था कि यदि पति नीच, प्रवासी, राजद्रोही आदि दोषों से युक्त हो तो वह पति से सम्बन्ध (विवाह) विच्छेद कर दे।

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्पितो राजकिल्विशी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीषोऽपित वा पतिः।।[32]

मनुस्मृति में स्त्रियों के लिए विवाह की वही विधि है जो पुरूषों के लिए वेदों में विवाह संस्कार के रूप में कही गयी है। स्त्रियों के लिए विवाह के उपरान्त तो पति सेवा अर्थात् पति के अधीन रहने का विधान है। परन्तु विवाह पूर्व उसे भी गुरूकुल में रहकर विद्या अध्ययन करने तथा प्रातः–सायं होम करने का विधान है।[33]

नारी अपने विनय, संतोष, धीरता, गम्भीरता, सहनशीलता, श्रमशीलता, मितव्ययता आदि गुणों से परिवार की पवित्रता को बनाए रखने तथा सभी को एक सूत्र में बांधे रखने की अपूर्व शक्ति रखती है। अतः नारी को धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी

पुरुषार्थ – चतुष्ट्य की साधिका कहा जा सकता है, क्योंकि वह परिवार की प्रत्येक समस्या का समाधान करती है।

अथर्ववेद संहिता में नारी के गौरव को गौरान्वित करते हुए कहा गया है कि – जिस प्रकार शक्तिशाली सागर नदियों पर शासन करता है, वैसे ही तुम अपने पति के घर पहुँचकर महारानी बनो। तुम सास–श्वसुर, देवर, ननद में साम्राज्ञी बनकर रहो।[34] अतः स्त्री को साम्राज्ञी एवं महिषी आदि सम्मानजनक शब्दों से पुकारा गया है।

ऋक्संहिता में सीता को देवी मानकर कहा गया है – "हे सौभाग्यवती सीते! आपकी हम स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं, क्योंकि आपके कारण हमें सुख–समृद्धि सूचक सौभाग्य की प्राप्ति होती है।"[35] यहां 'सीता' शब्द हल के अग्रभाग के लिए प्रयुक्त हुआ है, परन्तु इसका उद्देश्य नारी–सम्मान ही है। नारी के प्रति सम्मान की भावना के कारण ही विद्या की अधिष्ठातृ देवी "सरस्वती", बल की अधिष्ठातृ देवी "दुर्गा" और धन की अधिष्ठातृ देवी "लक्ष्मी" को सम्मान देकर, पुरूष वर्ग को इन अधिकारों से वंचित रखा गया है। आज भी "राम" के नाम से पूर्व सीता और "कृष्ण" नाम से पूर्व राधा का स्मरण किया जाता है।

अतः नारी के लिए प्रयुक्त ही "श्री" जैसे सम्मानजनक शब्द इसके परिचायक हैं कि प्राचीन युग से ही पवित्रता, पातिव्रत्य, वात्सल्य–भाव, सेवापरायणता तथा अगाध श्रद्धा आदि गुणों के कारण नारी का समाज में बड़ा समादर है।

4. नारी को सम्पत्ति–विषयक अधिकार

वैदिक युग में पत्नी की स्थिति बहुत उन्नत थी, ऋग्वेद के मतानुसार, "पत्नी ही घर है।"[36] पत्नी गृहस्थाश्रम का मूल होने से उसे घर की आत्मा और प्राण समझा जाता था। अतः वैदिक युग के प्रारम्भ में स्त्रियों को कुछ साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे।

तैत्तिरीय संहिता में पत्नी को पारिणाह्म अर्थात् घर की वस्तुओं की स्वामिनी कहा गया है।[37]

पत्नी का पति की सम्पत्ति पर अधिकार होता है किन्तु सम्पत्ति के विभाजन की मांग का अधिकार पत्नी को नहीं है। यदि पुत्र पिता से विभाजन की माँग करें तो पत्नी को पुत्र के समान ही भाग मिलता है।[38] किन्तु ऐसा धन, जिस पर केवल पत्नी का ही अधिकार होता है और उसके बाद उस धन की उत्तराधिकारिणी उसकी पुत्री होती है जो स्त्री धन के रूप में जाना जाता है उसे स्त्रीधन कहा जाता है, जो विवाह के समय कन्या के माता–पिता तथा वर पक्ष की ओर से धन दिया जाता है, अर्थात् वस्त्र–आभूषण आदि जो स्त्री को विवाह के समय दिए जाते हैं, वह स्त्री धन कहलाता है।

अतः सृष्टि के प्रारम्भिक काल में जब विवाह नामक संस्था का आरम्भ हुआ तभी से कन्याओं को दी जाने वाली दहेज की वस्तुयें, वस्त्र, आभूषण तथा अन्य आवश्यक सामान से स्त्री–धन का आरम्भ हुआ। धर्मसूत्रकारों ने भी कन्या को विवाह के समय दिये जाने वाले वस्त्र, आभूषण आदि को ही स्त्रीधन के अन्तर्गत माना है। मनु ने छः प्रकार के स्त्रीधनों की गणना की है।[39]

इसी प्रकार मौर्य साम्राज्य के निर्माता, अर्थशास्त्र रचयिता, कुशल राजनीतिज्ञ चाणक्य ने भी स्त्रीधन के सम्बन्ध में अनेक व्यवस्थायें कीं तथा इसके दो प्रकार बताये, एक वृत्ति तथा दूसरा आबन्ध्य।[40] वृत्ति से अभिप्राय है जीवन निर्वाह के साधन तथा आबन्ध्य से अभिप्राय उन आभूषणों से है, जो स्त्रियां पहनकर रखती हैं।

स्त्री जाति को सम्पत्ति सम्बन्धी जो अधिकार दिये जाते थे, वह विवाह के समय दिये जाने वाले दहेज रूपी चल अथवा अचल सम्पत्ति थी।[41] आपस्तम्व धर्मसूत्र में कहा गया है कि पति–पत्नी में किसी भी प्रकार का साम्पत्तिक विभाजन नही होता। दोनों का सम्पत्ति पर बराबर का स्वामित्व होता है।[42] महाभारत में भी, गृहस्थ में पति–पत्नी को सम–स्वभाव होना चाहिए।[43]

पत्नी को पति द्वारा तीन हजार रूपये की लागत का धन देने की बात महाभारत में कही गयी है।[44] चाणक्य ने भी वृत्ति स्त्रीधन के प्रकार में दो हजार कार्षारण पत्नी को देने की बात कही है और आबन्ध्य नामक स्त्रीधन के दूसरे प्रकार में आभूषण आते हैं, जो स्त्रियां पहनती थीं, जिनकी कोई सीमा नही।

स्त्रीधन के उत्तराधिकार में सर्वप्रथम कन्या को स्थान प्राप्त हुआ है।[45] और कन्याओं के अभाव में स्त्रीधन पर पुत्रों का अधिकार माना गया।[46] आचार्य मनु ने पुत्रों के अधिकार का समर्थन करते हुए कहा कि माता के धन को भाई–बहन मिलकर बाँट लें।[47] किन्तु याज्ञवल्क्यानुसार स्त्रीधन के उत्तराधिकार में कन्याओं का प्रबल समर्थन किया गया। वैदिक काल में पति की मृत्यु के पश्चात्, विधवा स्त्री को सम्पत्ति का अधिकार नहीं दिया गया। किन्तु अर्थशास्त्रानुसार उस समय राजा, मृत व्यक्ति की स्त्री के जीवन निर्वाहार्थ तथा उसके और्ध्वदैहिक कार्य के लिए कुछ धन अवश्य छोड़ देता था।[48] लेकिन याज्ञवल्क्म प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने विधवा को पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मानने का समर्थन किया।[49]

कुछ स्मृतिकारों ने यद्यपि विधवा के अधिकार का समर्थन किया है और शनैः–शनैः उनके अधिकारों में वृद्धि हुई, किन्तु साहित्य में विधवा के साम्पत्तिक अधिकार का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु रामायण, महाभारत में चित्रित विधवा स्त्रियों कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, कुन्ती आदि के पास सम्पत्ति होने की बाते ही नहीं है। परन्तु पुत्र जो सारे साम्राज्य के स्वामी हैं और अपनी माताओं को ही सर्वस्व मानते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्त्रियां प्रत्यक्ष रूप में न सही, अप्रत्यक्ष रूप से गृहस्वामिनी बनी रहती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वैदिक काल से महाकाव्यकाल तक स्त्री को कन्या के रूप में, पत्नी के रूप में, विधवा के रूप में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाकारों, स्मृतिकारों आदि ने साम्पत्तिक अधिकार दिलाये थे।

5. प्रजा के अधिकार

राज्य में राजा प्रमुख रूप से विभिन्न अधिकारों से युक्त होता है, यथा – प्रजा रंजन, सुव्यवस्था, रक्षा व शांति प्रबन्ध, सामाजिक कार्य, कर ग्रहण, अपने कार्यों को निष्ठापूर्वक वहन करना, दण्डनीति का ज्ञान व उचित पालन, श्रेष्ठ व उचित लोगों को महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त करना, कोष की सुरक्षा व संवर्धन इत्यादि।

महाकवि अश्वघोषानुसार –

भारैरशीशमच्छत्रून गुणैर्बन्धूनरीरमत्।

रन्धैनांयूयुदद् भृत्यान् करैर्नापीपिडत् प्रजाः[50]

शत्रु मध्यस्थ और मित्र का निर्धारण करना राजा का अधिकार है –

यथा– मध्यस्थतां तस्य .....पक्षावपरस्तु नास।[51]

राजा को प्रतिभू बनने का अधिकार प्राप्त था।

कौटिल्य अर्थशास्त्रानुसार राजा को आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति चारों विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिए।

आन्वीक्षकीत्रयी वार्तानां योगक्षेमसाधनों दण्डः।[52]

आन्तीक्षकी (नास्तिक दर्शन), त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), वार्ता (कृषि, पशुपालन, व्यापार आदि) और दण्डनीति (अपराध करने पर, कब कैसे और कितना दण्ड दिया जाए)

आचार्य कौटिल्य के अनुसार राजा को न अत्यधिक कठोर, न ही अत्यधिक ढील देनी चाहिए। अपितु उचित रीति से समुचित दण्ड देना चाहिए।

आचार्य मनु के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अज्ञान के कारण अपराध करता है तो उसे उतना ही दण्ड देना चाहिये, जितना उसने नुकसान किया है। इसके विपरीत आलस्य के कारण नुकसान करता है तो दुगना, प्रमाद के कारण तो तिगुना दण्ड देना राजा का अधिकार है।

जो राजा प्रजा को अभय करता है उसको सदा पूजना चाहिए क्योंकि अभय की जिसमें दक्षिणा दी जाती है, ऐसा उस राजा का यज्ञ रूप देश सदा बढ़ता है। यथा –

अभयस्य हि यो दाता सा पूज्यः सततं नृपः।

सत्रंहि वर्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्।।[53]

प्रजा की रक्षा करने वाले राजा का सबके धर्म में छठा भाग होता है, और रक्षा न करने वाले का अधर्म में छठा भाग होता है।

सर्वतो धर्म षड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः।

अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः।।[54]

जो राजा धर्म से प्रजा की रक्षा करता है और वध करने वाले लोगों को मारता है, वह प्रतिदिन एक लाख गायों की दक्षिणा वाले यज्ञ के समान फल को प्राप्त करता है।[55]

इसी प्रकार जो मनुष्य पढ़ता है, यज्ञ करता है, दान देता है और देवताओं का पूजन करता है उन सबमें से प्रजा की रक्षा के कारण राजा छठे हिस्से का भागी होता है।[56]

किन्तु जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता है और छठा भाग लेता है, उस राजा को पण्डित जन सब लोकों के पाप का भागी कहते हैं। अतः प्रजा की रक्षा करना राजा का दायित्व है।

यथा–

अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम्।
तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्।।[57]

यदि कोई साधारण मनुष्य अपराध करता है, तो राजा को उस व्यक्ति से एक पण दण्ड लेने का अधिकार है, लेकिन यदि राजा उसे स्वयं करे तो उस पर सहस्त्र पण दण्ड होने की शास्त्र मर्यादा है।

कार्षापणं भवेद्दण्डयो यत्रान्यः प्राकृतोजनः।
तत्र राजा भवेद्दण्डयः सहस्त्रमिति धारणा।।[58]

प्रजा यदि अपराध करे तो राजा का अधिकार है प्रजा को दण्डित करना, लेकिन जो राजा साहसी व्यक्ति को दण्ड नहीं देता है और उसे क्षमा कर देता है, तो वह राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और प्रजा भी उस राजा से द्वेष करने लगती है।

अतः उपरोक्त वर्णनानुसार स्पष्ट है कि राजा को अपराधी को दण्ड देने का पूरा–पूरा अधिकार प्राप्त था, शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिए।

6. दाय–विभाग सम्बन्धित अधिकार

कौटिल्यानुसार पैतृक सम्पत्ति में माता–पिता अथवा पिता के जीवित रहते, पुत्रों में सम्पत्ति का बंटवारा नहीं किया जा सकता है। लेकिन पुत्र की स्वअर्जित सम्पत्ति में से अन्य भाईयों को कोई भी अधिकार नहीं होता है।

विभाजन सम्बन्धी पुत्र के अधिकार का विकास युगों से पाया जाता है। कुलपति सत्तात्मक परिवार प्रचलित था। पिता का पुत्र पर पूर्ण अधिकार था। पिता की आज्ञा का पालन पुत्र का परम कर्तव्य था। सम्पति के विघटन का नियम नहीं था। सभी की अर्जित सम्पत्ति पर पिता का अधिकार था। स्त्रियों को सम्पत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं था। दूसरी ओर कुछ अपवाद भी हैं। यथा ऋग्वेद में पिता की वृद्धावस्था में विद्यमान रहने पर भी पुत्रों ने सारी सम्पति का बंटवारा करा लिया। बालक यदि छोटा है, अन्य भाई बड़े हैं तो ऐसी स्थिति में सम्पत्ति प्राप्त करने में वह बालक भी अधिकारी होता था। उसके बालिग होने तक भ्राता, पितामह, मातामह आदि द्वारा सुरक्षा की जाती थी। बालिग होने पर उसे उसकी सम्पत्ति प्राप्त करने का पूरा

अधिकार था। यदि पुत्र नपुसंक है, अधर्मी है, चरित्रहीन है तो उसे पैतृक सम्पत्ति से वंचित रखने का माता–पिता को पूरा अधिकार प्राप्त था।

कन्याओं को सामान्य रूप से दाय–सम्बन्धी अधिकारों के लिए नहीं गिना जाता था किन्तु यास्क, अविवाहिता और अभ्रातृमती कन्याओं को उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। आचार्य मनु[59] तथा याज्ञवल्क्य[60] ने भी सम्पत्ति में कन्याओं को भाईयों के भाग का चौथा हिस्सा देने की व्यवस्था की है। ऋग्वेद में कहा गया है– अभ्रातृका विवाहिता होने पर भी धन प्राप्त करने के लिए पितृकुल की ओर आती है।[61]

महाभारत में पुत्र आत्मा के समान है, पुत्री भी पुत्र के समान है, इसलिये आत्मस्वरूपी पुत्री के उपस्थित रहते, दूसरा पुरूष कैसे धन प्राप्त कर सकता है।[62]

जिसका भाई न हो, ऐसी अविवाहित कन्या को भी पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना गया। वैदिक युग में कन्यायें उच्च शिक्षा ग्रहण करती थीं और कई अवस्थाओं में वे अविवाहित रहती थीं। इनकी स्थिति विवाहिता कन्याओं से विपरीत थी क्योंकि विवाहित कन्या पाणिग्रहण के समय पिता से पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त करती थी।[63] विवाह के बाद पतिगृह में जाकर वहाँ भी स्त्रीधन की अधिकारिणी होती थी, अतः पिता की सम्पत्ति में से अपना अंश प्राप्त कर लेती थी। किन्तु आजीवन अविवाहित कन्या को दहेज तथा पति से मिलने वाला धन प्राप्त नहीं होता था, अतः पिता की सम्पत्ति में उनके द्वारा अपना अंश (सम्पत्ति भाग) मांगना स्वाभाविक था। महाभारत में कुमारी कन्या के साम्पत्तिक अधिकारों में बराबर की भागीदारी का समर्थन किया गया है।[64]

सृष्टि के आरम्भ में स्वयंभू के पुत्र मनु ने कहा था कि दोनों प्रकार की सन्तानों का बिना किसी भेद के धर्मानुसार दाय का अधिकार होता है।[65]

सर्वप्रथम 1943 ई० में हिन्दू कन्याओं को बिना वसीयत वाली पैतृक सम्पत्ति में पुत्रों और विधवा के साथ दायाद बनाने का बिल प्रस्तुत किया। अब तक कन्या पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र तथा विधवा के अभाव में पिता की सम्पत्ति प्राप्त करती थी,

उत्तराधिकारियों में उसका पांचवा स्थान था, प्रस्तावित कानूनानुसार पुत्रों तथा विधवा के होने पर भी वह उनके साथ दायाद बन सकेगी। यह व्यवस्था बाद में हिन्दू कोड में रखी गयी और 17 जून 1956 से लागू होने वाले हिन्दू उत्तराधिकार के नवीन अधिनियम में भी इसे स्वीकार किया गया। उसके लागू होने से पुत्र व पुत्री में समानता स्थापित हो गयी।

7. विवाह का अधिकार

विवाह प्रथा देवताओं से (शिव–पार्वती विवाह) लेकर सर्वसाधारण मनुष्य के जीवन में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। वैदिक काल से ही विवाह को एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा है। विवाह की आधारशिला सत्य एवं सतीत्व पर प्रतिष्ठित थी। इस वैवाहिक आधारशिला को सुदृढ़ करने हेतु वाग्दान, कन्यादान, अग्निसाख्य पाणिग्रहण, अग्नि प्रदक्षिणा, लाजाहोम एवं सप्तपदी आदि प्रमुख क्रियाएं सम्पन्न की जाती थीं। विवाह प्रायः ब्रह्मचर्याश्रम की समाप्ति पर ही बालक–बालिकाओं का होता था।

ऋग्वेद संहिता में स्पष्ट कहा गया है कि विवाह संस्कार सत्य और कर्त्तव्य पर प्रतिष्ठित था।[66] विवाह दम्पत्ति के आत्मा, मन, प्राण, शरीर को आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा सुदृढ़ करने का एक चिरस्थायी प्रयत्न था।

वैदिक काल से आज वर्तमान में भी विवाह संस्कार की महिमा अक्षुण्ण है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए विवाह संस्कार अनिवार्य था। स्त्री और पुरुष दोनों को समान महत्त्व दिया जाता था। मनुस्मृति में विवाह के ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, असुर, गांर्धव, राक्षस और पिशाच आठ भेद बनाये गये हैं, जिसमें प्रथम चार भेद समाज द्वारा प्रशंसनीय हैं एवं शेष चार प्रकार समाज द्वारा तिरस्कृत थे।[67]

1. ब्रह्मविवाह में वस्त्रालंकारादि से विभूषित कन्या का विवाह वैदिक रीति से सुयोग्य वर के साथ किया जाता था।
2. दैव विवाह में कन्या ऋत्विक को उपहार रूप में दान दी जाती थी।

3. आर्ष विवाह में वर पक्ष में दो गायें लेकर कन्या का पिता कन्यादान करता था।
4. प्रजापत्य विवाह में वर–वधू को "तुम दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम का पालन करो" – इस सम्बोधन के साथ कन्या वर को दी जाती थी।
5. गन्धर्व विवाह में स्त्री–पुरुष की सम्मति का विधि विधान था। महाभारत में दुष्यन्त और शकुन्तला का हुआ था।
6. राक्षस विवाह में कन्याग्रहण के लिए युद्ध, हत्या, आघात, प्रतिघात होता था।
7. पैशाच विवाह में कन्या के साथ बलात्कार करने के पश्चात् विवाह होता था।
8. आसुर विवाह में कन्यापक्ष, वर पक्ष से धन लेकर कन्या देता था।

ब्रह्मचारी को शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त विवाह संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्वों को निर्वाह करने का अधिकार था। राजाओं की अनेकों रानियां होती थीं, परन्तु समाज में एक स्त्री रखने का प्रावधान था। यदि पहली स्त्री की दुर्भाग्यवश मृत्यु हो जाती थी, तो पति को दूसरा विवाह तथा सन्तान न होने की स्थिति में दूसरा विवाह अथवा कन्या संतान की अधिकता, पुत्र से वंचित होने पर भी पुरुष को दूसरा विवाह करने का अधिकार प्राप्त था।

महाकाव्यकाल में कन्या को वर–चयन कर, विवाह करने का पूरा अधिकार था, वह जिसे चाहती थी उसे वरण कर सकती थी किन्तु वह अपने योग्य वर का वरण करती थी, जो उसके कुल की मर्यादा के अनुरूप होता था। अतः कन्या का पिता वर–चयन हेतु वर समारोह का आयोजन करता था, जिसे स्वयंवर का नाम दिया गया।[68] रामायण में सीता स्वयंवर,[69] महाभारत में कुन्ती स्वयंवर,[70] द्रौपदी स्वयंवर आदि। इस प्रथा के अनुसार राजकुमारी से विवाह के इच्छुक राजकुमार सम्मिलित होते हैं। राजकुमारी इच्छित वर के गले में वरमाला पहनाती थी।

इसी प्रकार रघुवंशम् में इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन,[71]कुमारसंभवम् में इच्छित वर पाने हेतु पार्वती द्वारा पिता हिमालय की आज्ञा से तपस्या करने का उल्लेख मिलता है।[72] एवं नैषधचरितम् में तो नल को वर रूप में चाहने वाली दमयंती ने पिता द्वारा अन्वेषित वर को अस्वीकार कर दिया।[73]

अतः स्पष्ट है कि स्त्री को भी स्वेच्छा से वर चयन कर विवाह करने का अधिकार प्राप्त था।

संस्कृत वाङ्मय में सम्पूर्ण सृष्टि के समग्र विषय बीज रूप में, पुष्पित, पल्लवित पुष्प रूप में सर्वदा बिखरे हुए हैं। ज्ञान, दर्शन, जीवन, कला व्यवहार, राजनीति, इतिहास, भूगोल, चिकित्सा आदि समन्वित रूप में एक दूसरे से जुड़े विषय हैं। 'अधिकार' शब्द अत्यन्त व्यापक कलेवर लिए हुए है। घर, परिवार, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी स्तर पर कुछ–न–कुछ अधिकारों की चर्चा हम नित्य प्रति करते हैं। संस्कृत संसार की प्राचीन भाषा में भी अनेकों अधिकारों की विस्तृत व्याख्या, हमें अनेकों ग्रंथों में अलग–अलग प्रकार से विभिन्न संदर्भो में दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में मानव अधिकारों का उल्लेख, इस बात का द्योतक है कि 'भारतीय संस्कृति में मानवाधिकार सदैव बीजरूपेण विद्यमान रहे हैं।[74]

इस अध्याय में मानवाधिकार की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। मानवाधिकारों का परिचय देते हुये इस बात पर ज़ोर दिया गया है। मनुष्य के जन्म से ही कुछ बुनियादी अधिकार होते हैं जैसे जीवन जीने का अधिकार, समानता का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, व्यक्ति का व्यक्तिगत सम्मान एवम् प्रतिष्ठा का अधिकार आदि। मानव अधिकारों को परिभषित करने के उपरान्त इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया गया है। मानव अधिकारों के इतिहास को विभिन्न काल खण्डों में विभक्त करते हुए इस वास्तविकता को उजागर किया है। हर समय एवं हर स्थान पर मानवाधिकार किसी–न–किसी रूप में अवश्य विद्यमान रहे हैं। यद्यपि मानवाधिकार अध्ययन का एक नवीन विषय है, किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में यत्र–तत्र स्थानों पर मानव अधिकारों का उल्लेख मिलता है, जिनका वर्णन भी इस अध्याय में समाहित है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. प्रांजल धर, 'मानवाधिकार और वर्तमान समय' वर्ष 1953, अंक–2, दिसम्बर 2006, पृष्ठ–50
2. यूनाइटेड नेशनस् – डिपार्टमेन्ट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क
3. वी०एस० मणि : "भारत में मानवाधिकार का पुनरावलोकन"

   (मानव अधिकार पर विश्व कांग्रेस संस्थान का पत्र सं० 4, जनपति 1997) पृष्ठ–05

4. लास्की "ए ग्रामर आफ पॉलिटिक्स" पृ० 153
5. पी०एस० बजवा : "भारत में मानवाधिकार, क्रियान्वन एवं उल्लघंन

   (अनमोल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–45)

6. भगव्दगीता – अध्याय 2, श्लोक 47
7. एसो०प्रो० एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, आई० एन०पी०जी० कॉलेज, मेरठ

   इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल सांइसेज–भाग 14 पृ० 74

8. ऑरिजन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ द मोरज आइडियाज–खंड–1 पृ० स० 711 वेस्टमार्क
9. रमेश प्रसाद गोत्तम एवं पृथ्वीपाल सिंह, 'भारत में मानव अधिकार''

   विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, 2001 पृष्ट.117

10. कालिका पुराण – 31/40
11. शतपथ ब्राह्मण – 1/1/2/13
12. विश्वस्य केतुर्भुपनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमान

    वीलुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च।। ऋग्वेद–10/45/6

13. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयापि।

    यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽममिन्द्रो मरूत्वान्त्स ददातु तन्मे।। अथर्ववेदसंहिता –6/122/5

14. समिद्धो अग्नि र्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्डुषसमुर्विया विमाति।

    एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची।। ऋक्संहिता–5/27/1

15. निरूक्त – 2/1/4
16. मनुस्मृति– 2/114
17. मनुस्मृति– 2/148
18. ऋक्संहिता – 10/109/4
19. देवी भागवत पुराण – 1/3/21
20. भैमीमुपाबीणयदेत्य यतकलिप्रियस्य प्रियशिष्यवर्गः।

    गन्धर्ववध्वः स्वरमध्वरीणततकण्ठनालैक धुरीणवीणः।। नैषध.–6/65

21. अभ्यासप्रयोज्यांश्च चतुष्टिकान् योगान् कन्या रहस्ये–काकिन्यभ्यसत्। कामसूत्र – 1/3
22. (क) व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु येन मायिनः।

    प्रविश्य हि ध्वन्ति शठास्तथा विधानासंवृताङ्गान्निशिता इवेषव।। किराता०– 1/30

22. (ख) न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।

    अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः विदधति सोपधि सन्धि इषणानि।। किराता०– 1/45

23. यदवोचत वीक्ष्यमानिनी परितः स्नेहमयेन चक्षुषा।

    अपि वागधिपस्य दुर्वचं वचनं तद्विदधीत विस्मयम् ।। किराता०– 2/2

24. इमामहं वेद न तावकीं धियं विचित्ररूपाः खलु चित्रवृत्तयः।

    विचिन्त्या भवदापदं परां रूजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः।। किराता०– 1/37

25. अपवाह्य त्वया देवी सङ्गामान्नष्टचेतसः।

तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः परिस्ते रक्षितस्त्वया।। रामायण– 2/9/16

26. (क) तस्य दाक्षिण्यरूदेन नाम्ना मगधवंशजा।

पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।। रघुवंशम्– 1/31

26. (ख) क्षितिरिन्दुमती च भामिनी पतिभासाद्य तमग्रयपौरूषम्।

प्रथमा बहुरत्नसूर भूदपरा वीरमजीजनत्सुतम्।। रघुवंशम्– 8/28

27. गृहिणी गृहमुच्यते। महाभारत– 12/145/6

28. (क) गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। रघुवंशम– 8/67

28.(ख) साऽपीश्वरे श्रृण्वति तद्गुणौधसम् प्रसह्म चेतोहरतोऽर्थशम्भुः।

अभूदपर्षाऽड्गुलिरूद्धकर्णा कदा न कण्डूयनकैतवेन।। नैषधीयचरितम्– 3/29

29. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। शतपथ ब्राह्मण– 5/1/6/10

30. श्लाध्यस्त्यागोऽपि वैदेह्याः पत्युः प्राग्वंशवासिनः।

अनन्यजानेः सैवासीधस्माज्जाया हिरण्यमयी।। रघुवंशम्– 15/61

31. महाभारत – 13/105/14

32. कौटिल्यअर्थशास्त्र– तृतीय अधिकरण, दूसरा अध्याय

33. वैवाहिको विधि : स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।

पतिसेवा गुरौ वासो गृहर्थौऽग्निपरिक्रिया।। मनुस्मृति– 2/67

34. यथासिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।

एवा त्वं सम्राज्येधि पत्युरस्तं परेत्य।।

सम्राज्येधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषु।

ननान्दुः सम्राज्येधि सम्राज्युतः श्वश्रवा।। अथर्ववेद संहिता– 14/1/43–44

35. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।

यथा नः सुभगाससि यपा नः सुफलाससि।।

इन्द्रः सीता नि गृह्यतु तां पूषानुयच्छतु।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।। ऋग्वेद संहिता– 4/57/6–7

36. जायेदस्तम् – ऋग्वेद 3/53/4
37. पत्नी हि पारिणाहयस्येशे। तैत्तिरीय संहिता– 6/2/1/1
38. यदि कुर्यात्समानंशान्पत्नयः कार्याः समांशिकाः। याज्ञवल्क्य स्मृति –2/115
39. अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि।

भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम्।। मनुस्मृति– 9/194

40. वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनं। परद्विसाहस्त्रा स्थाप्या वृत्तिः।

आबन्ध्यानियमः।। अर्थशास्त्र– 3/2

41. (क) भर्तापि तावत्क्रथकैशिकानामनुतिष्ठतानन्तरजाविवाहः।

सत्तवनुरूपाहरणीकृतश्रीः प्रास्थापय द्राधवभन्वगाच्चः।। रघुवंश 7/32

41.(ख) न तेन वाहेषु विवाहदक्षिणीकृतेषु सङ्खयानुभवेऽभवत् क्षमः।

नशातकुम्भेषु न मत्तकुम्भिषु प्रयत्नवान् कोऽपि न रत्नराशिषु।। नैषध–16/34

42. जायापत्योर्नविभागो विद्यते।। आपस्तम्ब धर्मसूत्र– 2/6/14/20
43. दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद्गृहमेधिनः। महाभारत– 13/141/43
44. त्रिसहस्त्रपरो दामः स्त्रियै देयो धनस्य वै।

भर्त्ता तच्च धनं दत्तं यथार्हं भेक्तुमर्हति।। महाभारत– 13/47/23

45. पुमान्पुसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः इति वचनात्।

स्त्रयवानां दुहितृषु बाहुल्यात्स्त्रीधनं दुहितृगामि।। मिताक्षरा टीका – 2/117

46. मातृदुहितरः शेषमृणात् ताम्यऋतेऽन्वयः। याज्ञवल्क्य स्मृति – 2/117
47. जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदरा ।

भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः।। मनुस्मृति– 9/192

48. रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितरोवा।.....

अदायादकं राजा हरेत् स्त्रीवृत्ति प्रेमकार्यवजम्।। अर्थशास्त्र–3/5

49. पत्नी दुहितरश्चैव व पितरौ भ्रातरस्तथा।

तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिण।।

एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः।

स्वर्यातस्य हयपुत्रस्य सर्वपणैष्वयं विधि।। याज्ञवल्क्य स्मृति –1/135–36

50. सौन्दरानन्द– 2/27
51. बुद्धचरितम्– 2/6
52. कौटिल्य अर्थ प्रकरण– 1/3
53. मनुस्मृति– 8/303
54. मनुस्मृति– 8/304
55. मनुस्मृति– 8/306
56. मनुस्मृति– 8/305
57. मनुस्मृति– 8/308
58. मनुस्मृति– 8/336
59. स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक्।

स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतिताः स्युरदित्सव।। मनुस्मृति – 9/118

60. विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान्।

ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः।। याज्ञवल्क्य स्मृति – 2/114

61. अभ्रातेव पुंसएति प्रतीची गर्तायगिव सनये धनानाम्।। ऋग्वेद – 1/124/7
62. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेणः दुहिता समा।

तस्यामात्मनि तिष्ठयन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। महाभारत – 3/45/12

63. ऋग्वेद – 10/85/13–38

64. अथकेन प्रमाणेन पुंसामादीयते धनम्।
पुत्रवृद्धि पितुस्तस्य कन्या भवितुमर्हति।। महाभारत – 13/45

65. अविशेषेण पुत्रावां दायो भवति धर्मतः।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वयम्भुवोऽब्रवीत्।। निरूक्त – 3/4

66. ऋतस्य योनौं सुकृतस्य लोके। ऋग्वेद संहिता– 10/85/24

67. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्रजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः।। मनुस्मृति – 3/21

68. अथेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थ स्वसुरिन्दुमत्याः।
आप्तः कुमारानयनोत्सुकेन भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः।। रघुवंशम्– 5/39

69. तस्यबुद्धिरियं जाताचिन्तयानस्य सततम्।
स्वयंवरं तनूजायाः करिष्यामीति धीमतः।। रामायण– 2/118/38

70. ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाहूय नराधिपान्।
पिता स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम।। महाभारत –1/112/3

71. स तत्र मञ्चेषु मनोज्ञवेषान्सिंहासनस्थानुपचारवत्सु।
वैमानिकानां मरूतामपश्यदाकृष्टलीलान्नरलोकपालान्।। रघुवंशम् –6/1

72. इयं महेन्द्रप्रभृतीपन धिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात् पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति।।कुमारसंभवम्– 5/53

73. अनैषधायेव जुहोति किं मां तातः कृशानौ न शरीरशेषाम्।
ईष्टे जनूजन्मतनोस्तथाऽपि मत्प्राणानाथस्तु नलस्य एव।। नैषधीयचरितम् –3/79

74. कमला वशिष्ठ,मानवाधिकार शिक्षा और भारतीय संस्कृति, आशा कौशिक, पृ. 243

द्वितीय अध्याय

बृहत्त्रयी के ग्रन्थों का परिचय

खण्ड (क) : भारवि कृत किरातार्जुनीयम्

खण्ड (ख) : माघ कृत शिशुपालवधम्

खण्ड (ग) : श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम्

बृहत्त्रयी के ग्रन्थों का परिचय

बृहत्त्रयी परिचय

"आत्मा यथा शरीरेषु तथा भाषासु संस्कृतम्

वर्तते लोकभाषाणां तत्सम्वायिकारणम्।।"

अपने आप में अपूर्व भावात्मक शब्द संस्कृत, जो संस्कारों के भावों को अपने में अन्तर्निहित किये हुए संस्कृति का बोध कराता है। यह भाषा प्रकृति प्रत्यय के विश्लेषण द्वारा अर्थ तत्वों को सरल, सुगम तथा भाव प्रकाशमान बनाती है, इसी संस्कृत भाषा में साहित्य रचा गया है। संस्कृत भाषा के विकास के दो रूप उपलब्ध हैं– वैदिक भाषा और लौकिक भाषा।

वैदिक संस्कृत में वेदों की रचना की गई, जबकि लौकिक भाषा में रामायण, महाभारत तथा परवर्ती विपुल साहित्य रचा गया है। संस्कृत भाषा का साहित्य विस्तृत व समृद्ध है। साहित्य का शाब्दिक अर्थ है – शब्द और अर्थ का मंजुल समन्वय।

'सहितयोभावः साहित्यम्'[1] और यह संबंध शाश्वत है।

इसलिए कहा गया है – नित्यः शब्दार्थसम्बन्धः[2] अर्थात् शब्द और अर्थ का यह पारस्परिक विशिष्ट सम्बन्ध नित्य है। इन दोनों को पृथक नहीं किया जा सकता है, इनका नित्य साहचर्य रहता है।

कालिदास ने भी रघुवंश में शब्द और अर्थ के सहभाव की ओर संकेत किया है–"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।"[3]

इसी प्रकार महाकवि माघ ने शिशुपालवधम् में –

"नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरूषे।

शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।"[4]

अर्थात् बुद्धिमान लोग केवल पुरुषार्थ पर ही निर्भर नहीं रहते, किन्तु जिस प्रकार श्रेष्ठ कवि शब्द तथा अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार विद्वान भी भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों का अवलम्बन करता है। इसलिए न केवल शब्द और न केवल अर्थ साहित्य कहलाते हैं, अपितु दोनों मिलकर ही 'साहित्य' कहलाते है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। समाज के रूप, रंग, वृद्धि, ह्रास, उत्थान–पतन, समृद्धि–दुरवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी प्रकार साहित्य, संस्कृति का प्रधान वाहक होता है, संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रचार तथा प्रसार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है।

संस्कृति का मूल यदि भौतिकवाद पर आश्रित रहता है, तो वहाँ का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता और यदि संस्कृति के भीतर आध्यात्मिकता की भव्य भावनाएं हिलोरें मारती रहती हैं, तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुए बिना नहीं रह सकता। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है, तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार की विपुल निधि को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण, संस्कृति का वाहक होता है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास पूर्वोक्त सिद्धांत का पूर्ण समर्थक है। संस्कृत साहित्य भारतीय समाज के भव्य विचारों का रूचिर दर्पण है। भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण, भारतीय समाज जीवन–संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को पृथक रखकर आनन्द की अनुभूति को, वास्तव में शाश्वत आनन्द की उपलब्धि को, अपना लक्ष्य मानता है। इसलिए संस्कृत काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान का विशुद्ध पूर्ण रूप है। इसीलिए संस्कृत–काव्य की आत्मा का

रस है। रस का उन्मीलन – श्रोता तथा पाठक के हृदय में आनन्द का उन्मेष ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है।

साहित्य शब्द का प्रयोग संक्षिप्त में काव्यादि में किया जाता है, साहित्य का ही दूसरा नाम काव्य भी है। अतः साहित्य शब्द के वास्तविक अर्थ का परिचायक 'काव्य' शब्द को समझना चाहिए। संस्कृत में काव्य शब्द से श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य दोनों को ही ग्रहण किया जाता है। दण्डी कहते है कि "यथा सामर्थ्यमस्माभिः क्रियते काव्य लक्षणम्"[5]

भामह अपने 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ की समाप्ति पर कहते हैं – "अवलोक्य मतानि सत्कवीनामवगम्य स्वधिया च काव्य लक्षणम्"।

अतः प्रतीत होता हैं कि साहित्य शब्द का प्रयोग 'काव्य' अर्थ में भी बहुधा हुआ है। काव्यादि मनोरंजन के साधन नहीं है, ये मानव समाज एवं जीवन के लिए बहुत उपादेय हैं। काव्य मनुष्य को रस समुंद्र में निमग्न करता ही है, साथ ही कान्तासम्मित उपदेश के रूप में जीवन को सुमार्ग की ओर प्रेरित करता है।

भर्तृहरि ने साहित्य काव्यादि से विहीन व्यक्ति को मनुष्य न मानकर पशु कहा –"साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाण हीनः"।[6]

अतः कह सकते हैं कि संसार का यह शाश्वत नियम है कि प्राणिमात्र आधिकारिक एवं नित्य सुख–समृद्धि की कामना करता है तथा उसकी सिद्धि के लिए सरल से सरल साधना चाहता है। यद्यपि इसके लिए योग साधना, तपश्चरण, वेदाध्ययन आदि अनेक साधन शास्त्रकारों ने बतलाये हैं, तथापि काव्य को ही समस्त सुखों का सरलतम साधन आचार्यों ने स्वीकार किया है।

"कविः करोति काव्यानि स्वादं जानन्ति पण्डिताः।

सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता।।"[7]

काव्यों में जो कवि रचना करता है, वह स्वयं के लिए न होकर सर्वदा दूसरों के लिए रचना करता है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि किसी सुन्दरी के सौन्दर्य को उसका पति तो जानता है परन्तु उसका पिता नहीं, यद्यपि वह उसका स्रष्टा है।

परिणामतः सहृदय सामाजिक ही काव्य के रस को जान सकता है इसलिए कहा गया है कि – 'स्वादं जानन्ति पण्डिताः इति'

काव्य कवि की कृति है यथा – "कवेः कर्म काव्यम्" (साहित्य दर्पण)

वेदों में कहा गया है – "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।" अर्थात् उस परमेश्वर के इस जगद्रचना रूप काव्य को देखो जो न तो कभी नष्ट होता है और न कभी जीर्ण होता है।

"परमेश्वर कवि है।"

"कविर्मनीषी परिभूः स्वयं भूः।"[8]

संस्कृत साहित्य में कवि की रचना को ईश्वर की सृष्टि के समानान्तर विलक्षण माना गया है। वाल्मीकि, कालिदास, भर्तृहरि, दण्डी, बाण या हिन्दी साहित्य के तुलसीदास जैसे सिद्ध सारस्वत कवियों का रचनासंसार प्राचीन होते हुए भी नवीन लगता है, उनकी नित्य नवीनता क्षीण नहीं हुई क्योंकि वह देश के कवियों की अमर सृष्टि है और उसकी नवीनता हृदय को चमत्कृत कर देती है।

अतः कवि की रचना सदा नवीन है। समीक्षाएं पुरानी हो जाती हैं, कवि की अमर कृति हमारे प्रत्येक वर्तमान में नवीन हो जाती है, विलक्षण लगती है, इसीलिए ईश्वर की सृष्टि के समानान्तर ही कवि की विलक्षण काव्य सृष्टि मानी जाती है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि को स्वयं प्रजापति या ब्रह्मा और काव्य संसार को उसकी सृष्टि कहा है।

"अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते।।"[9]

मम्मटानुसार –

"नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।

नवरस रूचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।"[10]

अर्थात् कवि की भारती विधि के विधानों से विलक्षण है। ब्रह्मा की सृष्टि सुख दुःखमय है, यह केवल आनन्दमय है, काल के परतन्त्र नहीं है। ब्रह्मा की सृष्टि में केवल षड्रस है, इसमें नवरस है, ऐसी भारती की जय हो, किन्तु मम्मट की उक्ति अतिवाद मात्र है। कवि की कृति इसलिए विलक्षण नहीं, कि इसमें नवरस है और ईश्वर की सृष्टि में षड्रस ही है परन्तु विलक्षण इसीलिए है कि कवि की कृति में ऐसा रस है जिसका स्वाद एकमात्र आनन्द ही है जो कि ईश्वरीय रचना के समान प्रतिदिन देखे जाने पर भी पुरानी प्रतीत नहीं होती।

अतः ईश्वर की सृष्टि के साथ यह समानता ही कवि के काव्य की विलक्षणता है। सृष्टि काव्य है, शब्दार्थ भी काव्य है, दोनों सदैव नूतन और विलक्षण हैं। काव्य कला का वह सर्वोत्कृष्ट रूप है, जो जीवन को सौन्दर्यात्मक एवं गत्यात्मक बनाता है। यह (काव्य) वह औषधि है, जो बड़े–बड़े रोगों को सहजतः दूर करने में समर्थ है। यह वह अस्त्र है, जिसके सामने बड़े–बड़े योद्धाओं को भी घुटने टेकने पड़ जाते हैं तथा यह वह वशीकरण है जिससे पशु–पक्षियों अथवा मनुष्यों को ही नहीं, अपितु देवताओं को भी अपने अनुकूल बनाया जा सकता है।

अग्निपुराणकार महर्षि व्यासानुसार –

संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद् दोषवर्जितम्।।[11]

अर्थात् संक्षिप्त इष्ट अर्थयुक्त, स्फुट, अलंकार युक्त, गुणयुक्त तथा दोषरहित पदावली को काव्य कहते हैं। आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। ध्यन्यालोक की 'लोचन' व्याख्यान् में "कविनयं काव्यं" व्युत्पत्ति की है।

बृहत्त्रयी

इस प्रकार वर्णन करने वाले या जानने वाले को 'कवि' तथा उसके कर्म या कृति को 'काव्य' कहते है। प्रत्येक साहित्य में प्रतिभाशाली कवियों की लेखनी से प्रसूत कुछ ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं, जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा लेकर अवान्तर कालीन कविगण अपने काव्यों को सजाया करते हैं। ऐसे काव्य व्यापक प्रभाव–सम्पन्न होने के कारण 'उपजीव्य काव्य' कहलाये। संस्कृत साहित्य में निम्नलिखित तीन काव्य उपजीव्य काव्य माने जाते हैं –

1. रामायण
2. महाभारत
3. श्रीमद्भागवत

महाभारत की घटनाओं को आधार बनाकर बृहत्त्रयी महाकाव्यों की रचना की गई, जिसमें तीन महाकाव्य परिगणित हैं।

1. किरातार्जुनीयम्
2. शिशुपालवधम्
3. नैषधीयचरितम्

इन तीनों महाकाव्यों में कथानक, नायक और रस से सम्बद्ध महाकाव्य के महत्त्वपूर्ण लक्षण निहित हैं। कुछ लक्षण बहिरंग अथवा केवल विषय निर्वाह के लिए अपेक्षित हैं, परवर्ती महाकाव्य इन्हीं पर अधिक ध्यान देते है।

कथानक की दृष्टि से ये तीनों महाकाव्य किसी प्रसिद्ध या ऐतिहासिक घटना पर आश्रित हैं, आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, "इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्"[12]

नायक– किसी देवता को नायक होना चाहिए (तत्रैको नायकः सुरः)[13] अथवा 'धीरोदात्त' के गुणों से युक्त, अच्छे वंश का क्षत्रिय नायक हो (सद्वंशः क्षत्रियो वापि

धीरोदात्तगुणान्वितः)[14] अथवा एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा नायक हों (एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा)[15]

क्रमशः किरातार्जुनीयम् का नायक अर्जुन, शिशुपालवधम् का नायक कृष्ण एवं नैषधीयचरितम् का नायक नल है। इन तीनों महाकाव्यों के नायकों में नायकों के सभी शास्त्रोक्त गुण विद्यमान हैं। यथा – तीनों ही महाकाव्यों के नायक अर्जुन, कृष्ण एवं नल सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय है। धीरोदात्त (अविकत्थन, क्षमावान, अतिगंभीर, महासत्व, स्थिरमति, आत्मसमानी, दृढ़व्रत व्यक्ति) आदि गुणों से युक्त है। एवं तीनों ही महाकाव्यों की कथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

रस की दृष्टि से श्रृंगार, वीर अथवा शान्त रस को प्रधान रस बनाकर अन्य सभी रसों को अंग के रूप में रखा जाना चाहिए। (श्रृंगारवीरशान्ता नामेकोऽङ्गी रस इष्यते। अंङ्गानि सर्वेऽपि रसाः)[16]

नैषधीयचरितम् में श्रृंगार की, किरातार्जुनीयम् और शिशुपालवधम् में वीर रस की प्रधानता है।

अतः हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्य में बृहत्त्रयी से तात्पर्य, तीन महाकाव्यों से है जो संस्कृत साहित्य के तीन विशाल आधार स्तम्भ हैं।

यद्यपि संस्कृत साहित्य में परस्सहस्त्रों महाकवि एवं उनके रचित ग्रन्थ रत्न हैं, तथापि कवि कृतियों में–भारवि कृत–किरातार्जुनीयम्, माघ कृत– शिशुपालवधम्, श्री हर्ष कृत–नैषधीयचरितम् एवं कालिदास कृत रघुवंशम् और कुमारसंभवम्, इन पाँच काव्यों का अध्ययनाध्यापन लोकप्रिय व प्रचलित था। 'मेघदूत' नामक खण्डकाव्य भी लोकप्रियता में इनके समकक्ष विद्यमान था।

अतः इन छः काव्यों में रघुवंशम्, कुमारसंभवम् और मेघदूतम्, जो महाकवि कालिदास की कृतियां हैं, लघुत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं, शेष किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् तथा नैषधीयचरितम् महाकाव्य क्रमशः भारवि माघ तथा श्रीहर्ष के रचे हैं और ये बृहत्त्रयी कहे जाते हैं।

खण्ड (क) : भारवि कृत किरातार्जुनीयम्

भारवि परिचय

"अर्थदीधितिसंवीता, सन्नीरजसुहासिनी।
अज्ञोलूकनिरानन्दा, भा रवेरिव भारवेः।। (कपिलस्य)
"विमर्दे व्यक्तसौरम्या भारती भारवेः कवेः।
धत्ते बकुलभालेव विदग्धानां चमत्क्रियाम्।। (अज्ञात)

संस्कृत साहित्य में महाकवि भारवि काव्य जगत के मूर्धन्य विद्वान एवं रससिद्ध कवीश्वर हैं। भारवि 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में विख्यात हैं। भारवि की प्रतिभा की प्रखरता तो उनके नाम से ही विदित होती है – भा–रवि अर्थात् सूर्य का तेज़।

भारवि ने महाकाव्यों के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही बल अधिक रहता है। पाण्डित्य प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है।

भारवि के जीवनवृत्त के विषय में उनका एकमात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' एकदम मौन है, भारवि का प्रमाणिक जीवनवृत्त सर्वथा अप्राप्त है। सौभाग्यवश दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के प्रारम्भ में अपने पूर्वजों का वृत्तान्त कुछ विस्तार के साथ दिया है, जिसमें लिखा है कि उनके पिता का नाम नारायण स्वामी था तथा वास्तविक नाम दामोदर था, 'भारवि' तो उनकी उपाधि थी।

भारवि को दण्डी के प्रपितामह के रूप में बताया गया था। इसी कथा के अनुसार, भारवि पुलकेशिन द्वितीय के अनुज, विष्णुवर्धन के सभा पण्डित थे।

अन्य किंवदन्ति के अनुसार, भारवि धारा नगरी के निवासी थे, उनकी माता का नाम सुशीला और पिता का नाम श्रीधर था। उनकी पत्नी का नाम रसिकवती या रसिका था। प्रायः सभी विद्वानों ने भारवि को दाक्षिणात्य माना है।

प्रोफेसर आर० आर० भागवत ने किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के निम्न श्लोक के आधार पर प्रमाणित किया है कि ये दक्षिण के निवासी थे –

"उरसि शूलभृतः प्रहिता मुहुः प्रतिहतिं ययुरर्जुनमुष्टयः।

भृशरया इव सह्यमहीभृतः पृथुनि रोधसि सिन्धुमहोर्मयः।।[17]

कहा जाता है कि –

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदां पदम्।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाःस्वयमेव सम्पदः।।[18]

यह श्लोक भारवि का प्रिय श्लोक था। उनके पिता योग्यता वृद्धि हेतु इन्हें समय–समय पर टोकते थे। एक बार भारवि के सम्मान में आयोजित सभा में उनके पिता ने उन्हें डाँट दिया। क्रुद्ध भारवि ने पिता की हत्या का निश्चय किया। रात्रि में घर पहुँचने पर खिड़की से देखा, तो उन्हें सामने श्लोक दिखाई दिया। वह वहीं रूक गये और माता–पिता का वार्तालाप सुनने लगे। जब उन्होंने सुना कि पिताजी कह रहे हैं कि मैंनें उसकी योग्यता वृद्धि के लिए उसे डाँटा है, यह सुनकर उनका क्रोध शान्त हो गया और अनुचित क्रोध हेतु माता–पिता से माफी मांगी। तत्पश्चात् भारवि ने पिता से अपराध का प्रायश्चित पूछा तो उन्होंने कहा कि ससुराल जाकर सेवावृत्ति करो। उन्होनें वहाँ गौ सेवा का कार्य किया। किसी समय पत्नी की आवश्यकता पूर्ति हेतु उन्हें एक वणिक से कुछ ऋण लेना पड़ा और धरोहर के रूप में उन्होंने "सहसा विद्धीत् न क्रियाम्" श्लोक रख दिया।

वणिक विदेश चला गया, कुछ समय पश्चात् लौटा। उसका बालक युवक हो चुका था और माता के पास सो रहा था। वणिक ने उसे पर–पुरुष समझकर पुत्र और पत्नी दोनों को मारना चाहा। उसे सहसा धरोहर का श्लोक याद आ गया, उसने पत्नी को जगाया। तब ज्ञात हुआ कि वह पर–पुरूष नहीं अपितु उसी का इकलौता बेटा है। अतः वणिक ने श्लोक कर्त्ता को हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की।

भारवि परम शैव थे। यह बात 'किरातार्जुनीयम्' के कथानक तथा 'अवन्तिसुन्दरी' कथा के उल्लेख से पता चलती है। 'किरातार्जुनीयम्' के 15वें सर्ग में शिवस्तुति भी बड़े भावुक रूप में की गई है।

भारवि का उपनाम 'आतपत्र भारवि' था।

"उत्फुल्लस्थलनलिनीवनादमुष्मादुद्धूतः सरसिजसम्भवः परागः।

वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधत्ते कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्।।[19]

अर्थात् स्थल कमलों के वन खिले हैं। उनमें पीत पराग झर रहे हैं, हवा झोंके से बह रही है। वह पराग को उड़ाकर आकाश में फैला रही है।

इस प्रकार कमल का पराग सोने के बने छाते की शोभा धारण कर रहा है। आकाश में फैला पराग सोने के पीले छाते की तरह जान पड़ता है।

यहाँ सहृदयों को भारवि का कनकमय आतपत्र का सुन्दर प्रयोग इतना अच्छा लगा कि उन्होंने भारवि का नाम ही "आतपत्र भारवि" रख दिया।

स्थितिकाल

कालिदास के साथ भारवि का नाम दक्षिण के चालुक्यवंशी नरेश पुलकेशी द्वितीय के समय के ऐहोल शिलालेख में मिलता है। यह शिलालेख बीजापुर जिले के 'ऐहोड़ नामक' ग्राम में एक जैन मंदिर में मिला, जिसका समय 556 शताब्दी है। (634 ई०) शिलालेख की प्रशस्ति पुलकेशी के आश्रित रविकीर्ति नामक किसी जैन कवि ने की है। जिसमें इन्होंनें कविता निर्माण करने में कालिदास तथा भारवि के समान स्वयं को यशस्वी बताया है।

"येनायोजि नवेऽश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित/कालिदास/भारविकीर्तिः।।[20]

दुर्विनीत ने वृहत्कथा का 'शब्दावतार' नाम से किरातार्जुनीयम् के 15वें सर्ग की टीका में इनका समय षष्ठ शताब्दी के उत्तरार्ध (550–600 ई०) में माना है।[21]

अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार भारवि सिंहविष्णु का आश्रित कवि था। सिंहविष्णु का शासन काल 575 से 600 ई० के मध्य है। वह कांची का पल्लव राजा था। सिंह विष्णु से मिलने के समय भारवि की आयु 20 वर्ष बताई गई हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारवि का समय 560 ई० के लगभग है।

विष्णुवर्धन पुलकेशी द्वितीय का छोटा भाई था। उसने सेनापति के रूप में हर्षवर्धन को हराया था एवं गोदावरी जिले में पिष्टुपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्यवंश की स्थापना 615 ई० में की थी।[22] भारवि की विष्णुवर्धन से मित्रता थी,[23] अतः उसने भारवि को अपना सभा पण्डित बनाया था। और भारवि का रचनाकाल 580 ई० के बाद है इस प्रकार भारवि का रचनाकाल 615 ई० के लगभग रहा होगा। अतः हम कह सकते है कि किरातार्जुनीयम् की रचना करने में 40 से 50 वर्ष का समय लगा होगा। अतः किरातार्जुनीयम् की रचना का यही काल ज्ञात होता है।

बाणभट्ट ने अपने हर्षचरितम् में पूर्ववर्ती कवियों का नामोल्लेख करते समय भारवि को विस्मृत कर दिया। यह सातवीं सदी के लब्धप्रतिष्ठ महाकवि थे।

तद्नुसार भारवि का समय बाणभट्ट का परवर्ती होना सिद्ध होता है।

भारवि की शैली एवं भाषा सौष्ठव

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के दैदीप्यमान रत्नों में से एक हैं। भारवि का काव्य भाषा, भाव, काव्य–सौन्दर्य, रस–परिपाक, वर्णन–वैचित्र्य, अंलकार–प्रयोग, विविध छन्दोयोजना और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर निदर्शन है। उनकी भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है। शब्द संचय भी भावानुकूल है, जिसमें प्रसाद, माधुर्य तथा ओज तीनों गुण विद्यमान है। भाषा में शैथिल्य का नितान्त अभाव है। किरातार्जुनीयम् उदात्त कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही हैं। अर्थ–गाम्भीर्य और अर्थ–गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है।

भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है। अलंकारों के प्रयोग में उनकी जादूगरी दर्शनीय है।

15वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहुरंगी छटा इन्द्रधनुष की कान्ति को भी निष्प्रभ कर देती है। कहीं एक अक्षर वाले श्लोक है,तो कहीं दो अक्षर वाले, कहीं पादादियमक है तो कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है (विषम वर्णो पर वर्ण परिवर्तन) तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा और उल्टा या नीचे ऊपर, जिस प्रकार भी पढ़ा जाएगा, वही पद बनता है। तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है, कहीं दो पद समान हैं तो कहीं चारों पद एक ही हैं, कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं श्रृंखला–यमक, कहीं निरोष्ठ्य वर्ण श्लोक है तो कहीं अर्धभ्रमक, कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक है तो कहीं चार अर्थ वाले भी श्लोक हैं।

वस्तुतः भारवि संस्कृत–काव्यों में रीति शैली के जन्मदाता हैं। भारवि का प्रकृति–चित्रण, अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण, अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना सम्बन्धी दक्षता प्रदर्शित की है। उनका काव्य सौन्दर्य 'नारिकेलफल सम्मितम्' माना गया है जो बाहर से कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर है। वेद, उपनिषद् दर्शन, पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से सम्बद्ध वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं। 'भारवेरर्थगौरवम्' 'भा रवेरिव भारवेः, प्रकृति मधुरा भारविगिरः' आदि सूक्तियाँ भारवि की गरिमा को प्रकट करती हैं।

भाषा में लालित्य, माधुर्य और प्रौढ़ता का सुन्दर समन्वय है। जैसे – तपस्या के लिए जाते समय द्रौपदी से विदाई लेते हुए अर्जुन का सुन्दर वर्णन –

"अकृत्रिमप्रेमरसाभिरामं रामाऽर्पितं दृष्टिविलोभि दृष्टम्।

मनःप्रसादाञ्जलिना निकामं जग्राह पाथेयमिवेन्द्रसूनुः।।[24]

भारवि की काव्यशैली सामान्यतः वैदर्भी है, जिसमें समास साहित्य या अल्पसमासता रहती है, किन्तु कालिदास की शैली के समान कोमलता, पद्लालित्य और परिष्कार का इसमें अभाव है। पाण्डित्य और कवित्व दोनों के प्रति समान

आकर्षण के कारण भारवि भावों के सौन्दर्य पर तो ध्यान रखते हैं, किन्तु शब्दों की मधुरता का बलिदान उनके पाण्डित्य के निकषोपल पर हो जाता है।

राजनीति जैसा शुष्क विषय हो या शरद् वर्णन जैसे सरस विषय आयें, भारवि की भाषा शैली रूक्षता नहीं छोड़ती। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने इनकी वाणी को 'नारिकेलफलसम्मित' कहा है।

नारियल ऊपर से रुक्ष ही नहीं, परस्पर रेशों के संघटन के कारण अभेद्य भी होता है, उसकी अन्तः सरसता ऊपर से नहीं जानी जा सकती।

वही बात भारवि के काव्य के बहिरंग में (भाषा शैली) निहित है। किन्तु ऊपरी रेशों को दूर हटाकर जब भावों के सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जाए, तो चित्त प्रसन्न हो जाता है। बहिरंग – प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है, तो अन्तरंग – चित्त को द्रवित करता है।

द्रौपदी के उत्तेजक भाषण में कवि ने दोनों क्षमताएँ दिखाई हैं जैसे

"वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती, कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।

कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ, यमौ विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम्।।[25]

भारवि ने भावाभिव्यक्ति के द्वारा अर्थगौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारों का मधुर संमिश्रण किया है।

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।

रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वाचित्।।[26]

उपर्युक्त श्लोक में भारवि ने पदों में स्पष्टता, अर्थगौरव युक्तता, अपुनरूक्तदोष और साकांक्षता गुणों को वाणी के गुणों के रुप में वर्णित किया है। उन्होंने अपनी भाषा में भी इन सभी गुणों के समावेश का प्रयास किया है।

भारवि की भाषा उदात्त तथा हृदय को शीघ्र प्रभावित करने वाली है। ये कोमल भावों को प्रकट करने में उतनी ही समर्थ है जितनी उग्र भावों के प्रकाशन में। भाषा

के वैभव का अत्यन्त सुन्दर रूप में वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि प्रसाद, माधुर्य और अर्थगौरव से युक्त वाग्देवी पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती है।

"विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती"।।[27]

महाकवि भारवि के अनुसार भाषा में राजनीति से युक्त व्यंग्योक्तियों के माध्यम से अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु "शठे शाठ्यम् समाचरेत्।" की नीति को अपनाना पड़े, तो उसे भी अपनाना चाहिए क्योंकि जो लोग अपने मायावी शत्रु के साथ मायावी नहीं बनते वे मूर्ख हैं और सदैव पराजित होना ही उनकी नियति है क्योंकि ऐसे निष्कपट सीधे–साधे लोगों में दुष्ट वैसे ही घुस जाते हैं यथा – चौखे बाण नंगे बदन वाले योद्धा के भीतर घुसकर उसे मार देते हैं।

"व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि ध्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः"।।[28]

भारवि ने श्रृंगार और वीर रसों के वर्णन में अतिशय सिद्धहस्तता दिखाई है।

यथा– जल क्रीड़ा के वर्णन में श्रृंगार रस का सुन्दर चित्रण किया है। पति ने पत्नी का हाथ अधिकार पूर्वक पकड़ा जिससे प्रेम विभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गए और आर्द्र मेखला ने उन्हें रोक कर लज्जा संवरण किया।

विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम्।।"[29]

वीर रस के द्वारा शिव सेना के पराक्रम, उत्साह और अघर्षणीयता का सुन्दर चित्रण है।

सुगेषु दुर्गेषु च तुल्यविक्रमैर्जवादहंपूर्विकया यियासुभिः।
गणैरविच्छेदनिरूद्धमाबभौ वनं निरूच्छ्वासमिवाकुलाकुलम्।।[30]

महाकवि भारवि महाकाव्यों में रीति शैली के जन्मदाता हैं, उन्होंने ही सर्वप्रथम चित्रालंकारो का प्रयोग बाहुल्य से किया है। यद्यपि अलंकारो की सुन्दर छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है तथापि 15वें सर्ग में युद्ध के प्रसंग में चित्रालकांरो में केवल एक वर्ण का प्रयोग, भारवि के असाधारण कौशल का ज्वलन्त निदर्शन है।

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।।"[31]

अर्थात् (नानानना) – हे अनेक मुख वाले शिव सैनिको, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरूष (ना न) वस्तुतः पुरूष नही है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है। ऐसा (ना ननु अना) पुरूष वस्तुतः पुरूष से भिन्न देवता है। (न – नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध युक्त नहीं हो सकता।

चित्रालंकारों का एक उदाहरण गोमुत्रिकाबन्ध है, इसमें प्रत्येक चरण में विषम वर्णों पर वर्ण परिवर्तन हो सकता है।

"नासु रोऽयं न वा नागो धरसंस्थो न राक्षसः।
ना सुखोऽयं नवाभोगो धरणिस्थो हि राजसः।।"[32]

स्कन्ध अपनी भागती हुई सेना को समझाते हुए कहते हैं कि यह मुनिवेशधारी अर्जुन न दैत्य हैं न नागराज (गजेन्द्र या सर्पराज) हैं न पर्वताकार राक्षस ही हैं, अपितु सुखद, महोत्साही, रजोगुण प्रधान एवं भूतलचारी एक मनुष्य है।

इसी प्रकार चित्रालंकार का एक अत्यंत श्रमसाध्य भेद सर्वतोभद्र है, इसे सीधा, उल्टा, ऊपर या नीचे जिस प्रकार भी पढ़ा जाएगा, वही पद बनता है।

"देवाकानिनिकावादे वाहिकास्वस्वकाहिवा।
काकारेभभरेकाका निस्वभव्यव्यभस्वनि।।"[33]

शिव की भागती हुई सेना के प्रति सेनापति स्कन्ध का कथन–कि आप लोग कायरता दिखाकर हमारे गौरव को नष्ट न कीजिए। काकाः–हे काक तुल्य पुरूषों! इस युद्ध में जो कि, देवकानिनि–देवों के लिए उत्साहप्रद है। कावादे–वाग्युद्ध प्रधान है। वाहिकास्वस्वकाहि वा–क्रमशः नेतृत्व के समय शत्रुओं पर सम्यक्तया प्रहरणशील है। काकारेभभरे–मदस्त्रावी हस्ति–समूह से सुशोभित है अर्थात् अपना पुरुषार्थ न छोड़िये।

इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो–दो अर्थ निकलते हैं।

"धनं विदार्यार्जुनबाणपूगं, ससारबाणोऽयुगलोचनस्य।

धनं विदार्यार्जुनबाणपूगं, ससारबाणोऽयुगलोचनस्य।।[34]

इधर त्रिलोचन शिव का शक्ति सम्पन्न (ससार) और ध्वनियुक्त बाण अर्जुन के घन बाण–समूह को छिन्न–भिन्न करके व्याप्त हुआ और उधर द्विलोचन अर्जुन का बाण, घने अर्जुन वृक्ष, बाणवृक्ष और सुपारी (पूग) के वनों को चीर कर व्याप्त हुआ।

तो कहीं भारवि ने महायमक का प्रयोग किया है, जिसमें चारों पद समान होते हैं, परन्तु अर्थ पृथक–पृथक निकलते हैं। जो भारवि की विशेष योग्यता का परिचायक है।

"विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा।

विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा।।[35]

प्रथम पद – जगतीश–मार्गणाः विकाशम ईयुः अर्थात् पृथ्वीपति अर्जुन के बाण विस्तार को प्राप्त हुए।

द्वितीय पद – जगति ईश मार्गणाः विकाशम ईयुः – संसार में शिव के बाण वि–काश (विच्छेद) को प्राप्त हुए।

तृतीय पद – जगति–श–मार्–गणाः विकाशम् ईयुः – संसार को दुःख देने वाले राक्षसों को मारने वाले शिव के गण (अर्जुन के पराक्रम से प्रफुल्लित हुए)

चतुर्थपद – जगतीश मार्गणाः विकाशम् ईयुः – जगती के ईश शिव के अन्वेशक देव आदि पक्षियों की गति के साथ आकाश को प्राप्त हुए।इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकारों का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की उस क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है, जो संसार की अन्य भाषा में नहीं है

उपमा

यद्यपि भारवि में कालिदास के तुल्य उपमाओं का बाहुल्य नहीं है, तथापि उपमा–प्रयोगों में सौन्दर्य, सरसता, पाण्डित्य और औचित्य का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। यथा – युधिष्ठिर कहते हैं कि जब मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ होता है तो आगम उसका मार्ग निर्देश करता है, जैसे अन्धकार में दीपक।

"मतिभेदतमस्तिरोहिते गहने कृत्यविधौ विवेकिनाम्।

सुकृतः परिशुद्ध आगमः कुरूते दीप इवार्थदर्शनम्।।"[36]

अन्य अलंकारों के प्रयोग में भारवि ने अपने चातुर्य को दर्शाया है। जिनमें उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिश्योक्ति, अर्थान्तरन्यास, श्लेष आदि हैं।

किरातार्जुनीयम् का कथासार

किरातार्जुनीयम् ग्रन्थ का शुभारम्भ 'श्री' शब्द से होता है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस महाकाव्य की कथा का आधार महाभारत का वन पर्व है। इसमें अस्त्र प्राप्ति के लिए तपस्या करने वाले अर्जुन और किरातपति शिव का परस्पर युद्ध होता है। इन दोनों के युद्ध की प्रधानता के कारण 'प्रधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' इस ग्रन्थ का नाम किरातार्जुनीयम् पड़ा।

द्यूतक्रीड़ा में पराजित होकर युधिष्ठिर के अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास–काल में व्यास के उपदेश से अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कर आराधना से प्रसन्न शिव जी से पाशुपत अस्त्र और इन्द्र आदि देवताओं से अनेकाऽनेक अस्त्रों का लाभ पाकर, द्वैतवन में अपने भाईयों के पास जाते हैं। इतनी छोटी–सी

घटनाओं का अवलम्वन कर भारवि ने 18 सर्गों के किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की रचना कर अपनी अद्भुत कल्पना–कुशलता दर्शाई है।

किरातार्जुनीयम् पद की व्युत्पत्ति है – किरातश्च आर्जुनश्च किरातार्जुनौ।

किरातार्जुनौ अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः किरातार्जुनीयम्।

किराताऽर्जुन शब्द से "शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः"[37] इस सूत्र से 'छ' (ईय) प्रत्यय से किरातार्जुनीय शब्द बनता है अर्थात् किरातपति के वेषधारी शिवजी और अर्जुन के युद्ध को अधिकार कर, किये गये ग्रन्थ को 'किरातार्जुनीयम्' कहते हैं।

किरातार्जुनीयम् के **प्रथम सर्ग** में कौरवों से द्यूतक्रीड़ा में पराजित होकर युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी के साथ द्वैतवन में निवास करते हैं। उस समय दुर्योधन की शासन पद्धति के परिज्ञान के लिए उनके द्वारा प्रेषित ब्रह्मचारी वेषधारी वनेचर आकर दुर्योधन की नीति–कुशलता का सविस्तार वर्णन करता है। उसके जाने के बाद शत्रु के उत्कर्ष से पीड़ित द्रौपदी युद्ध करने के लिए अनेक उत्तेजक वाक्यों से युधिष्ठिर को उपालम्भ देती है एवं अपने कर्तव्यों को करते हुए अधिकारों को प्राप्त करने हेतु व्यंग्योक्ति कहती है।

द्वितीय सर्ग में भीमसेन द्रौपदी के वचन सुनकर उनका प्रशंसापूर्वक अनुमोदन कर युद्ध के लिए युधिष्ठिर को प्रेरणा देते है। इसी बीच वेदव्यास जी वहाँ आते हैं और पाण्डवों द्वारा उनका स्वागत सत्कार किया जाता है।

तृतीय सर्ग– व्यास जी अपने आगमन से कृतार्थ युधिष्ठिर से कहते हैं कि कौरवों और पाण्डवों में समभाव होने पर भी भरी सभा में कौरवों के धर्म से च्युत होने पर तुम्हारे धैर्य और तितिक्षा से 'भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाता' अर्थात् सभी को सज्जनों में पक्षपात होता है और शुभाशंसा करते हैं कि तुम पराक्रम से पुनः राज्य प्राप्त करोगे। अतः जय हेतु तुम्हें उत्कर्ष प्राप्त करना है।

कहा भी गया है – 'प्रकर्षतन्त्रा ही रणेः जय श्री' अर्थात् युद्ध में विजयलक्ष्मी उत्कर्ष के अधीन है, परन्तु भीष्म पितामह, गुरु द्रोण, कर्ण ये सब शत्रु के पक्ष में हैं। हे धर्मराज! जिस विद्या से इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कर अर्जुन दुर्लभ अस्त्र–प्राप्ति से विक्रम सम्पन्न हो इन सब विरोधियों का उन्मूलित कर डालेंगे, मैं उस विद्या को देने आया हूँ। ऐसा कहकर व्यास जी ने विधिपूर्वक उस विद्या को अर्जुन को प्रदान किया और उस पर्वत के मार्गदर्शक एक गुह्यक को वहाँ उपस्थित कर व्यास जी अन्तर्हित हो गये।

चतुर्थ सर्ग में शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन किया है।

पंचम सर्ग में हिमालय पर्वत की सुन्दर छटा का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग– हिमालय पर अर्जुन की तपस्या, तपोविघ्नार्थ इन्द्र का अप्सराओं को भेजना।

सप्तम सर्ग – गन्धर्वो और अप्सराओं के विलास वर्णन।

अष्टम सर्ग– गन्धर्वो और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा और जल–क्रीड़ा।

नवम सर्ग– सन्ध्या और चन्द्रोदय का मनोरम वर्णन। गन्धर्वों और अप्सराओं के आमोद–प्रमोद का वर्णन तथा प्रातः काल का मनोरम वर्णन।

दशम सर्ग– नृत्य गीत और वाद्य आदि प्रयोगों से अविचलित अर्जुन की तपस्या को भंग करने के प्रयास के असफल होने से वे अप्साराएँ और गन्धर्व इन्द्र के पास लौट गये।

एकादश सर्ग – इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप लेकर यात्रा से परिश्रान्त अर्जुन के पास आकर बाण आदि धारण कर तपस्या करने का कारण पूछते हैं, तब अर्जुन द्वारा अपना उद्देश्य सूचित करने पर इन्द्र अहिंसा और शान्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। अनन्तर इन्द्र प्रसन्न होकर अपने रूप में प्रकट होकर अर्जुन को शिवजी की उपासना करने का उपदेश देकर अन्तर्हित हो जाते हैं।

द्वादश सर्ग– तपस्या करते हुए अर्जुन को दर्शक शिवजी, इन्द्र और अग्नि के समान देखने लगे तथा तपस्या के प्रभाव को सहन करने में असमर्थ होकर शिवजी की स्तुति करने लगे। तब शिवजी ने प्रत्यक्ष होकर उनको "ये बदरिकाश्रमवासी नारायण है" ऐसा कहकर अर्जुन का परिचय दिया और कहा कि अर्जुन की तपस्या को देवकार्य समझकर मूक नामक दानव शूकर का रूप लेकर उन्हें मारने आयेगा। मैं भी किरात का भेष धारण कर उसे शर प्रहार से मार डालूँगा। उसी समय अर्जुन भी शर प्रहार करेंगे। ऐसा कहकर उन्हें सान्त्वना देकर शिवजी किरातपति का रुप लेकर और उनके प्रमथादि सैन्य गण भी किरात का रुप लेकर अर्जुन से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गये।

त्रयोदश सर्ग– विशाल शरीर वाले शूकर को अपनी ओर आते देख अर्जुन गाण्डीव धनुष पर शर लेकर प्रहार करने लगे। यह देख शिवजी ने भी उस पर शरप्रहार किया, जिससे शूकर निष्प्राण होकर भूतल पर गिर पड़ा, तब अर्जुन उसके शरीर से बाण लेने के लिए तत्पर हुआ। उसी समय उन्होंने किरातपति शिवजी के भृत्य एक किरात को देखा। अर्जुन को प्रणाम कर कहा कि 'आपको हमारे स्वामी के बाण को इस तरह लेने का कोई अधिकार नहीं है। आप स्वयं उनसे माँग ले, उनके साथ मैत्री कर लें। आपको सब अभीष्ट प्राप्त होगा।'

चतुर्दश सर्ग– विशाल किरात सेना के साथ जिसके अधिपति कार्तिकेय थे। ऐसी सेना के साथ शिवजी का आगमन। राजकुमार अर्जुन का भीषण युद्ध होता है।

पंचदश सर्ग– अर्जुन के बाण प्रहार से सारी किरात सेना भयाविष्ट होकर भागने लगी। तब अर्जुन उनके सेनापति कार्तिकेय से युद्ध करने लगे। कार्तिकेय अपनी सेना को साहस और धैर्य बंधाते हैं। तब शिवजी और अर्जुन का तुमुल संग्राम होने लगा। शिवजी के प्रचण्ड बाणों से विद्ध होकर भी अर्जुन अपना धैर्य नहीं छोड़ते हैं।

इस सर्ग में असाधारण चित्रालंकार का वर्णन करते हुए चित्र युद्ध वर्णन किया गया है।

षोडश सर्ग– शिव और अर्जुन का अस्त्र युद्ध हुआ जिसमें अर्जुन द्वारा किये गये समस्त दिव्यास्त्रों का प्रयोग भाग्यहीन पुरूष के कर्म के समान शिवजी ने अपने अस्त्रों से विफल कर डाला। इस प्रकार अस्त्र प्रयोग में निष्फल होकर भी अर्जुन युद्ध करने से विरत नहीं हुए।

सप्तदश सर्ग– 'ऐसा युद्ध कभी नहीं हुआ था' ऐसा सोचकर अर्जुन की आँखों से अश्रु बहने लगते हैं, तथापि बाण वृष्टि से किरात सेना को पीड़ित करने लगे। शिव ने समस्त बाणों को निष्फल कर दिया। इस प्रकार समस्त बाणों से तथा कवच से रहित होकर अर्जुन धैर्यपूर्वक किरातपति के ऊपर शिलावृष्टि करने लगे। शिवजी के द्वारा उसका निवारण करने पर अर्जुन मल्ल युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हुए।

अष्टादश सर्ग – किरातपति और अर्जुन का भीषण युद्ध होने लगा। भगवान शिवजी ने विस्मित होकर अर्जुन का हृदय से आलिंगन किया और उन्हें अपने स्वरूप का दर्शन दिया। अर्जुन ने अष्टमूर्ति शिवजी की स्तुति की। शिवजी ने उनको पाशुपतास्त्र देकर धनुर्वेद पढ़ाया। इन्द्रादि देवताओं ने भी अपने अस्त्र प्रदान किये। अनन्तर शिवजी की आज्ञा से सफल मनोरथ अर्जुन द्वैतवन में भाइयों के पास पहुँच गये।

स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति वर्णन, क्रीड़ादि वर्णन एवं युद्ध वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्री' से कर अन्त 'लक्ष्मी' शब्द से किया गया है, इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मंगलमय बनाया है।

"भारवेऽर्थगौरवम्"

संस्कृत साहित्य जगत में भारवि अपने अर्थ गौरव के निमित्त अत्यन्त प्रख्यात हैं। कम–से–कम शब्दों में अधिक–से–अधिक अर्थों की अभिव्यक्ति को हम 'अर्थगौरव' की कसौटी मानते हैं। अपने अभिव्यंजनीय भावों के प्रकटीकरण के लिए कवि उतने ही शब्दों को चुनता है, जितने उस कार्य के लिए आवश्यक होते हैं। भारवि का अर्थ गौरव उनकी गम्भीर अभिव्यंजना शैली का फल है और इस शैली में शब्द और अर्थ

दोनों के सुडौलपन की स्निग्धता है। भारवि गम्भीर व्यक्तित्व से मण्डित महाकवि है। उनकी कविता में भावों की उदारता है। मानव हृदय के भीतर प्रवेश कर उसके अन्तःकरण में पनपने वाले भावों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उनके प्रकटीकरण की महनीय शक्ति का अभाव उसकी काव्य कला में भले ही विद्यमान हो परन्तु लोकसम्बद्ध तथ्यों के विवरण देने में वे सर्वथा कृतकार्य है। उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित है।

भारवि का वैदुष्य अत्यन्त व्यापक है, उन्होंने जीवन की ऊँच नीच सभी अवस्थाओं का वैयक्तिक अनुभव प्राप्त किया था। अतएव उनके सैकड़ों सुभाषितों में वेद, दर्शन नीति, राजनीति, पुराण, ज्योतिष, कामशास्त्र, कृषि, काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र आदि का अगाध पाणिडत्य मिलता है।

भारवि का अर्थगौरव वाले पदों से युक्त नीतिशास्त्रीय ज्ञान बहुत व्यापक था जैसे –

"असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि।" अर्थात् असज्जनों की संगति पराभव और विपत्ति का कारण है।[38]

"न्यायाधारा हि साधवः" सज्जन न्याय के मार्ग का ही आश्रय लेते हैं।[39]

"जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः।" स्वाभिमान रहित व्यक्ति की तिनके के समान अवस्था होती है।[40]

"तेजोविहीनं विजहाति दर्पः शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः।"[41] निस्तेज व्यक्ति में स्वाभिमान इसी प्रकार नहीं रहता है जैसे – बुझे हुए दीपक में प्रकाश।

विषमोऽपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।।[42]

जैसे सीढ़ी रहित जलाशय में सीढ़ियां बन जाने पर सभी सुखपूर्वक उसमें उतर सकते हैं, उसी प्रकार लोक अभ्यास द्वारा कठिन से कठिन नीतिशास्त्र को जान सकते हैं, किन्तु ऐसा सिखलाने वाला कठिन है जो बनाए हुए इस सन्मार्ग पर स्वयं भी चलता हो।

इसी प्रकार राजनीति के विषय में भी अर्थ गम्भीरता की व्यापकता को दर्शाया है। यथा – **व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। (दुष्ट के साथ दुष्टता ही उचित है।)**[43]

नयहीनादपरज्यते जनः (नीतिहीन राजा से प्रजा प्रसन्न नहीं रहती है।)[44]

"सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्व सम्पदः।" राजा और मन्त्री के अनुकूल होने पर ही सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।[45]

"परमं लाभमरातिभङ्गमाहुः।" शत्रु नाश सबसे बड़ा लाभ है।[46]

अन्य भी अर्थगौरव के लिए प्रख्यात चमत्कारी दृष्टांत है। यथा –

"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।"[47]

ऐसी वाणी दुर्लभ है जो हितकर होने के साथ मन के अनुकूल भी हो। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि हमेशा सत्य बोलना चाहिए क्योंकि केवल सत्य बात मीठी नहीं होती, कड़वी बात भी हो परन्तु वह हित की बात हो तो उसे कह देना चाहिए।

"समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद् वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः।"[48] नीचों की संगति की अपेक्षा महात्माओं से विरोध भी अच्छा है, क्योंकि वह ऐंश्वर्य का साधक है।

"अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता।" बलवान से विरोध दुःखदायी है।[49]

"वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।" प्रेम में गुण बसते हैं न कि वस्तु में।[50]

"सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम्।" संसार में सौन्दर्य की प्राप्ति कठिन नहीं है, किन्तु गुणों की प्राप्ति बहुत कठिन है।[51] (11–11)

सहसा विद्धीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।[52]

अर्थात् अचानक बिना विचारे कोई भी काम नहीं करना चाहिए। बिना विचार किया हुआ काम आपत्ति का कारण बनता है। गुणों पर मुग्ध होने वाली सम्पत्ति विचार पूर्वक काम करने वाले को स्वयं वरण कर लेती है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अलंकृत पदावली का विन्यास भारवि का निजी क्षेत्र है – असंशय और चमत्कारी वैशिष्ट्य।

वर्णन में विचित्रता

भारवि विविध विषयों के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। उनके प्रकृति वर्णन, मनोभाव वर्णन, अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का समन्वय, युद्ध वर्णन, जल विहार वर्णन, ऋतु वर्णन, सुरत क्रीड़ा आदि अत्यन्त मनोहर है।

वसन्त वर्णन

विकसित कुसुमाधारं हसन्तीं कुरबकराजिवधूं विलोकयन्तम्।
ददृशुरिव सुराङ्गना निषण्णं सशरमनङ्गमशोकपल्लवेषु।।[53]

अप्सराएँ मानो यह दृश्य देख रही हैं कि..... अशोक के पत्तों पर कामदेव अपना बाण लिए बैठा है और वह विकसित पुष्परूपी अधरों से हँसती हुई कुरबक पुष्प राशिरूपी वधु को देख रहा है। एक ओर काम की कामुकता है तो दूसरी ओर वधुओं पर काम–बाण निक्षेप।

यहाँ वसन्त ऋतु के वर्णन में श्रृंगार व वीर रसों के एक साथ वर्णन में रूपक और उत्प्रेक्षा अंलकारों का सुन्दर समन्वय है।

छन्द – भारवि ने किरातार्जुनीयम् के विभिन्न सर्गो में ग्यारह छन्दों का प्रयोग किया है। भारवि के प्रमुख तेरह छन्द हैं। भारवि का अत्यन्त प्रिय छन्द वंशस्थ है।

क्षेमेन्द्र ने भारवि की प्रशंसा में कहा है कि उसने वंशस्थ छंद के द्वारा वंशस्थ गोल छाते से छाया के तुल्य अपनी प्रतिभा का अधिक विस्तार किया है।

"वृत्तछत्रस्य सा काऽपि वंशस्थस्थ विचित्रता।

प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता।।

भारवि की प्रशस्तियाँ

मल्लिनाथ ने किरातार्जुनीयम् की तुलना नारियल के फल से की है, जो ऊपर से कठोर, किन्तु अन्दर कोमल और सरस होता है। किरातार्जुनीयम् के प्रथम तीन सर्ग कठिन हैं, अतः उन्हें 'पाषाणत्रय' (तीन पत्थर) कहा जाता है।

"नारिकेल फलसंमितं वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते।

स्वादयन्तु रस गर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्।।

भारवि की सरस पदावली और अर्थगौरव ने कवियों का मार्ग दर्शन किया है–

"प्रदेशवृत्याऽपि महान्तमर्थ, प्रदर्शयन्ती रसमादधाना।

सा भारवेः सत्पथदीपिकेव, रम्या कृतिः कैरिव नोपजीव्या।।"

संस्कृत साहित्य में भारवि रीतिकाल के जन्मदाता थे, इस कारण उन्हें कविराज का सम्मान प्राप्त हुआ है। उसने एक राजा के तुल्य रीति सम्प्रदाय के लिए राजमार्ग प्रशस्त किया है।

"वंशस्थवृत्तेन धृतातपत्रोः वृत्तेन संदर्शित राजवृत्तिः।

अर्थ प्रकर्षाह्वत राजलक्ष्मी र्नृपायते भारविरात्तकीर्तिः।। (कपिल)

खण्ड (ख) : माघ कृत शिशुपालवधम्

"कृत्स्नप्रबोधकृत् वाणी भारवेरिव भा रवेः।

माधेनेव च माघेन, कम्पःकस्य न जायते।।" (राजशेखर)

संस्कृत साहित्य जगत में अनेक स्पृहणीय गुणों के कारण माघ अतीव लोकप्रिय कवि हो गये – 'मेघे माघे गतं वयः' प्रसिद्ध उक्ति माघ महाकाव्य की लोकप्रियता को प्रकट करती है कि जैसे माघ मास में सूर्य की धूप का स्मरण करते हुए शैत्य (शीत) के कारण हतोत्साहित बन्दर आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाते हैं, वैसे ही माघ की

रचना की क्लिष्टता से हतोत्साहित लोग भारवि की कविता को याद कर काँपने लगते हैं। क्योंकि 'नवसर्गगते माघे नव शब्दों न विद्यते' माघ के नौ सर्गों का अध्ययन करने के बाद कोई अन्य नवीन शब्द शेष नहीं रह जाता।

"माघेन विध्नहोत्साह नोत्सहन्ते पदक्रम।

स्मरन्तो भा–रवे रेव कवयः कपयो यथा।।"[54] (धनपाल)

शिशुपाल की कुछ प्रतियों में यह उल्लेख भी मिलता है –

"इति श्री भिन्नमालववास्तव्यदत्तकसूनोर्महा वैयाकरणस्य

माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये।"

माघ ने शिशुपाल वध के अन्त में 'कवि वंश–वर्णन' में अपना थोड़ा परिचय भी दिया है। माघ के दादा सुप्रभदेव राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी (प्रधानमन्त्री) थे। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्तक था। जोकि माघ के पिता थे। इनको आश्रयदाता होने के कारण 'सर्वाश्रय' भी कहते थे, इन्होंने गरीबो की सहायतार्थ अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया था। वे महावैयाकरण थे। इनके पूर्वज श्री भिन्नमाल के रहने वाले थे। यह स्थान संप्रति 'भीनमाल' कहा जाता है। माघ का जन्म भी भीनमाल में हुआ था। पिता के समान माघ भी अत्यन्त दानी थे। राजा भोज से इनकी मित्रता थी। ऐसा कहा जाता है कि अत्यन्त दान देने के कारण ये निर्धन हो गये और माघ अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिए आये।

'भोज प्रबन्ध' में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास 'कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम्' आदि पद्य को जिसमें माघ काव्य का प्रभात वर्णन मिलता है, ले गयी। इस पद्य को सुनकर राजा ने प्रभूत धन दिया, उसे लेकर माघ पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बाँट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उनकी पत्नी के पास एक कौड़ी भी शेष नहीं बची, परन्तु याचकों की भीड़ के कारण कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राण छोड़ दिये। राजा भोज ने माघ का अन्तिम संस्कार किया और बहुत दुःख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गई।

माघ के जीवन की यह घटना सच्ची है या नहीं, पर हम यह कह सकते हैं कि माघ एक प्रतिष्ठित, धनाढ्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। पिता के समान ही ये दानी तथा उपकारी थे। सम्भवतः भोज के यहाँ इनका बड़ा सम्मान था।

समय

माघ के समय के विषय में एक संदेहहीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवधम् के निम्न दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उद्धृत किया है।

"रम्या इति प्राप्तवतीः पताका ..... [55]

तथा

त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकतान्..... [56]

अतः माघ आनन्दवर्धन से प्राचीन है। एक शिलालेख से इनका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ. कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है, शिलालेख का समय संवत् 682 अर्थात् 625 ईस्वी है।

अतः सुप्रभदेव का समय 625 ई० के आसपास है, अतएव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई० से लेकर 700 ई० तक होगा। अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

माघ की शैली

महाकवि माघ संस्कृत काव्य जगत में सर्वगामी पाण्डित्य के धनी थे। उनका महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' बृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं तथा पूर्ववर्ती सभी कवियों के उत्कृष्ट गुणों का समन्वय किया है। माघ ने कालिदास से काव्य सौन्दर्य, भारवि से अर्थ गौरव और भट्टि से व्याकरण आदि का संकलन किया है। माघ की विशेषता यह है कि उसने तीनों गुणों का मणि–कांचन संयोग प्रस्तुत किया है, उसमें एक ओर काव्य निपुणता का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर व्याकरण पटुता का, एक ओर कलापक्ष तो दूसरी ओर भाव पक्ष, एक ओर

वीर रस दिखलाई पड़ता है तो दूसरी ओर श्रृंगार रस। एक ओर राजनीति का उपदेश है तो दूसरी ओर दर्शन–दिग्दर्शन, एक ओर अर्थालंकारो की सुन्दर छटा है तो दूसरी ओर चित्रालंकारों की सप्तरंगी प्रभा, एक ओर कोमल कान्त पदावली है तो दूसरी ओर दुर्बोध वाग्जाल।

इनकी भाषा परिष्कृत, लालित्य प्रवाह और असाधारण लोच लिए हुए है। भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता उनकी भाषा में निहित है। माघ के काव्य–सौन्दर्य में प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों का सामंजस्य है।

उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य इन तीनों गुणों के कारण "माघे सन्ति त्रयो गुणा" कहा जाता है। माघ ने अर्थालंकारों के साथ–साथ चित्रालंकारों का भी प्रयोग बड़ी मार्मिकता के साथ किया है।

माघ ने अर्थालंकारों में उपमा और अर्थान्तरन्यास को बहुत महत्व दिया है। इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, रूपक, विरोधाभास, दृष्टान्त, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक और संदेह आदि अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। माघ की बहुज्ञता पद–पर पर प्रकट होती है। वेद, व्याकरण, काव्यशास्त्र, दर्शन, संगीत, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, पुराण, कामशास्त्र, नाट्यशास्त्र, चित्रकला, अश्वविद्या आदि का गहन अध्ययन उनके महाकाव्य से प्रदर्शित होता है।

माघ की प्रवीणता उस गुलदस्ते के समान है, जिसे माली ने अनेक रंगीन फूलों के मंजुल मिश्रण से तैयार किया है। और जो खूब कटे–छंटे, नपे–तुले विदग्ध जनों के मनोविनोद के लिए प्रस्तुत एक नयनाभिराम कलात्मक पदार्थ होता है। माघ की कला में सुन्दर नर्तकी का सा हाव–भाव, विलास, लोच, माधुर्य और मनोरमता है। कहीं पद संचार में मनोहारिता है तो कहीं रति विलास में भावुकता, कहीं नीति वचन रूपी कटाक्ष है तो कहीं सरस शब्दों का माधुर्य, कहीं भाव–भंगिमा है तो कहीं मधुर अंग संचार। अतएव रसिक सहृदयों का कथन है कि "मेघे माघे गतं वयः।"

माघ ने अपनी अपूर्व कल्पना का परिचय दिया है। निदर्शना अलंकार का उपयोग करते हुए रैवतक पर्वत के एक ओर सूर्योदय और दूसरी ओर चन्द्रास्त को देखकर महाकाय हाथी के दोनों ओर लटकते हुए दो विशाल घंटों की कल्पना कवि ने की है। इस कल्पना की उत्कृष्टता के आधार पर माघ का नाम की 'घण्टामाघ' पड़ गया।

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरूचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।

वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।[57]

माघ ने शिशुपालवधम् के प्रथम नौ सर्गों में कभी खत्म न होने वाले शब्द कोष का प्रयोग किया है। इन्होंने प्रत्येक भाव एवं अर्थ के लिए नया शब्द दिया है। अतः हम कह सकते हैं कि – "नवसर्गगते माघे नवशब्दों न विद्यते।" माघ ने काव्य में सौन्दर्य और रमणीयता की नवीनता को माना है।

"दृष्टिोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।" [58]

भाषा सौष्ठव

माघ की भाषा पाण्डित्य के साथ प्रांजलता से युक्त है, जिसमें माधुर्य, ओज के साथ–साथ प्रसाद गुण भी है, कहीं समास बहुलता, कहीं पद माधुरी के साथ स्वर माधुरी भी दिखाई पड़ती है।

"या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः सारतरागमना यतमानम्।

तेन सहेह बिभर्ति रहः स्त्री सा रतरागमनायतमानम्।।[59]

माघ द्वारा अभिव्यक्ति की चातुरी को प्रदर्शित करते हुए भगवान कृष्ण नारद जी से बोले कि –

हरत्यधं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्यः पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।

शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्।।[60]

आपका दर्शन त्रिकाल में शरीरधारियों की योग्यता को प्रकट करता है, क्योंकि वर्तमान काल में पाप को नष्ट करता है, भविष्यकाल में आने वाले शुभ का कारण है, और भूतकाल में पहले किये गये पुण्यों का परिणाम है।

"बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।

अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरूदाहरः।।[61]

अपनी इच्छानुसार नीतिशास्त्र के विरूद्ध वचन बहुत अधिक कहे जा सकते हैं, किन्तु कार्य संगति को नहीं छोड़ने वाला संदर्भ अर्थात् वचन, मुश्किल से कहा जाता है। यहाँ नीति युक्त वचन को सार–गर्भित उक्ति द्वारा प्रकट किया है।

भावाभिव्यवित

माघ के काव्य को पढ़ने के बाद भावों की गम्भीरता के कारण अर्थ में कठिनता का भाव दिखाई पड़ता है। अनेक स्थानों पर भावनाओं की कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ भावों में अनुभवों का समन्वय और विचारों में चिन्तन का भाव प्राप्त होता है।

भावी के सकारात्मक पहलु तो कहीं नकारात्मक पहलु को प्रदर्शित करते हुए माघ कहते हैं कि पुरूषार्थहीन होने पर निन्दा, तत्पश्चात् पुरुषार्थी होने की प्रशंसा का चित्रण है। पर्वत में ऊँचाई है किन्तु अगाधता अर्थात् गम्भीरता नहीं, तथा समुंद्र में अगाधता है किन्तु ऊँचाई नहीं है, परन्तु जो मनस्वी पुरुष है, उसमें महानता तथा गम्भीरता दोनों गुण होते हैं, अतः कोई उसका अपमान करे तो वह चुप नहीं रह सकता।

"तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।

अलङ्घनीयताहेतुरूभयं तन्मनस्विनि।। [62]

एक व्यंग्योक्ति द्वारा अपने प्रिय से नायिका कहती है कि 'तुम मेरी प्रिया हो' यह जो तुम कहते हो ये बिल्कुल सही है क्योंकि प्रियजन अर्थात् सपत्नी द्वारा धारण

किये गये कपड़े को पहने हुए तुम मेरे पास आये हो, क्योंकि कामियों के मण्डनों की शोभा प्रिया के दर्शन मात्र से ही सफल हो जाती है।

अर्थात् व्यंग्य से कह रही है कि तुम झूठ बोलते हो क्योंकि मेरी सपत्नी के कपड़े को पहनकर यहाँ आना ही सूचित करता है, तुम मुझसे नहीं अपितु मेरी सपत्नी से प्रेम करते हो।

"तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति

प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः।

मदधिवसतिभागाः कामिनां मण्डनश्री–

व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन।।"[63]

रस परिपाक

शिशुपालवधम् में अंगीरस वीर है और श्रृंगार हास्यादि रस अंग रूप में है। वीर रस प्रधान होने पर भी सहृदयता एवं सरसता के उद्वेग के कारण अंग स्वरूप श्रृंगार रस अंगी के समान प्रधान हो गया है।

युद्ध भूमि में क्रोध के आवेश से वेगपूर्वक सामने आये वीर हथियारों को छोड़कर पहलवानों के समान एक दूसरे पर मुक्कों का प्रहार करते हुए बाहुयुद्ध करने लगे।

"रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।

हित्वा हेतीर्मत्तवन्मुष्टिधातं ध्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम्।।"[64]

श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर प्रस्थान के समय स्त्रियों ने उन्हें घेर रखा था। वे जिसकी ओर दृष्टिपात करते थे, वह लज्जावनत मुखी हो जाती है और जिसकी ओर नहीं देखते, वह ईर्ष्या से निशंक उन पर कटाक्ष प्रहार करती थी।

"यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।

निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्प्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः।।[65]

शिशुपालवधम् महाकाव्य में यत्र–तत्र हास्य रस की सुन्दरता भी दिखाई पड़ती है। यथा हथिनी भयभीत हुए खच्चरों का कौतुक –

"त्रस्तौ समासन्नकरेणुसूत्कृतान्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके।

क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां विलङ्घ्य लध्वीं करभौ बभंजतुः।।"[66]

एक राजकुलीन महिला छोटे रथ पर जा रही थी। दो खच्चर उस रथ को खींच रहे थे। सहसा हथिनी की सूँ–सूँ की ध्वनि से वे घबरा गए और रस्सी छोड़कर भाग गये। बेचारी महिला उलट गई और रथ टूट गया।

अलंकार

माघ ने एक ओर उपमा और अर्थान्तरन्यास उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, रूपक, सन्देह आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर चित्रालंकार का बाहुल्य इनकी शाब्दिक चमत्कारिणी प्रतिभा का प्रतीक है।

माघ ने कालिदास के समान उपमा अलंकार का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। उपमा प्रयोग में कहीं शास्त्रीय पाण्डित्य है, कहीं सूक्ष्म दृष्टि और कहीं गंभीर चिन्तन। अतएव माघ की उपमाएँ भी उतनी ही प्रसिद्ध हैं।

कमल केसर के समान कान्तिवाली (केसरिया रंग की) जटाओं को धारण तथा स्वयं शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरण के समान (सफेद) कान्तिवाले अतएव पकने से पिङ्गल वर्ण वाले, बर्फीली भूमि मे उत्पन्न लता समूहों को धारण करते हुए पर्वतराज (हिमालय) के समान स्थित नारद जी को श्रीकृष्ण ने देखा–

"दधानमम्भोरूहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।

विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरूहो, धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव।।[67]

माघ ने अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में भी अपने गहन अध्ययन और भाव गाम्भीर्य को प्रदर्शित किया है।

नारद श्रीकृष्ण की स्तुति में कहते हैं कि आप ही शिशुपाल जैसे अत्याचारियों से संसार का उद्धार कर सकते हैं क्योंकि सूर्य के अतिरिक्त संसार का अन्धकार और कौन दूर कर सकता है।

"उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वम्भर! विश्र्वमीशिषे।

ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः।।"[68]

अपमान होने पर शान्त रहने वाले उस प्राणी से धूलि भली है, जो धूलि पैर से आहत होने पर सिर पर चढ़ जाती है।

"पदाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोति।

स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।।"[69]

माघ ने श्लेष अंलकार का भी बहुत ही अच्छा वर्णन किया है।

यथा– भाग्य के प्रतिकूल होने पर सभी साधन निष्फल हो जाते हैं। चन्द्रोदय के समय चन्द्रमा के प्रतिकूल होने पर सहस्त्रों किरणों वाला सूर्य भी अस्त हो जाता है।

"प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।

अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्त्रमपि।।"[70]

चित्रालंकार

माघ के चित्रालंकारों के अध्ययन से उनकी विद्वत्ता का पता चलता है। उन्नीसवें सर्ग में चित्रालंकारों का वर्णन किया है, जिसमें एकाक्षर श्लोक, कहीं द्वयक्षर, कहीं एकाक्षर पाद श्लोक हैं, तो कहीं अर्धसम, कहीं गोमूत्रिकावन्ध हैं, तो कहीं मुरजबन्ध, कहीं चक्रबन्ध, कहीं सर्वतोभद्र, एक श्लोक का उलटा कर प्रतिलोमयक है, तो कहीं प्रारम्भ से अन्त दोनों ओर से पढ़ने पर एक ही अर्थ निकलता है, कहीं श्लोक में संयुक्त वर्ण का सर्वथा अभाव है, तो कहीं तालव्य वर्ण का अभाव है। कहीं द्वयर्थक, कहीं त्र्यर्थक है। अतः कह सकते हैं कि माघ की विद्वता में अपूर्व चातुर्य है।

एकाक्षर चित्रालंकार

"ददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददोः।

दुद्दादं ददे दुद्दे ददाददददोऽददः।।[71]

दादद– दान देने वाले, दुद्दो – दुष्टो को उपताप देने वाले, दादाद (शुद्धि देने वाले), दूदों (परिताप देने वाले दुष्टों) के नाशक बाहुवाले और दाताओं (देने वालों) तथा अदाताओं (नहीं देने वालों) दोनों को देने वाले श्रीकृष्ण भगवान ने मुद्द (दुःखदायी शत्रु) पर दुःखदायी बाण को शत्रुओं पर चलाया।

सर्वतोभद्र– इस अलंकार में चारों चरणों के पहला और आठवां, दूसरा और सातवां, तीसरा और छठवां तथा चौथा और पाँचवां वर्ण समान होता है। अर्थात् श्लोक के चारों चरणों को उलट कर (1,2,3,4 को पुनः 4,3,2,1 चरण) रख देने पर सर्वतोभद्र अलंकार होता है।

"स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का
र सा ह वा वा ह सा र
ना द वा द द वा द ना।।"[72]

शिशुपालवधम् का कथासार

शिशुपालवधम् महाकाव्य श्रीमद्भागवत् के दशम स्कन्ध के 74वें अध्याय में तथा महाभारत के सभापर्व के 33वें से 45वें अध्याय तक कुल तेरह अध्यायों में शिशुपालवधम् की कथा उपलब्ध होती है। माघ की कीर्ति रूपी बेल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' रूप वृक्ष पर अबलम्बित है।

इस महाकाव्य का मुख्य वर्ण्य विषय देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्व जन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना शिशुपाल का

अभद्र व्यवहार और क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध वर्णित है। जो कि 20 सर्गो में विभक्त है तथा श्लोक संख्या 1650 है।

प्रथम सर्ग– जगदाधार श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी में नारद जी आते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा आने का कारण पूछने पर नारदजी ने इन्द्र का संदेश देते हुए शिशुपाल को मारने के लिए कहा तथा यह भी स्मरण कराया कि शिशुपाल के पूर्व जन्म में हिरण्यकश्यप तथा रावण को आपके द्वारा नरसिंह तथा श्री राम स्वरूप में मारा गया। पुनः शिशुपाल को आप ही मार सकते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल को मारने की स्वीकृति प्राप्त कर नारद जी लौट जाते हैं।

द्वितीय सर्ग – श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव की गुप्त मंत्रणा होती है। बलराम जी शिशुपाल के वध करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र अभियान की सलाह देते हैं। तत्पश्चात् नीतिज्ञ उद्धव जी का इस विषय में अधिक शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भाग लेने का परामर्श देते हैं तथा शिशुपाल के पक्ष के राजाओं में फूट डालना, अपने पक्ष के राजाओं को युद्ध के लिए तैयार होकर यज्ञ में सम्मिलित होने की सूचना देना आदि तैयारियां करने को कहते हैं, क्योंकि पाण्डवों द्वारा श्रीकृष्ण की अधिक भक्ति एवं पूजा सत्कार को शिशुपाल सहन न करता हुआ श्रीकृष्ण की निंदा करने लगेगा। इस प्रकार अपनी बुआ शान्तनवी, सात्वती के प्रति शिशुपाल के सौ अपराधों को सहन करने की पूर्वप्रतिज्ञा के वचन का सम्यक पालन करने पर कृष्ण शिशुपाल का वध करेंगे।

तृतीय सर्ग– द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान, द्वारकापुरी, चतुरंगिणी सेना और समुद्र का वर्णन।

चतुर्थ सर्ग– रैवतक पर्वत का वर्णन

पंचम सर्ग– रैवतक पर्वत पर विहार करने के लिए सेना के प्रस्थान तथा ठहरने का वर्णन।

षष्ठ सर्ग– वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त तथा शिशिर आदि षड्ऋतु वर्णन।

सप्तम सर्ग– वन विहार वर्णन

अष्टम सर्ग– जल विहार या जलक्रीड़ा का वर्णन

नवम सर्ग– सायंकाल – चन्द्रोदय तथा श्रृंगार विधान आदि वर्णन।

दशम सर्ग– मद्यपान और रात्रि क्रीड़ा वर्णन।

एकादश सर्ग– प्रभात वर्णन

द्वादश सर्ग– श्रीकृष्ण के पुनः प्रस्थान और यमुना नदी का वर्णन।

त्रयोदश सर्ग– श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलन, श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर में प्रवेश तथा नारियों द्वारा कृष्ण को देखने के लिए विलासपूर्ण चेष्टाएँ करना।

चर्तुदश– युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा, और भीष्म द्वारा उनकी स्तुति।

पंचदश सर्ग– शिशुपाल का क्रुद्ध होना और उसके पक्ष के राजाओं का युद्धार्थ तैयार होना।

षोडश सर्ग– शिशुपाल के दूत का श्रीकृष्ण की सभा में प्रिय–अप्रिय द्वयर्थक वचनों का कहना। सात्यकि द्वारा उसका उत्तर तथा पुनः दूत का उत्तर और उसके द्वारा शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन।

सप्तदश सर्ग– शिशुपाल के दूत का असह्य कठोर वचन सुनकर कृष्ण पक्षीय सभी राजाओं का अत्यन्त क्रुद्ध होना, श्रीकृष्ण की सेना की तैयारी और उसका प्रस्थान।

अष्टादश सर्ग– श्रीकृष्ण और शिशुपाल की सेनाओं का साक्षात्कार और घोर युद्ध का वर्णन।

एकोनविंश सर्ग– युद्ध का वर्णन।

विंश सर्ग – श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र युद्ध, दिव्यास्त्रों का युद्ध, वाग्युद्ध। शिशुपाल के अपशब्दों से कुद्ध श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र द्वारा शिशुपाल का सिर काट दिया।

शिशुपालवधम् महाकाव्य में प्रकृति वर्णन के साथ अन्य गहन विषयों के अध्ययन तथा युद्ध वर्णन द्वारा महाकाव्य का आदि और अन्त 'श्री' शब्द से किया गया है, अतः इस काव्य को माङ्गलिक शब्दों द्वारा अलंकृत किया गया है।

"माघे सन्ति त्रयो गुणाः"

माघ की विद्वत्ता एकांकी न होकर सर्वव्यापी है, जिसमें कालिदास के समान सुन्दर उपमा, भारवि के समान अर्थगौरव और दण्डी तुल्य पदलालित्य भी है।

अतः स्पष्ट है कि कालिदास आदि में केवल एक–एक गुण मुख्य रूप से हैं किन्तु माघ में ये तीनों गुण समन्वित रूप से विद्यमान हैं, अतः यह कथन युक्ति संगत है कि –

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।"

यथा–

"सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः।।"[73]

यहाँ बलराम जी कह रहे हैं कि क्रोध युक्त शिशुपाल के प्रति शान्तिपूर्ण वचन कहना उल्टे उसके क्रोध को बढ़ाने वाले हो जायेंगे। जिस प्रकार तपे हुए घी में छोड़ी गई जल की बूँदें घी को उद्दीप्त करने वाली होती हैं।

"उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च।।"[74]

यहाँ माघ ने श्रीकृष्ण की उक्ति को उपमा के सुन्दर उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया है कि श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि हिताभिलाषी व्यक्ति को शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि बढ़ने वाले रोग तथा शत्रु को विद्वानों ने समान घात करने वाला बताया है अर्थात रोग के बढ़ने पर रोगी मर जाता है, उसी प्रकार बढ़ते हुए शत्रु की परवाह नहीं करने पर विपक्षी को पराजित कर देता है।

रैवतक पर्वत से बहने वाली नदियों के वर्णन में कवि अपने प्रेमी हृदय का परिचय देता है।

"अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुयात्मजाः।

अनुरोदितीव करूणेन पत्रिणां विरूतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।[75]

पहाड़ी नदियां कल–कल शब्द करती हुई बह रही हैं। ये निडर होकर उसकी गोद में लोट–पोट किया करती हैं। अतः वे रैवतक पर्वत की बेटियां हैं। आज वे अपने पति (समुद्र) से मिलने जा रही हैं। इस कारण रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर के द्वारा, जान पड़ता है कि, प्रेम के कारण रो रहा है। कन्या का पतिगृह जाने के समय पिता का हृदय पिघल जाता है, वह कितना भी कठोर हो, द्रवीभूत हो जाता है।

"पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेष दुःखैर्नवैः।"

अतः रैवतक भी पक्षियों के करूण स्वर से कन्याओं के लिए रो रहा है।

यहाँ महाकवि माघ ने उपमा के माध्यम से प्रकृति में सजीवता का भाव इस प्रकार भरा है। मानो वे प्रकृति के हृदय को समझते हैं।

महाकवि माघ को घण्टामाघ की उपाधि से विभूषित किया गया, जिसमें रेवतक पर्वत के एक ओर सूर्य का उदित होना, दूसरे ओर चन्द्रमा का अस्तांचल जाना, पर्वत रूपी हाथी के दोनों ओर लटकने वाले दो विशाल घण्टों की शोभा को धारण कर रहे थे। इस कल्पना के आधार पर माघ विद्वत समाज में घण्टामाघ नाम से प्रसिद्ध है।

अर्थ गौरव

महाकवि माघ किसी भी तरह भारवि से अर्थगौरव के उत्पादन में कम नहीं हैं। इनका मानना है कि वर्णो के विन्यास से ही वाङ्गमय में अनन्त विचित्रता उसी प्रकार उपजती है, जिस प्रकार केवल सात स्वरों से ग्रथित होने वाला गायन अनन्त रूप से विचित्र बन जाता है।

"वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता।।"[76]

माघ के काव्य में जगह–जगह गाम्भीर्य भाव दिखाई देता है।

यथा आदर्श राजा के स्वरूप में

"बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो धनसंवृतिकञ्चुकः।

चारेक्षणो दूतमुखः पुरूषः कोऽपि पार्थिवः।।"[77]

शस्त्र जिसकी बुद्धि है, जिसके अंग प्रकृति (प्रजा, मन्त्री, स्वामी आदि) हैं, जिसका कवच दुर्भेद्य मन्त्री की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर हैं, जिसका मुख सन्देशवाहक दूत होता है। ऐसा राजा सामान्य जन न होकर अलौकिक पुरुष होता है।

अर्थ गौरव युक्त चमत्कारी सूक्तियाँ

महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः[78]

श्रेष्ठ व्यक्ति स्वभाव से ही मितभाषी, अर्थात् कम बोलने वाले होते हैं।

"सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांमसभ्येति भवान्तरेष्वपि।"[79]

पतिव्रता स्त्री जिस प्रकार जन्मान्तर में भी पूर्वजन्म के पति को प्राप्त करती हैं उसी प्रकार सुनिश्चिल स्वभाव भी जन्मान्तर में पुरूष को प्राप्त करता है।

"सर्वः प्रियः खलु भवत्यनुरूपचेष्टः।"[80]

अपने अनुकूल चेष्टावाले सभी प्रिय होते हैं।

"समय एव करोति बलाबलम्।" [81]

समय ही प्राणियों को बलाबल देता है अर्थात् समय के प्रभाव से ही प्राणी बलवान तथा निर्बल होते हैं।

"सदाभिमानैकधना हि मानिनः।"[82]

स्वाभिमानियों का मान ही धन होता है।

"बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।"[83]

बड़ों के सहारे छोटा भी तर जाता है।

"सर्वः स्वार्थं समीहते।"[84]

सभी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

"समये हि सर्वमुपकारि कृतम्।"[85]

समय पर किया हुआ उपकार कार्य साधन में सहायक होता है।

"अरूच्यमपि रोगध्नं निसर्गादेव भेषजम्।"[86]

कड़वी औषधि पिए बिना शरीर का रोग नहीं मिटता।

"अनुहुङ्कुरूते धनध्वनिं न हि गोमायुरूतःनि केसरी।"[87]

सिंह मेघ के गरजने पर गरजता है, स्यार के बोलने पर नहीं।

"उपकृत्य निसगंतः परेषामुपरोधं न हि कुर्वते महान्तः।"[88]

महान लोग दूसरों पर उपकार करके उपरोध (ठहरकर अड्डा जमाना) नहीं करते, शीघ्र ही वहाँ से चले जाते हैं।

स्पष्ट है कि माघ ने छोटी–छोटी सूक्तियों के माध्यम से गागर में सागर भर दिया है अर्थात् कल्पकाय सूक्तियों में अर्थ का गौरव पूर्ण मात्रा में विद्यमान है।

पद लालित्य

पद माधुर्य की निपुणता के आचार्य माघ का पद लालित्य न केवल शब्दों तथा पदो के ललित विन्यास में निपुण था, बल्कि नित नवीन मधुर शब्दावली के तो मानो वे प्रसिद्ध कवि थे। नूतन–नवीन शब्दों का उन्होंने इतना अधिक प्रयोग किया है कि संस्कृत में यह आभणक (उक्ति) ही प्रसिद्ध है कि माघ के काव्य शिशुपाल के अनुशीलन में ही जीवन व्यतीत हो गया, किन्तु उनका पार नहीं पाया जा सकता।

'माघेमेघे गतं वयः।

नव सर्गगते माघे नव शब्दो न विधते।'

माघ का शब्द भण्डार अपरिमित है। इनके शब्दों में इतनी संगीतात्मक एकरसता है कि वीणा के तारों के झंकार की भांति अर्थावबोध की प्रतीक्षा किये बिना ही वह श्रोताओं के हृदय को रसाप्लुत बना देती है। परन्तु माघ के पाण्डित्यमण्डित अर्थों को समझना अत्यन्त कठिन है। उचित है कि कवि पण्डित माघ की काव्य कला परखने के लिए हृदय के साथ मस्तिष्क की भी नितान्त आवश्यकता होती है। क्योंकि इनका पद लालित्य वैदर्भी या पांचाली रीति वाला पद लालित्य न होकर गौड़ी वाले विकट–अक्षर या गाढ़बन्ध का पद लालित्य है, अतः इसे समझना बड़ा दुर्बोध है।

प्रकृति का माघ ने अत्यन्त अद्‌भुत चित्रण किया है यथा –

"नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।

मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।"[89]

श्री कृष्ण ने पहले नवपल्लव युक्त, पलाश वन वाले विकसित तथा मकरन्द से परिपूर्ण कमलों वाले, कोमल, कुछ म्लान पुष्पों वाले तथा पुष्पसमूहों से सुरभित वसन्त ऋतु को देखा ।

"जातप्रीतिर्या मधुरेणानुवनान्तं

कामे कान्ते सारसिकाकाकुरुतेन।

तत्सम्पर्कं प्राप्य पुरा मोहनलीलां

कामेकान्ते सा रसिका का कुरूते न।।"[90]

उपवन के समीप में जो स्त्री कर्ण मधुर सारसी के कुंजन से कामदेव तुल्य पति में अनुरागवती हुई, वह कौन रसिक स्त्री एकान्त में उस पति का साथ पाकर पहले ही सुरत क्रीड़ा को नहीं करती है अर्थात् सभी अनुरागवती स्त्रियाँ एकान्त में पति को पाकर सुरत क्रीड़ा करती हैं।

कहा जा सकता है कि विचित्र मार्ग के उद्भावक महाकवि माघ की अलंकृत शैली का प्रभाव भारतवासी कवियों पर ही नहीं पड़ा बल्कि बृहत्तर भार के भी कवि उनसे उतने ही प्रभावित हुए जितने भारतीय कवि।

ठीक ही है – "माघे गतं वयः।"

शास्त्रीय पाण्डित्य

माघ अनेक शास्त्रज्ञ महाकवि हैं, इनके काव्य शिशुपालवधम् को पढ़ने से ज्ञात होता है कि माघ ने वेद, व्याकरण, काव्य, शास्त्र दर्शन, राजनीति, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, संगीत, हस्ति, अश्वादिं विद्याऐं पुराण, पाकशास्त्र, ज्योतिष और कामशास्त्र आदि में विशेष ख्याति प्राप्त की है। अनेक श्लोकों में इन्होंने अपने शास्त्रीय पाण्डित्य को प्रकट किया है। जो इनके ज्ञान का चमोत्कर्ष प्रदर्शित करता है। शास्त्रीय उपमाऐ देने में माघ सिद्धहस्त हैं।

राजनीति विषयक ज्ञान

गुप्तचरों की महत्ता बताते हुए महाकवि माघ कहते हैं कि जिस प्रकार 'पस्पशाह्निक' के बिना व्याकरण विद्या सफल नहीं होती, उसी प्रकार परम्परा (गुप्तचर) के बिना राजनीति भी सफल नहीं हो सकती।

"शब्द विद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।"[91]

वेद विषयक ज्ञान

माघ ने अपने काव्य में वैदिक कर्मकाण्डों का बहुत ही शास्त्र सम्मत निरूपण किया है। शिशुपाल में उद्धव के द्वारा शिशुपाल के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये जाने पर उन्होंने वेद के 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' नियम का उल्लेख किया है अर्थात् एक पद में होने वाला उदात्त स्वर अन्य स्वरों को अनुदात्त बना डालता है। इसी प्रकार शिशुपाल भी एक ही उद्योग से शत्रुओं को मार डालता है।

"तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तःस्वरानिव।।"[92]

दर्शन शास्त्रीय ज्ञान

माघ ने नारद जी द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति सांख्यशास्त्रानुसार की है, जिसमें पुरुष को प्रकृति व विकृतियों को बाह्य बताया है।

"तस्य सांख्यपुरूषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।"[93]

पुराण सम्बन्धी ज्ञान

माघ ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो किसी पौराणिक आख्यान की ओर संकेत करते हैं। **यथा**– नारद जी के लिए–चिरन्तनो मुनि, हिरण्यगर्भाङ्गमू, बलराम–सरिपाणि, मूसलपाणि, सूर्य–अनुरूंसारधि, कृष्ण–मुरद्विष।

व्याकरण विषयक ज्ञान

माघ ने कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य का सुंदर ढंग से वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सृज विसर्ग संहारार्थक– सम+हृ धातु तथा शास् धातुएं कर्तृवाच्य में प्रयुक्त होती हैं।

अर्थात् – हरिः सृजति, हरिः संहरति, हरि शास्ति – कर्तृ अर्थ में। किन्तु ष्टुञ स्तुतौ धातु सदा कर्म वाच्य में ही प्रयुक्त होती है यथा – हरिं स्तौति (सुरासुर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।)

राजनीतिक

माघ राजनीति शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे, इन्होंने राजनीतिविषयक षड्गुण, शक्तित्रय, अंगपंचम विजिगीषु, राजमण्डल आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।

नीति का चरम लक्ष्य उन्होंने अपना उत्कर्ष एवं शत्रु की हानि बताया है।

"आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।"[94]

उपकार करने वाले के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु अपकार करने वाले मित्र के साथ नहीं।

"उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।" [95]

अतः कहा जा सकता है कि माघ का पाण्डित्य सर्वातिशयी था।

भारवि और माघ

माघ के महाकवि होने में तनिक भी शंका नहीं है। माघ ने भारवि की कृति को सभी दृष्टियों में पीछे छोड़ दिया है।

1. किरातार्जुनीयम् और शिशुपालवधम् दोनों महाकाव्यों की कथा महाभारत से ली गई है।
2. भारवि ने अपने महाकाव्य के प्रारम्भ में 'श्री' शब्द का तथा सर्गान्त में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग किया है। परन्तु माघ ने प्रारम्भ और अन्त में 'श्री' शब्द का ही प्रयोग किया है।
3. भारवि ने दुर्योधन का वर्णन राजनीति चर्चा हेतु वनेचर द्वारा उपस्थित किया है।

   वहीं माघ ने नारद जी द्वारा शिशुपाल वर्णन, राजनीतिक चर्चा के लिए किया है। दोनों ही महाकाव्यों में राजनीति विषयक चर्चा है।
4. भारवि ने शरद् ऋतु का वर्णन किया है तो माघ ने षड्ऋतु वर्णन में अपनी विद्वता दिखाई है।

5. भारवि ने जहाँ हिमालय पर्वत का वर्णन किया है, वहीं माघ ने रैवतक पर्वत का वर्णन किया है।
6. भारवि ने द्रौपदी व भीम के मुख से ओजस्विता तथा युधिष्ठिर के मुख से शान्तिपूर्ण नीति का प्रसंग उपस्थित किया है, वहीं माघ ने बलराम के मुख से ओजस्विता तथा उद्धव जी के मुख से शान्तिपूर्ण राजनीति का उत्तम प्रसंग प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार पुष्पावचय, वनविहार, जलक्रीड़ा, प्रभातवर्णन, सायंकाल एवं चन्द्रोदय वर्णन, राजसभा वर्णन, शिविर संनिवेश वर्णन, चित्रालंकारों का वर्णन, सुरत एवं पान गोष्ठी आदि का मनोहर वर्णन, भारवि व माघ दोनों के ग्रन्थों में देखने को मिलता है।

अन्त में भारवि ने शिव–अर्जुन युद्ध तथा माघ ने कृष्ण शिशुपाल युद्ध का वर्णन किया है। भारवि द्वारा शिव स्तुति कर ग्रन्थ की समाप्ति की गई है, वहीं माघ द्वारा कृष्ण स्तुति से प्रारम्भ व अन्त किया गया है।

निष्कर्षतः कल्पना शक्ति तथा पाण्डित्य प्रदर्शन में माघ, भारवि से आगे हैं। भारवि विवेचक है तो माघ समीक्षक, भारवि में ओज है तो माघ में माधुर्य। भारवि में कविता की सुकुमारता है, तो माघ में उसकी प्रौढ़ता।

निःसन्देह 'माघ' संस्कृत साहित्य के सफल महाकाव्यकार हैं।

माघ की प्रशस्तियाँ

माघ को काव्यशास्त्र ज्ञान हेतु विद्वत् समाज की कसौटी माना जाता है। ये पद माधुर्य, रचना कौशल, उपमा प्रयोग, अर्थ गौरव छन्दोविधान, प्रकाण्ड पाण्डित्य अलंकारिता आदि गुणों के कारण भारवि से बढ़कर सिद्ध हैं।

जिस प्रकार माघ मास में सूर्य की किरणे (भा–रवि) क्षीण हो जाती हैं, उसी प्रकार माघ के समक्ष भारवि द्युतिहीन प्रतीत होते हैं।

"तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।

उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भा रवेरिव।।" (धनपाल)

जिस प्रकार कृष्ण के चरणों की प्राप्ति हेतु पाप त्याग (मा+अघ) सोपान है, इसी प्रकार मुरारिकृत अनर्घराघव के अध्ययन के लिए माघकृत शिशुपाल सोपान है।

"मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु।

मुरारिपदचिन्ता चेत्तदामाऽघे रतिं कुरु।।"(मुरारिकृत–अनर्घराघव)

माघ ने कृष्ण चरित द्वारा पापनाशन किया है, अतः वह पापहर्ता हैं।

"रसज्ञाशिशुपालोऽपि, शिशुपालवधप्रियः।

कृष्णवृत्तह्रताघालि–र्माघो घोराघध्वंसकृत।।"[96] (कपिलस्य)

खण्ड (ग) : श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम्

"नैषधाम्भोधिसंभूतां, कलाधरकलारूचिम्।

प्रेक्षं प्रेक्षं वितन्वन्तिं, सुधियः श्रीहर्षहर्षकम्।। (कपिलस्य)

नैषधीयचरितम् महाकाव्य के कर्ता महाकवि श्रीहर्ष ने अपने जीवन से सम्बद्ध बातों का उल्लेख प्रथम सर्गान्त में किया है। जिससे उनके माता–पिता का नाम, आश्रयदाता का नाम तथा प्रमुख ग्रन्थों के नाम का पता चलता है।

"श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं।
श्रीहीरः सुषवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।।"[97]

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर तथा माता का नाम मामल्लदेवी वा अल्लदेवी था। हीर काशी के राजा गहड़वालवंशी विजयचन्द्र की सभा के प्रधान पण्डित थे। सभा में किसी एक विशिष्ट पण्डित के साथ इनका शास्त्रार्थ हुआ। यह विशिष्ट विद्वान मिथिला देश के प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य थे। शास्त्रार्थ में हीर हार गये। मरते समय हीर श्रीहर्ष से कह गये कि तुम सुपुत्र हो तो उस पण्डित को शास्त्रार्थ में

अवश्य हराना। श्रीहर्ष ने गंगा किनारे पर "चिन्तामणि" मंत्र का वर्ष भर जाप किया और भगवती त्रिपुरा सुन्दरी से अप्रतिम पाण्डित्य का वरदान प्राप्त किया, जिससे उन्हें अपराजेय पाण्डित्य मिला। उन्होंने उदयनाचार्य को हरा कर पिता की कामना पूर्ण की। श्रीहर्ष के राजदरबार में पहुँचने पर उदयनाचार्य ने इन्हें 'गौर्गौ रागतः' (बैल आया) कहा। तत्पश्चात् श्री हर्ष ने इस प्रकार उत्तर दिया –

"किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वं, यदि गवि गोत्वं नहि मयि गोत्वम्।

अगवि च गोत्वं तव यदि साध्यं, भवतु भवत्यपि संप्रति गोत्वम्।।"

अर्थात् गो भिन्न को यदि तुम गो (बैल, मूर्ख) सिद्ध करते हो, तो वह गोत्व (मूर्खत्व) तुममें भी है।

असामान्य वैदुष्यपूर्ण प्रतिभा के कारण इनकी कविताओं को कोई नहीं समझता था, तब अपनी कृति को बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंनें आधी रात

के समय सिर में पानी डालकर दही पिया, तब इनकी बुद्धि की मन्दता हुई, तदन्तर उनका काव्य समझने में लोग समर्थ हुए, ऐसी अनुश्रुति है।

श्रीहर्ष विजयचन्द्र की सभा में गये। सभा में जाते ही राजा की स्तुति में यह सुन्दर पद्य सुनाया –

"गोविन्दनन्दनतया च वपुः श्रिया च
माऽस्मिन् नृपे कुरुत कामधियं तरूण्यः।
अस्त्री करोति जगतां विजये स्मरः स्त्री–
रस्त्री जनः पुनरनेन विधीयते स्त्री।।

कुछ विद्वानों के अनुसार महाकवि श्रीहर्ष प्रसिद्ध आलंकारिक काव्य प्रकाशकार मम्मट के भांजे थे और उन्होंने अपनी रचना "नैषधीयचरितम्" मामा को दिखलाया तब मम्मट ने कहा कि यदि तुमने यह ग्रन्थ पहले दिखाया होता तो मुझे दोष प्रकरण के लिए अन्य ग्रन्थों को देखने की आवश्यकता नहीं होती; तुम्हारे एक ही ग्रन्थ से सब काम चल जाता। इसके लिए यह पंक्ति मुख्य रूप से प्रदर्शित है–

"तव वर्त्मनि वर्ततां शिवम्।"[98]

अर्थात् तेरा मार्ग शुभ हो।

और – तव वर्त्म निवर्ततां शिवम्। इस प्रकार पढ़ने में थोड़ा अन्तर करने से अर्थ – तेरा मार्ग अशुभ हो।

श्रीहर्ष महाकवि ही नहीं, प्रत्युत ऊँचे दर्जे के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। श्रीहर्ष में पाण्डित्य तथा वैदग्ध का अनुपम सम्मिलन था। जिस प्रकार वे हृदयकली को खिलानेवाली स्वभाव मधुरा कविता लिखने में नितान्त दक्ष थे, उसी प्रकार मस्तिष्क को आश्चर्यान्वित करने वाली अनेक पण्डितों का मद चूर्ण करने वाली तर्क–कर्कश वाणी के गुम्फन में भी अत्यन्त कुशल थे।

श्रीहर्ष ने अपनी मनोहारिणी कविता के कारण कश्मीर देश में अपनी विमलकीर्ति रूपी पताका को फहराया। श्रीहर्ष उच्चकोटि के योगी भी थे। इन्होंने लिखा है कि वे समाधि में ब्रह्मानन्द का आस्वादन लिया करते थे।

इन्होंने काव्य के अन्त में अपने विषय में जो लिखा है, वह निःसन्देह सत्य ही है –

"ताम्बूलद्वयमासनंच लभते यः कान्यकुब्जेश्वराद्
यः साक्षात्कुरूते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदार्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्।।"[99]

ये कान्यकुब्ज नरेश जयचन्द की सभा में विद्यमान थे। जयचन्द के वंशवाले राजपूत गहड़वाल कहलाते थे। ये जयचन्द के सभा पण्डित थे। श्री हर्ष के प्रति गौरव सूचनार्थ राजा ने इन्हें दो पान और आसन दिये। जयचन्द काशी से ही अपने साम्राज्य पर शासन करते थे। जयचन्द ने अपने पिता विजयचन्द के साथ मिलकर 1156 ईस्वी से लेकर 1193 ईस्वी तक राज्य किया, अतएव कविवर श्रीहर्ष का आविर्भाव काल विजयचन्द तथा जयचन्द के सभा–पण्डित होने के कारण द्वादश शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।

रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंबई द्वारा 1875 ई० में प्रकाशित ग्रन्थ (पृ.सं. 371–387) में डा. ब्यूलर के राजशेखर सूरि कृत प्रबन्धकोष में दिये विवरणानुसार श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के राजा जयन्त चन्द (जयचन्द) के आश्रित कवि थे। यह जयन्त कुमार पाल के समकालीन था। जयचन्द का समय 1163 – 1194 ई. है और कुमार पाल का समय 1143–1174 ई. है। 1163 ई. से 1174 तक जयचन्द और कुमारपाल दोनों की स्थिति थी।

अतः ब्यूलर ने निष्कर्ष निकाला कि नैषधीयचरितम् की रचना 1163 – 1174 ई. के बीच हुई होगी।[100] इस प्रकार हर्ष का समय निर्विवाद रूप से 12वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है।

'प्रबन्धकोष' में राजशेखर की मान्यता को प्रमाणित माना जाए तो श्रीहर्ष ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। किन्तु श्रीहर्ष के केवल दो ही ग्रन्थ प्राप्त होते हैं– (1) नैषधीयचरितम् (2) खण्डनखण्डखाद्य। इन सब ग्रन्थों का नाम कविवर ने अपने नैषधीयचरितम् में उल्लिखित किया है।

1. **स्थैर्यविचारणप्रकरण**[101]

यह ग्रन्थ दार्शनिक विषय पर लिखा हुआ जान पड़ता है, कहा जाता है कि इसमें क्षणिक वाद का निराकरण होगा।

2. **विजयप्रशस्ति**[102]

इसमें जयचन्द के पिता विजयचन्द की प्रशस्ति है।

3. **गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति**[103]

इसमें बङ्गदेश के किसी राजा की प्रशस्ति का वर्णन है।

4. **अर्णव वर्णन**[104]

इसमें समुद्र का वर्णन होगा।

5. **छिन्द प्रशस्ति**[105]

इसमें छिन्द नामक राजा की प्रशस्ति का वर्णन किया गया होगा।

6. **शिवशक्तिसिद्धि**[106]

इसमें शिव और शक्ति की सिद्धि की गई होगी।

7. **नवसाहसांकचरित चम्पू**[107]

राजा भोज के पिता 'नवसाहसाङ्क' उपाधि वाले सिन्धुराज का चरित हो सकता है।

8. **खण्डनखण्डखाद्य**[108]

खण्डनखण्डखाद्य श्रीहर्षकृत प्रसिद्ध वेदान्त ग्रन्थ है। 'खण्डनखण्डखाद्य' अर्थात् खाँड (कच्ची शक्कर) का 'खाद्य' भोज्यपदार्थ, परन्तु यह ग्रन्थ अन्यंत कठिन है। यह गन्ने से बनी खाँड के समान सरल खाद्य तो नही है, जिसे सरलता से घोल कर पी लिया जाए, परन्तु इक्षुखण्ड से खाँड बनाने की प्रक्रिया के समान एक श्रमसाध्य खाद्यविषय अवश्य है, इसमें नैयायिक तर्क प्रणाली का अनुकरण कर लेखक ने न्याय के सिद्धांतो का खण्डन तथा अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का मण्डन किया है। पाण्डित्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ उच्च कोटि का है।

9. **नैषधीयचरित महाकाव्य**

इस महाकाव्य में राजा नल और दमयन्ती का वर्णन किया गया है। जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे किया जायेगा।

"श्रीहर्ष की शैली"

श्रीहर्ष का नैषधीयचरितम् महाकाव्य इनके गुण–गौरव और विद्वत्ता का खजाना है। यह पाण्डित्य प्रदर्शन, योग्यता, विद्वता में सभी कवियों से अग्रणी रहा है। अतः 'नैषधीयचरितम्' वृहत्त्रयी का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। इनके काव्य में भाषा सौन्दर्य के साथ भाव सौष्ठव है, तो कहीं पद लालित्य के साथ स्वर में मधुरता है। कहीं प्रसाद गुण है, तो कहीं ओज। एक ओर वैदर्भी रीति झलकती है, तो दूसरी ओर

गौडी का चमत्कार, एक ओर उत्प्रेक्षाओं की बहुलता है, तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यास का वैभव, एक ओर कलापक्ष, तो दूसरी ओर भावपक्ष चित्रण, कहीं श्रृंगारिक क्रीडाएँ हैं, तो कहीं करूण रस का द्रवीभाव।

श्रीहर्ष ने द्वयर्थक या त्र्यर्थक पद्य रचना द्वारा नई विधा की रचना की। पंचनली प्रसंग में श्रीहर्ष ने द्वयर्थक से पाँच अर्थ वाले श्लोकों की रचना की है। श्रीहर्ष की कवि प्रतिभा अत्यन्त ऊँचे दर्जे की है। कल्पनाओं की उड़ान की कोई सीमा नहीं है, जिसमें ह्रदय को स्पर्श करने की क्षमता है।

श्रीहर्ष नवार्थ घटना में चतुर हैं – यह वस्तुतः सत्य ही है जो कि नख शिख वर्णन का स्पष्ट प्रमाण है। तथा इन्होंने किसी भी पुरातन पद्धति का अनुसरण नहीं किया। इन्होंने कालिदास से प्रसाद गुण नहीं अपितु कल्पना, भारवि से चित्रालंकार नहीं अपितु अर्थगौरव, माघ से कथा में शैथिल्य नहीं अपितु पाण्डित्य प्रदर्शन रूपी गुणों को अपनाया।

यदि भारवि की सूर्यरूपी कान्ति को माघ के माघ–मास ने निष्प्रभ कर दिया है, तो श्रीहर्ष की वासन्ती सुषमा ने माघ के कम्प को निरस्त कर दिया। अतएव कहा गया है

"तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः।

उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारवि।।"

मूलतः नैषध विद्वानों के लिए औषधि है – "नैषधं विद्वदौषधम्।"

भाषा सौष्ठव

श्रीहर्ष के काव्य में कहीं–कहीं प्रसाद गुण युक्त सरल भाषा के दर्शन हैं, तो कहीं बहुत अधिक दुरूह भाषा का प्रयोग किया है। उनके काव्य रूपी गहन वन में बिछे शब्द रूपी काँटो और अंलकार रूपी झाड़–झाखाड़ों में से होकर गमन करना, किसी भी साधारण रसिक पथिक के लिए बिना किसी योग्य निर्देशक के संभव नहीं है। श्रीहर्ष की भाषा सम्बन्धी कठिनता के प्रमुख कारणों में अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

है। यथा – अकूपार (समुद्र)[109] अगदंकार (वैद्य)[110] आदि तथा भाषा की दुरूहता का दूसरा कारण, उनकी शब्द चमत्कारिता तथा शब्द क्रीड़ा की प्रवृत्ति हैं जिसके कारण यमक का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है। तथा 'पंचनली' वर्णन में श्लेष की पराकाष्ठा, जहाँ एक–एक श्लोक के पांच–पांच अर्थ हैं, जो नल और चारों देवताओं के सम्बन्ध में हैं और कहीं–कहीं हंस विलाप तथा हंस द्वारा कृतज्ञता वर्णन में भाषा सुबोधगम्य है।

यथा–

"फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।

त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी ह्रणीयते।।"[111]

अर्थात् जल और वृक्षों से उत्पन्न कन्द और फल से मुनि समान मेरी वृत्ति है, उसके विषय में भी दण्डधारण करने वाले पालक, आपसे धरती क्यों नहीं लज्जा करती।

अनेक स्थानों पर मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है।

"कथमस्य दर्शयिताहे।" (अपना मुँख कैसे दिखाऊँगा)

इस प्रकार श्रीहर्ष की भाषा कठिन है। कठिन भावों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ है। साथ ही साथ आवश्यकता पड़ने पर प्रसंगानुसार प्रांजल, सरस, प्रवाहमयी तथा ध्वनि एवं लय से परिपूर्ण भी है।

भावाभिव्यक्ति

श्रीहर्ष की चिन्तन रूपी अनोखी कल्पना भावों को मनोरम तथा सुकोमल बना देती है। भावों में गम्भीरता है फिर भी अभिव्यक्ति के साथ उसे और भी सुन्दर बना देते है। नैषधचरितम् महाकाव्य में नल–दमयन्ती का श्रृंगारिक वर्णन, भाव–युक्त महाभारत की कथा का वर्णन आदि का मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। चन्द्रमा के अन्दर विद्यमान कलंक के सम्बन्ध में कवि की कल्पना दृष्टव्य है।

"यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम

तदेव गत्वा पतितं सुधाऽम्बुधौ दधाति पङ्कीभदङ्कतां विधौ।।"[112]

राजा नल की विजय यात्राओं के समय, जो धूलि उड़कर समुद्र में गिर गई थी, वहीं कीचड़ बनकर समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा में कलंक के रूप में दिखलाई पड़ती है।

भगवान् विष्णु के वामन अवतार का बड़ा ही मनोहर उदाहरण कवि ने दिया है –

"विधाय मूर्तिं कपटेन वामनीं स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम्।

उपेतपार्श्वश्चरणेन मौनिना नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना।।"[113]

राजा नल ने स्वयं कपट से बलि को छलने वाले भगवान विष्णु की नकल करके छोटा शरीर बनाकर, शब्द रहित दबे पाँव, हंस के पास पहुँचकर, हाथ से हंस को पकड़ लिया।

रसाभिव्यक्ति

नैषध महाकाव्य में अंगीरस 'श्रृंगार' है। वीर, करुण तथा हास्य आदि अन्य रसों का प्रयोग अंगभूत रसों के रूप में किया गया है। श्रृंगार के दोनों पक्षों, संयोग तथा विप्रलम्भ का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है।

श्रीहर्ष ने दमयन्ती के मुख सौन्दर्य की तुलना चन्द्रमा से की है।

"साक्षात् सुधांशुर्मुखमेव भैम्या दिवः स्फुटं लाक्षणिकः शशाङ्क।

एतद्भ्रुवो मुख्यमनङ्गचापं पुष्पं पुनस्तद्गुणमात्रवृत्त्या।।"[114]

दमयन्ती का मुख ही मुख्यतः अभिधेय सुधांशु है। क्योंकि इसके अधरोष्ठ में सुधा विराजित है। आकाश का शशांक तो शशरूप लक्षण से युक्त होने के कारण लाक्षणिक है। इसकी दोनों भौंहें ही काम के मुख्य चाप हैं। मुख में होने के कारण तथा साक्षात् कामोद्दीपक होने के कारण अभिधेय है, पुष्पता की समानता के कारण गौण कामदेव का चाप है।

श्रीहर्ष ने करूण रस का भी मार्मिक चित्रण किया है।

"मदेकपुत्रा जननी जरातुरा नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्द्दयन्नहो विधे! त्वां करूणा रूणद्धि नो।।"[115]

हे भाग्य, मैं वृद्धा माता का एकमात्र पुत्र हूँ। बेचारी पत्नी के अभी नव सन्तान हुई है। मैं ही उन दोनों का आश्रय हूँ। ऐसे मुझको मारते हुए क्या तुझे दया नहीं आती?

अलंकार

श्रीहर्ष की अंलकार युक्त भाषा है। श्रीहर्ष ने नैषध काव्य में पद–पद पर अलंकृत शैली से काव्य की शोभा को बढ़ाया है। श्रीहर्ष के अलंकारों के प्रयोग की तुलना कालिदास से की जा सकती है।

उत्प्रेक्षा और अतिश्योक्ति अंलकारों का प्रयोग कवि ने अपनी अपूर्व कल्पना से व्यक्त किया है।

श्लेष के वर्णन में भी अपनी विद्वदता को प्रदर्शित किया है। अनुप्रास और यमक शब्दालंकारों का प्रयोग सर्वत्र प्राप्य है। श्लेष के प्रयोग में श्रीहर्ष, अक्षय शब्दकोष और बहुज्ञता के परिचायक हैं।

अर्थान्तरन्यास का प्रयोग इनके अर्थ गौरव की दृष्टि से भारवि की कोटि में रखता है।

मुख्यतया – उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिश्योक्ति, श्लेष, व्यतिरेक, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

श्लेष अलंकार के प्रयोग में श्रीहर्ष ने प्रखर पाण्डित्य का परिचय दिया है।

"इतीरिता पत्ररथेन तेन, ह्रीणा च ह्रष्टा च बभाण भैमी।

चेतो नलं कामयते मदीयं, नान्यत्र कुत्रापि च सामिलाषम्।।"[116]

यहाँ पर दमयन्ती की उक्ति "चेतो नलं कामयते मदीयं" को तीन अर्थो में प्रस्तुत किया है यथा –

1. चेतः नलं कामयतेमदीयम् – मेरा ह्रदय नल को चाहता है।
2. चेतः न लंकाम अयते मदीयम् – मेरा चित्त लंका को नहीं जाता है।
3. चेतः अनलं कामयते मदीयं – नल के न मिलने पर मेरा चित्त अनल (अग्नि) को चाहता है, अर्थात् मैं सती हो जाऊँगी

उत्प्रेक्षा का उदाहरण

"पतगच्श्रिरकाललालनादतिविश्रम्भमवापितो नु सः।

अतुलं विदधे कुतूहलं भुजमेतस्य भजन्महीभुजः।।"[117]

पक्षी हंस को बहुत समय तक राजा ने हाथ में लेने से मानों अत्यन्त विश्वस्त कराया हो। राजा के हाथ में स्वयं प्राप्त होने से हंस ने अनुपम कौतुक को उत्पन्न किया।

श्रीहर्ष ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के प्रयोग में अपने गम्भीर चिन्तन और व्यवहार निपुणनता को निम्न सूक्तियों के माध्यम से दर्शाया है।

–क्व भोगमाप्नोर्ति न भाग्यभाग्जनः।[118]

भाग्यवान मनुष्य कहाँ सुख को प्राप्त नहीं होते, अर्थात् सभी जगह सुख की प्राप्ति होती है।

–निजोपयोगिताम्।[119]

सज्जन अपनी सार्थकता क्रिया द्वारा प्रमाणित करते है।

–स्वत एव सतां परार्थता ग्रहणानां हि यथा यथार्थता। [120]

सज्जनों का प्रमाण स्वतः होता है, वैसे ही दूसरों के हितो के लिए सज्जनो की प्रवृत्ति भी स्वभावतः होती है।

"कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते।"[121]

कार्य कारणादि विशेष गुणों को प्राप्त करना।

ह्रदे गंभीरे ह्रदि चऽवगाढे शंसन्ति कार्याऽवतरं हि सन्तः।[122]

विद्वान लोग गम्भीर जलाशय की गहराई पता चलने पर ही निश्चय करते हैं कि पार किस मार्ग से किया जायेगा, वैसे ही विद्वान गम्भीर ह्रदय को टटोलने पर ही रहस्य को कहते हैं।

गुरूपदेशं प्रतिमेव तीक्ष्णा प्रतीक्षते जातु न कालमार्तिः।[123]

तीक्ष्ण बुद्धि जैसे गुरू के उपदेश की प्रतीक्षा नहीं करती, वैसे ही पीड़ा होने पर वह काल की प्रतीक्षा नहीं करती।

प्रियमनु सुकृतां हि स्वस्पृहाया विलम्बः।[124]

पुण्यात्माओं को इच्छा के अनन्तर अभीष्ठ वस्तु की प्राप्ति में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः[125]

विद्वान लोग झटपट दूसरों के आशय को जानने वाले होते हैं।

कर्मः कः स्वकृतमत्र न भुङक्ते?[126]

अपने कर्म का फल कौन नहीं भोगता, अर्थात् सभी प्राणी कर्मानुसार फलों को भोगते हैं।

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। [127]

कुटिलता में सरलता का प्रदर्शन नीति नहीं है।

दुर्जया हि विषया विदुषापि।[128]

विद्वानों को विषयों को जीतना भी कठिन होता है।

चकास्ति योग्येन हि योग्य–संगम।[129]

योग्य का योग्य से मेल शोभित होता है।

जातौ न वित्ते न गुणे न कामः सौन्दर्य एव प्रणवः स वामः।[130]

कन्या वर के कुल धन एवं गुणों को नहीं चाहती, केवल सुन्दरता को ही पसन्द करती है, कहा भी है "कन्या वरयते रूपम्" क्योंकि काम प्रतिकूल होता है।

श्रीहर्ष ने प्रमुख रूप से हरिणी, शार्दुलविक्रीडितम्, मन्दाक्रान्ता, स्त्रग्धरा, उपजाति, वंशस्थ, अनुष्टुप, वसन्ततिलका, द्रुतबिलम्बित स्थोदृता आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

कथासार

नैषधीयचरितम्

श्रीहर्ष ने स्वकाव्य रचना में 'महाभारत' की कथा को आधार बनाया है। अतः नैषधीयचरितम् का उपजीव्य महाभारत के वनपर्व स्थित, नलोपाख्यान से लिया गया है। इस महाकाव्य में निषध देश के राजा नल के पावन चरित का उत्तम रीति से वर्णन किया गया है। इसमें 22 सर्ग हैं तथा सम्पूर्ण श्लोक संख्या 2830 है। यहाँ नल–दयमन्ती के प्रणय से लेकर परिणय तक का संगोपांग वर्णन सर्गानुसार किया गया है।

प्रथम सर्ग

नल दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना। नल का वन–विहार, एक हंस को पकड़ना, दयार्द्र होकर उसे छोड़ना।

द्वितीय सर्ग

हंस का कृतज्ञताज्ञापन और दमयन्ती का गुणानुवाद। नल के आग्रह पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना।

तृतीय सर्ग

हंस का दमयन्ती के सामने नल के गुणों को कहना। दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना।

चतुर्थ सर्ग

दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय।

पंचम सर्ग

इन्द्र, अग्नि, यम और वरूण का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना।

षष्ठ सर्ग

अदृश्य नल का दमयन्ती के यहाँ पहुँचना और उसका सौन्दर्य देखना।

सप्तम सर्ग

दमयन्ती का नख–शिख वर्णन।

अष्टम सर्ग

नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को चुनने का आग्रह करना।

नवम सर्ग

नल दमयन्ती का वार्तालाप, दमयन्ती का देवों में से किसी को न वरण करने का निश्चय और नल को विवाहार्थ राजी करना।

दशम सर्ग

स्वयंवर–विवरण, दमयन्ती का स्वयंवर वर्णन।

एकादश सर्ग

सरस्वती के द्वारा राजाओं आदि का परिचय दिया जाना।

द्वादश सर्ग– में भी राजाओं का परिचय दिया जाता है।

त्रयोदश सर्ग

चार देवता और नल (पंचनली) का सरस्वती द्वारा श्लेषयुक्त वर्णन।

चतुर्दश सर्ग

देवों की स्वीकृति से दमयन्ती का नल को वरण करना एवं देवों का आशीर्वाद देना।

पंचदश सर्ग

विवाह की तैयारी।

षोडश सर्ग

विवाह संस्कार का वर्णन एवं विशेष वैवाहिक भोजन आदि का वर्णन।

सप्तदश सर्ग– देवों का लौटते समय कलि से मिलना, कलि के मुँह से चार्वाक–सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन; देवों द्वारा चार्वाक–सिद्धान्त खण्डन, क्रुद्ध कलि का नल को राज्यच्युत तथा दमयंती से वियुक्त करने का श्राप।

अष्टादश सर्ग–नल दमयन्ती का प्रथम मिलन तथा काम–क्रीड़ा वर्णन।

एकोविंश सर्ग से द्वाविंश सर्ग तक नल दमयन्ती की दिन–चर्या, देवस्तुति, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि वर्णन, नल दमयन्ती का विलास वर्णन तथा कवि वृत्त वर्णन से महाकाव्य की समाप्ति की गई है।

काव्य–सौन्दर्य

नैषध में काव्य का सौन्दर्य प्रत्येक स्थान पर दर्शित होता है। कहीं प्रसाद, कहीं माधुर्य, कहीं ओज तो कही प्रसाद माधुर्य के साथ पद लालित्यं का संगम, सोने में सुहागे का काम करता है।

काव्य की लयात्मकता और संगीतात्मकता श्रुति–सुखद तथा मन को आनन्दित करने वाली है। नैषध महाकाव्य में अपूर्व कल्पना की कमनीयता, उपमा की रमणीयता

तथा रूपक अतिश्योक्ति आदि मनोहारी वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उनका मूल है, उसमें प्रयुक्त समुचित ललित पद विन्यास की बहुलता। वर्ण्य विषय के अनुकूल ही भावपूर्ण और अलंकृत पदों के प्रयोग में श्रीहर्ष अद्वितीय हैं, इसी कारण सूक्ति प्रसिद्ध है। "नैषधे पद लालित्यं।" यथा –

"अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे?
तदास्यदास्येऽपिगतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः।।"[131]

"अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।
तपर्तुपूर्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्विभरांबभूविरे।।"[132]

नैषधं विद्वदौषधम्

श्रीहर्ष के लिए "गागर में सागर" भरने की उक्ति चरितार्थ होती है क्योंकि श्रीहर्ष विविध शास्त्रों के ज्ञाता हैं। श्रीहर्ष ने नैषध में श्लेष युक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा, चार्वाक, बौद्ध, जैन आदि दर्शनों के सिद्धान्तों का भी कहीं–कहीं प्रयोग किया है। अतएव नैषध को विद्वानों के लिए औषध या रसायन माना गया है।

श्रीहर्ष न्याय शास्त्र के रचयिता महर्षि गौतम को भी गौतम (पक्का, बैल, मूर्ख) मानते हैं कि वह मुक्त दशा में चेतन प्राणियों को विशेष गुणों से हीन बताकर, उनकी पत्थर के समान निर्जीव स्थिति को स्वीकारते हैं।

"मुक्तये यः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेतैव यया वित्थ तथैव सः।।"[133]

इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन में तमस् (अन्धकार) को पदार्थ मानने पर उसकी बड़ी हंसी उड़ाई है, उनका कहना है कि जिस दर्शन के आद्य प्रवर्तक ही 'उलूक' नाम के आचार्य हैं, वही तो अन्धकार के निरूपण करने में समर्थ हो सकता है।

"ध्वान्तस्य वामोरू! विचारणायां वैशेषिकं चारूमतं मतं में।
औलूकमाहुः खलु दर्शनं तत्क्षमं तमस्तत्त्वनिरूपणाय।।"[134]

वेदान्त दर्शन के अनुसार, मुक्ति में जीवात्मा के लय के साथ ब्रह्मैक्य है। इसी पर व्यंग्य किया है कि मूर्ख व्यक्ति ही अपने अस्तित्व की समाप्ति पसन्द करेंगे।

"स्वं च ब्रह्म च संसारे मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम्।
इति स्वोच्छित्तिमुक्त्युक्तिवैदग्धी वेदवादिनाम्।।"[135]

श्रीहर्ष ने अद्वैत को ही सर्वमान्य दर्शन बताया है।

"श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मताना।
अद्वैत तत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः।।"[136]

बौद्ध दर्शन की तीन शाखाओं (शून्यवाद, विज्ञानवाद और साकार विज्ञानवाद) में सरस्वती के स्वरूप का वर्णन एक ही श्लोक में किया है।

"या सोमसिद्धान्तमयाननेव शून्यात्मतावादमयोदरेव।
विज्ञानसामस्त्यमयान्तरेव साकारतासिद्धिमयाखिलेव।।"[137]

सांख्य के सत्कार्यवाद का वर्णन करते हुए श्रीहर्ष ने

"नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः" अर्थात् कार्य–कारण में भेद नहीं है। [138]

न्यायशास्त्रानुसार जैसे सक्रिय दो परमाणुओं से दृयणुक उत्पन्न होता है। श्रीहर्ष ने वैशेषिक दर्शन के परमाणुवाद सिद्धान्त को निम्न पंक्ति द्वारा प्रदर्शित किया है।

"आविद द्वयणुककृत्परमाणुयुग्यम्।"[139]

मन की अनुरूपता को निम्न पंक्ति द्वारा प्रदर्शित किया है –

"मनोभिरासीदनणुप्रमाणैर्न।" [140]

श्रीहर्ष को ज्योतिष शास्त्र के भी ज्ञाता मान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने नैषध में ज्योतिष के विषय में वार्ता की है।

"अजस्त्रमभ्यासमुपेयुषां समं मुदैव देवः कविनां बुधेनं च।"[141]

अर्थात् सूर्य के निरन्तर समीप रहने वाले कवि (शुक्र) आदि तथा चन्द्र के समीप बुद्ध आदि ग्रह आनन्द के साथ रहते हैं।

इसी प्रकार श्रीहर्ष ने पाणिनी के "अपवर्गे तृतीया" सूत्र पर भी व्यंग्य किया है कि अपवर्ग के लिए तृतीय (पुरुष और स्त्री से भिन्न नपुसंक व्यक्ति) ही उपयुक्त है।

"उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मनुर्मतम्।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपिः।।"[142]

निष्कर्ष रूप में यह निर्विवाद सिद्ध है कि नैषधीयचरितम् उच्चकोटि का महनीय महाकाव्य है। श्रृंगार प्रिय होते हुए भी श्रीहर्ष ने रसों की अपेक्षा अलंकारों को सजाने में अत्यधिक ध्यान दिया है। इस प्रकार नैषधीयचरितम् महाकाव्य एक ऐसा सुसज्जित प्रसाद है, जिसमें सभी आवश्यक वस्तुऐं यथास्थान सुचारू रूप से, कलात्मक ढंग से सजाकर रखी गई हैं। इनकी कलात्मक रमणीयता में सर्वत्र सुसंस्कृति और नागरिकता की झलक है। अपने अनेक अनुपम गुणों के कारण श्रीहर्ष का स्थान आज भी पण्डित कवियों में सर्वोपरि है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि "नैषधीयचरित" के रूप में श्रीहर्ष की उक्ति 'वैदग्धभङ्गीभणिति' क्षीर सागर के समान अमृतदायिनी है, यह पर्वत–पाषणो से युक्त आडम्बर कोलाहल करती नदी नहीं –

दिशि दिशि गिरिग्रावाणः स्वां वमन्तु सरस्वतीं
तुलयतु मिथस्तामापातस्फुरद्ध्वनिऽम्वराम्
स परमपरः क्षीरोदन्वान्यमुदीयते
मथितुरमृतं खेदच्छेदि प्रमोदनमोद नम्
देवर्षि सनाढ़।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. साहित्य दर्पण श्रीमद्विश्वनाथ कविराज प्रणीत डॉ निरूपण विद्यालङ्कार, प्रकाशक – मेरठ, पृ. 10–11
2. साहित्य दर्पण श्रीमद्विश्वनाथ कविराज प्रणीत डॉ निरूपण विद्यालङ्कार, प्रकाशक – मेरठ, पृ. 10–11
3. रघुवंशम् 1/1
4. शिशुपालवधम् 2/86
5. काव्यादर्श 1/2
6. नीतिशतक– 103
7. साहित्य दर्पण (पृष्ठ–19)
8. ईशावस्योपनिषद्–8
9. ध्वन्यालोक (पृष्ठ – 422)
10. काव्यप्रकाश 1/1
11. अग्निपुराण 337/607
12. साहित्य दर्पण 6/317 (पृष्ठ –604)
13. साहित्य दर्पण 6/315
14. साहित्य दर्पण 6/315
15. साहित्य दर्पण 6/316
16. साहित्य दर्पण 6/316
17. किरातार्जुनीयम् – 18/5
18. किरातार्जुनीयम् – 2/30
19. किरातार्जुनीयम् – 5/39
20. ऐलोहशिलालेख का अन्तिम श्लोक – 37 वां
21. शब्दावतारकारेण देवभारतीनिबद्धवड्ढ़कथेन किरातार्जुनीयप×चदश सर्ग टीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन।

22. History of classical Sanskrit Litereture – M. Krishnamachari
23. यतः कौशिककुमारो (दामोदरः) ... पुण्यकर्मणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात् (अवन्तिसुन्दरीकथा)
24. किरातार्जुनीयम् – 3/37
25. किरातार्जुनीयम् – 1/36
26. किरातार्जुनीयम् – 2/27
27. किरातार्जुनीयम् – 14/3
28. किरातार्जुनीयम् – 1/30
29. किरातार्जुनीयम् – 8/51
30. किरातार्जुनीयम् – 14/32
31. किरातार्जुनीयम् – 15/14
32. किरातार्जुनीयम् – 15/12
33. किरातार्जुनीयम् – 15/25
34. किरातार्जुनीयम् – 15/50
35. किरातार्जुनीयम् – 15/52
36. किरातार्जुनीयम् – 2/33
37. किरातार्जुनीयम् पृष्ठ–7
38. किरातार्जुनीयम् – 3/14
39. किरातार्जुनीयम् – 11/30
40. किरातार्जुनीयम् – 11/59
41. किरातार्जुनीयम् – 17/16
42. किरातार्जुनीयम् – 2/3
43. किरातार्जुनीयम् – 1/30
44. किरातार्जुनीयम् – 2/49
45. किरातार्जुनीयम् – 1/5

46. किरातार्जुनीयम् – 13/12
47. किरातार्जुनीयम् – 1/4
48. किरातार्जुनीयम् – 1/8
49. किरातार्जुनीयम् – 1/23
50. किरातार्जुनीयम् – 8/37
51. किरातार्जुनीयम् – 11/11
52. किरातार्जुनीयम् 2/30
53. किरातार्जुनीयम् 10/32
54. संस्कृत साहित्य का इतिहास–डॉ जगन्नारायण पाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर पृष्ठ–68
55. शिशुपालवधम् 3/53
56. शिशुपालवधम् 5/26
57. शिशुपालवधम् 4/20
58. शिशुपालवधम् 4/17
59. शिशुपालवधम् 4/45
60. शिशुपालवधम् 1/26
61. शिशुपालवधम् 2/73
62. शिशुपालवधम् 2/48
63. शिशुपालवधम् 11/33
64. शिशुपालवधम् 18/12
65. शिशुपालवधम् 3/16
66. शिशुपालवधम् 12/24
67. शिशुपालवधम् 1/5
68. शिशुपालवधम् 1/38
69. शिशुपालवधम् 2/46
70. शिशुपालवधम् 9/6

71. शिशुपालवधम् 19 / 114
72. शिशुपालवधम् 19 / 27
73. शिशुपालवधम् 2 / 55
74. शिशुपालवधम् 2 / 10
75. शिशुपालवधम् 4 / 47
76. शिशुपालवधम् 2 / 72
77. शिशुपालवधम् 2 / 82
78. शिशुपालवधम् 2 / 13
79. शिशुपालवधम् 1 / 72
80. शिशुपालवधम् 5 / 6
81. शिशुपालवधम् 6 / 44
82. शिशुपालवधम् 1 / 67
83. शिशुपालवधम् 2 / 100
84. शिशुपालवधम् 2 / 65
85. शिशुपालवधम् 9 / 43
86. शिशुपालवधम् 19 / 89
87. शिशुपालवधम् 16 / 25
88. शिशुपालवधम् 20 / 74
89. शिशुपालवधम् 6 / 2
90. शिशुपालवधम् 6 / 76
91. शिशुपालवधम् 2 / 112
92. शिशुपालवधम् 2 / 95
93. शिशुपालवधम् 14 / 19
94. शिशुपालवधम् 2 / 30
95. शिशुपालवधम् 2 / 37

96. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ कपिल देव द्विवेदी पृष्ठ नं 221 (इलाहाबाद)

97. नैषधीयचरितम् 1/145

98. नैषधीयचरितम् 2/62

99. नैषधीयचरितम् 22/153

100. JBRAS.X, 1871, P-31

101. नैषधीयचरितम् 4/123

102. नैषधीयचरितम् 5/138

103. नैषधीयचरितम् 7/109

104. नैषधीयचरितम् 9/160

105. नैषधीयचरितम् 17/219

106. नैषधीयचरितम् 18/149

107. नैषधीयचरितम् 22/149

108. नैषधीयचरितम् 6/113

109. नैषधीयचरितम् 12/18

110. नैषधीयचरितम् 4/116

111. नैषधीयचरितम् 1/133

112. नैषधीयचरितम् 1/8

113. नैषधीयचरितम् 1/124

114. नैषधीयचरितम् 10/116

115. नैषधीयचरितम् 1/135

116. नैषधीयचरितम् 3/67

117. नैषधीयचरितम् 2/7

118. नैषधीयचरितम् 1/102

119. नैषधीयचरितम् 2/48

120. नैषधीयचरितम् 2 / 61

121. नैषधीयचरितम् 3 / 17

122. नैषधीयचरितम् 3 / 53

123. नैषधीयचरितम् 3 / 91

124. नैषधीयचरितम् 3 / 134

125. नैषधीयचरितम् 4 / 118

126. नैषधीयचरितम् 5 / 6

127. नैषधीयचरितम् 5 / 103

128. नैषधीयचरितम् 5 / 109

129. नैषधीयचरितम् 9 / 56

130. नैषधीयचरितम् 10 / 13

131. नैषधीयचरितम् 1 / 20

132. नैषधीयचरितम् 1 / 41

133. नैषधीयचरितम् 17 / 74

134. नैषधीयचरितम् 22 / 35

135. नैषधीयचरितम् 17 / 73

136. नैषधीयचरितम् 13 / 35

137. नैषधीयचरितम् 10 / 88

138. नैषधीयचरितम् 5 / 94

139. नैषधीयचरितम् 3 / 125

140. नैषधीयचरितम् 3 / 37

141. नैषधीयचरितम् 1 / 17

142. नैषधीयचरितम् 17 / 68

तृतीय अध्याय

महिलाओं के मानवाधिकार

खण्ड (क) महिला–अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

खण्ड (ख) द्रौपदी के प्रतिकार की पृष्ठभूमि में स्त्रियों के अधिकार

खण्ड (ग) मानव के रूप में स्त्री के अधिकार

1. सामाजिक अधिकार

2. राजनैतिक अधिकार

3. सम्पत्ति विषयक अधिकार

3. सांस्कृतिक अधिकार

महिलाओं के मानवाधिकार

खण्ड (क) : महिला–अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैदिक काल में स्त्री को धार्मिक शिक्षा–दीक्षा एवं धार्मिक कार्यों के संपादन का अधिकार पूर्णतया प्राप्त था। लड़कों की ही तरह लड़कियों को भी वेद अध्ययन का समान अधिकार था। प्रातः और संध्याकालीन, वैदिक प्रार्थनाएं स्त्री जीवन की दिनचर्या का अनिवार्य हिस्सा थीं। ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं कि यज्ञ पत्नी के बिना अपूर्ण माना जाता था। उदाहरणार्थ, अथर्वसंहिता में कहा गया है–मैं शुद्ध, पवित्र यज्ञ की अधिकारिणी इन स्त्रियों को, विद्वानों के हाथों में पृथक–पृथक रूप में प्रसन्नता से अर्पित करता हूं।[1]

'उपर्युक्त मंत्र में योषित् (नारी) शब्द के लिए आए 'शुद्धाः', 'पूताः' तथा 'यज्ञियाः' विशेषण इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि उस समय नारी समाज, यज्ञ में भाग लेने एवं अपनी योग्यतानुसार यज्ञ कराने तथा दूसरों से यज्ञ कराने का पूर्ण अधिकार रखता था। यदि ऐसा न होता तो 'यज्ञियाः' विशेषण के स्थान पर किसी अन्य विशेषण का प्रयोग 'योषित्' शब्द के साथ किया जाता। स्पष्ट है कि वेद स्त्री को यज्ञ में भाग लेने का पूर्ण अधिकार देते हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर पति–पत्नी द्वारा यज्ञ संपन्न करने का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि जो पति–पत्नी समान मन वाले होकर यज्ञ करते हैं, उन्हें पुष्प, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती।[2]

स्त्री को 'चतुष्कपर्दा' कहकर भी संबोधित किया गया है।[3] 'चतुष्कपर्दा' का अर्थ यज्ञीय वेदी के निर्माण में कुशल नारी। इससे ज्ञात होता हैकि उस समय स्त्री, यज्ञ के सभी अवयवों से सुपरिचित थी और यज्ञ करने एवं कराने का अधिकार उसे जन्म से प्राप्त था।

विवाह से पहले और विवाह के बाद भी स्त्री स्वतंत्र रूप से भी धार्मिक कृत्यों का संपादन करती थी। इतना ही नहीं, वैदिक काल में ऐसी कई विदुषी स्त्रियां भी हुईं, जिन्होंने कविताओं के साथ–साथ मंत्रों की रचना भी की। अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, इन्द्राणी, सूर्या, रोमशा सरीखी कई स्त्रियों ने मंत्रों की रचना की, जिन्हें वैदिक वाङ्मय में सम्मिलित किया गया।

महर्षि कश्यप की पत्नी अदिति ने ऋग्वेद के चतुर्थ मंडल के अठाहरवें सूक्त की पांचवी, छठी, एवं सातवीं ऋचा की रचना की। ऋग्वेद के दशम मंडल के 72वें सूक्त के सभी नौ मंत्रों की रचना भी अदिति द्वारा की गई। देव–असुर संग्राम के सूत्रधार के रूप में अदिति एक विद्वान स्त्री परिलक्षित हुई है। महर्षि कश्यप की दूसरी पत्नी दिति के गर्भ से दैत्य उत्पन्न हुए और अदिति के गर्भ से देवों का जन्म हुआ। अदिति ने ऋग्वेद के चौथे मंडल में जो सूक्त रचे, उनमें वृत्रासुर नामक विश्वव्यापी प्रभुत्व वाले दैत्य का असामाजिक अभियान दिखाया है। विदुषी अदिति ने इसी सूक्त में इंद्र से इस धरती की निरकुंश शक्तियों को कुचलने की प्रार्थना की है और इंद्र के सामर्थ्य को दर्शाया है।[4]

ऋग्वेद के दशम मंडल के 39 एवम् 40 सूक्त की सभी ऋचाओं की रचना महर्षि कुक्षिवान की पुत्री घोषा ने की। दोनों सूक्तों में कुल मिलाकर 28 मंत्र हैं, जिनमें कुंवारी कन्याओं के लिए वेद अध्ययन से लेकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने तक के समस्त कार्य सुचारू रूप से वर्णित हैं। इन सूक्तों में घोषा के द्वारा वैद्य बंधुवों अश्विनी कुमारों से विविध प्रकार की प्रार्थनाएं हैं, जोकि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए निवेदन करती प्रतीत होती हैं। इसी तरह अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा ने अपने पति के साथ ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 179 वें सूक्त की रचना की। लोपामुद्रा विदर्भ राजा के ऐश्वर्य में पली–बढ़ी पुत्री थी, जोकि बाद में महर्षि अगस्त्य के साथ पाणिग्रहण संस्कार कर, उनकी सहधर्मिणी बनकर उनकी सेवा में लग गई। 'संतानहीन के पितरों का कल्याण नहीं होता' के भाव से चिन्तित ऋषि अगस्त्य ने सुलक्षणा, अप्सराओं–सी रूपवती और राजसी वैभव से ओत–प्रोत लोपामुद्रा

का हाथ, उनके पिता से मांगा था। लोपामुद्रा ने गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों के निर्वाह हेतु, पति और पत्नी के आदर्श रूप को सूक्त में बांधा। इस सूक्त का सार यह है कि गृहस्थ धर्म में स्त्री और पुरुष का अधिकार एक–सा है, अतएव जीवन को संयम पर आधारित रखते हुए दंपती को सदैव विद्याध्ययन में लीन रहना चाहिए। पितृ ऋण से मुक्ति के लिए पुत्र–रत्न आवश्यक है, अन्यथा वासनाओं की पूर्ति के लिए देह का उपयोग उचित नहीं।

महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला वैदुष्य की पराकाष्ठा है। महर्षि अत्रि की विलक्षण शास्त्र शिक्षण प्रणाली ने, अपाला को एक असाध्य कुष्ठ रोगी से वैदिक साहित्य का प्रखर प्रकाशपुंज बना दिया। मुनिजन अपाला को सरस्वती का अवतार रूप मानने लगे। अपाला ने अपने पति ऋषि कृशाश्व के द्वारा अपने देह के रोग से उत्पन्न खिन्नता को समाप्त करने के लिए, इन्द्र की तपस्या की और अंततः तप्त सुवर्ण जैसा वर्ण प्राप्त कर, अपने तप और त्याग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। अपाला ने ऋग्वेद के आठवें मंडल के 91 वें सूक्त की सातों ऋचाओं की रचना की, जिसमें इन्द्र को प्रसन्न करने का साहित्यिक बोध प्रकट होता है।

ऋग्वेद के आठवें मंडल के प्रथम सूक्त की 34 वीं ऋचा की दृष्टा शश्वती है। शश्वती ऋषि अंगिरा की पुत्री बुद्धि का पर्याय मानी जाती है। शश्वती ने नारी को बुद्धि का प्रतीक और पुरुष को आत्मा का प्रतीक दर्शाया है। शश्वती के अनुसार बुद्धि से ही आत्मा की शोभा होती है और बुद्धि की शुद्धता पर ही आत्मा की शुद्धि और पवित्रता निर्भर है। इसी आधार पर उन्होंने गृहस्थी में पति और पत्नी के मेल–मिलाप का सिद्धांत दिया। उनके कथनानुसार, पति चाहे जितना भी निर्धन हो, पत्नी को सदा यह भाव रखना चाहिए कि मेरे पति के पास संपूर्ण ब्रह्मांड का सुख है। अपनी ऋचा में शश्वती ने पति–पत्नी के संबंधों की ऐसी ही उज्ज्वल व्याख्या की है।

इन ऋषिकाओं के अतिरिक्त, अन्य वैदिक–कालीन कन्याओं का योगदान भी भारतीय समाज को उन्नत और शैक्षणिक रूप से विकसित बनाने में कम नहीं है।

कन्याएं, ऋचाओं की रचना करने से लेकर वीणा आदि वाद्य यंत्रों के साथ, गायन और नृत्य में भी प्रवीण थीं। अपनी सामाजिक स्थिति में वरिष्ठ होने के अनुरूप, सांस्कृतिक वैभव को भी प्रतिष्ठापित करने में स्त्रियों का योगदान अविस्मरणीय है। मंत्र दृष्टा ऋषिकाएं, वेदाध्ययन में रत कन्याएं और तपोबल से देवों को प्रसन्न करने वाली ब्रह्मवादिनियां, इस युग की नारी की उत्कृष्ट स्थिति का परिचायक है। नारी ने अपनी रुग्णावस्था को परास्त करने के लिए, पुत्र प्राप्ति की लालसा और अन्य कामनाओं को पूर्ण करने के लिए यज्ञ अनुष्ठान किये।

शिक्षा का अधिकार

वैदिक काल का अनेक विदुषी महिलाओं से सुशोभित होना स्पष्ट करता है कि उस युग में महिलाओं को शिक्षा, वेदाध्ययन का अधिकार सहज प्राप्त था। धर्म शास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य की सभी स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।[5]

वैदिक काल में स्त्री की शिक्षा, वेदाध्ययन की शुरुआत, उपनयन संस्कार से हो जाती थी। महर्षि हारीत कृत मित्रोदय–संस्कार प्रकाश में अध्ययन में रत कन्याओं के दो वर्ग थे– (1) ब्रह्मवादिनी और (2) सद्योद्वाहा।[6]

ब्रह्मवादिनी छात्राएं, जीवनपर्यंत अध्यात्म तथा दर्शन शास्त्र का अध्ययन करती थीं। सद्योद्वाहा, विवाह पूर्व तक अध्ययन करती थीं।

प्रत्येक कन्या के लिए शिक्षा की अनिवार्यता समाज को परिपक्व राष्ट्र बनाने के लिए थी। स्त्री समाज की धुरी थी और उसका शिक्षित होना समाज के सर्वांगीण विकास के लिए परम आवश्यक था। बिना शिक्षित समाज के, समग्र राष्ट्र के निर्माण की व्यावहारिकता पर संदेह था। अतएव तत्कालीन समाज निर्माताओं और धर्म वेत्ताओं ने स्त्री को शिक्षा के लिए सबसे अधिक प्रोत्साहित किया और इसके लिए पर्याप्त व्यवस्थाएं भी कीं। प्रातः और संध्याकालीन वैदिक प्रार्थनाएं, स्त्री जीवन की दिनचर्या

का अनिवार्य भाग थीं। चूंकि कोई भी यज्ञ पत्नी के बिना पूर्ण नहीं माना जाता था, इसलिए पति के साथ मंत्रोच्चारण के लिए भी स्त्री का शिक्षित होना सहज ही अनिवार्यता बन गया। विवाह के योग्य बनने के लिए भी सुशिक्षित होना एक कसौटी थी। उस काल का सिद्धांत यही था–ब्रह्मचर्येण कन्या युवां विन्दते पतिम्। (ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर कन्या युवा पति को प्राप्त करती है।)[7]

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि सद्योद्वाहा मात्र विवाह पूर्व तक अध्ययन करती थीं, इसलिए वे वह धार्मिक ज्ञान के अतिरिक्त, वह समस्त ज्ञान भी प्राप्त करती थीं, जो उन्हें श्रेष्ठ और आदर्श गृहिणी बनाने में सहायता प्रदान करे, जबकि ब्रह्मवादिनी स्त्रियां अपना पूर्ण जीवन, ब्रह्म चिंतन में लगाती थीं। उनकी उच्चतर स्थिति का प्रमाण यह है कि वे वाद–विवाद और शास्त्रार्थ में पुरुषों के समकक्ष ही प्रभावी थीं।

उपनिषद् काल में अध्ययन कार्य में संलग्न स्त्रियों को उपाध्याया की उपाधि से सम्मानित किए जाने का वर्णन मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि इन स्त्रियों की शिक्षा विशेष रूप से व्यवस्थित की गई होगी। यही नहीं, इन उपाध्यायों द्वारा निश्चित ही कन्या शिक्षा का आयोजन भी किया जाता रहा होगा। अर्थशास्त्र रचियता 'चाणक्य' और कामसूत्र के रचियता 'वात्स्यायन' भी कन्याओं, बालिकाओं, गणिकाओं आदि को नृत्य एवं अन्य विषयों की शिक्षा का उल्लेख करते हैं।[8] स्त्रियों के शिक्षित होने के उल्लेख रामायण में भी मिल जाते हैं यथा– सीताजी नियमित रूप से संध्या करती थीं।[9] इसी तरह राम के राज्याभिषेक के समय कौशल्या द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ, अग्नि में आहुति डालने का वर्णन प्राप्त होता है।इसके अतिरिक्त महाभारत के शान्ति पर्व में 12वां सम्पूर्ण अध्याय ही स्त्री (सुलभा) की दार्शनिक विषय में विद्वता का परिचायक हैं। जिसमें सुलभा द्वारा योग, समाधि, मोक्ष जैसे गुढ़ विषयों पर राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ हुआ और वाणी की विशेषता बताते हुये मोक्ष की दीक्षा प्राप्त की।[10]

मीमांसा, दर्शन जैसे जटिल एवम् गूढ़ विषय भी स्त्रियों की शैक्षणिक उपलब्धियों के विषय रहे। राजा जनक की सभा में गार्गी ने दर्शनशास्त्र के कई गूढ़ विषयों पर याज्ञवलक्य से प्रश्न किए थे। राजा जनक के नवरत्नों में से एक, गार्गी ने वेदों के मंत्रों की रचना के साथ–साथ 'गार्गी संहिता' नामक पुस्तक भी लिखी। याज्ञवलक्य की पत्नी मैत्रेयी, विदुषी थीं। मंत्रों का स्पष्ट और मधुर उच्चारण करने के कारण, कुशध्वज की पुत्री का नाम ही वेदवती रखा गया था।[11] स्पष्ट है कि सामाजिक व धार्मिक आधार पर स्त्रियों को शिक्षा का पूर्ण अधिकार था।

यद्यपि, धार्मिक ग्रंथों में अधिकांशतः उच्च कुल की स्त्रियों की शिक्षा, और वह भी धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा के संबंध में ही ज्यादा वर्णन मिलता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उस काल में व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने का कोई प्रबंध नहीं था। व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत, गृहविज्ञान विषय का विशेष महत्त्व था। प्रत्येक स्त्री से गृहकार्य की संपूर्ण जानकारी और अपेक्षित ज्ञान की कामना की जाती थी। यह कामना राजपरिवार से लेकर निम्न–वर्गीय परिवारों की स्त्री से भी एक समान रूप से की जाती थी। पुष्पों की मालाएं बनाना, सौंदर्य प्रसाधन विकसित करना, केश विन्यास एवम् साज–सज्जा संबंधी आदि कार्य, स्त्रियों को सामान्यतया आते थे। वात्स्यायन के काल तक आते–आते कन्याओं को पूर्ण रूपेण व्यावहारिक बनने की प्रेरणा का बोलबाला हो गया।

यह सत्य है कि राज परिवारों में खाना बनाने से लेकर अन्य अधिकांश कार्य दासियां ही करती थीं। राजकुल की दासियों के संबंध में उनका 64 विद्याओं में विशारद[12] होने का वर्णन भी उपलब्ध है। दासियों के पास सभी प्रकार की राजनीतिक और व्यावहारिक नीतियों की पूर्ण जानकारी और उसके प्रयोग की कुशलता थी। राजकुल की स्त्रियां भी पाककला या अन्य कार्यों में दक्ष होती थीं। शास्त्रों और महाकाव्यों में अतिथि–सेवा का स्थान–स्थान पर वर्णन मिलता है। अधिकांश अवसरों पर, अतिथि सेवा राजकुल की स्त्रियों का दायित्व होता था। रामायण में सीता द्वारा

पंचवटी में ब्राह्मण अतिथि वेषधारी रावण को फल कन्दमूल आदि प्रदान करने का वर्णन मिलता है।[13]

इसके अतिरक्त शास्त्र विद्या के साथ, शस्त्र विद्या भी स्त्रियों की शिक्षा का एक अंग रहा होगा, भले ही इसके कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलते। परंतु वैदिक संहिताओं के विशद विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय भी विपत्ति पड़ने पर, रथ संचालन से लेकर युद्ध प्रबंधन तक कार्य करने में स्त्रियां सक्षम थीं। ऋग्वेद के दशम मंडल के 102 वें सूक्त में इस दिशा में उल्लेख है। वस्तुतः महर्षि मुद्गल के गोधन का अपहरण हो गया था। इसके पश्चात् उनकी सहधर्मिणी मुद्गलानी ने रथ रोहण कर, युद्धभूमि में प्रस्थान किया। परिणास्वरूप, मुद्गलानी के साहस और कर्मभूमि में पराक्रम भाव से, गोधन की पुनः प्राप्ति हो गई।[14]

इसी तरह रामायण काल में देव–दानव युद्ध में दशरथ के साथ युद्धभूमि में कैकेयी का होना, इस बात की पुष्टि करता है कि उस काल में स्त्रियों को शस्त्र शिक्षा भी दी जाती थी। उल्लेखनीय है कि उस युद्ध में कैकेयी रथ संचालन कर, घायल दशरथ के प्राण बचाती है। वर्णन मिलता है कि रथ संचालन में कैकेयी बेजोड़ थी। उस काल में युद्ध की विभीषिका में पति की सहायता करना अथवा घायलावस्था पति की परिचर्या करना, स्त्री के कर्तव्यों में सर्वोपरि था।[15]

स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियां शिक्षित होती थीं। उन्हें न केवल धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान होता था, अपितु व्यावहारिक और राजनीतिक ज्ञान भी होता था।

विवाह का अधिकार

धर्मशास्त्रों ने मनुष्य जीवन को चार भागों –ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास– में विभक्त किया। इन्हें आश्रम कहा गया। इनमें गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ माना गया। ब्रह्मचर्य के बाद युवक–युवती विवाह कर, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं और परिवार का विस्तार करते हैं। मनुष्य के जीवन को सोलह संस्कारों अर्थात् षोडश

संस्कारों में, क्रमबद्ध रूप से बांटा गया है। इनमें गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अंत्येष्टि हैं। इन संस्कारों में विवाह को सर्वाधिक प्रधानता दी गई है।

वस्तुतः प्रारंभ से ही विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता रहा है। 'भारतीय विवाह विज्ञान' में पति–पत्नी के संबंध को जन्म–जन्मांतर तक स्थायी बनाने के उद्देश्य से ही जल और अग्नि को साक्षी मानकर संकल्प लिया जाता था।[16]

विवाह को सांस्कृतिक रूप से यज्ञ माना गया है। हिन्दू धारणा में अकेले व्यक्ति का जीवन एकांगी है, वह पूर्ण तभी होता है जब उसे पत्नी का सहयोग प्राप्त हो जाये।[17]

समाज में तीन ऋणों के सिद्धांत को ज्यों–ज्यों बल मिलता गया, त्यों–त्यों विवाह संस्कार को और अधिक मान्यता एवं पवित्रता प्राप्त हुई। ये तीन ऋण, मूलतः व्यक्ति की सामाजिकता और समाज की अनिवार्यता को बनाए रखने के लिए, नीति–निर्देशक सिद्धांत थे। इससे अतिरिक्त इनकी आध्यात्मिक भूमिका भी थी। जिस प्रकार व्यक्ति वृद्धावस्था में अपनी माता को उचित ढंग से आश्रय देकर, उसकी सेवा–सुश्रुषा नहीं कर पाता, तो उसका मातृ–ऋण से मुक्त होना संभव नहीं था। गुरु के ज्ञानके लिए सही दक्षिणा, उनके सिखाए मार्ग पर चलने के संस्कार सेजुड़ी थी। इसका उल्लंघन व्यक्ति की असफलता का साफ सूचक था। और सबसे बढ़कर था पितृ–ऋण क्योंकि विवाह के अभाव में व्यक्ति को पुत्र की प्राप्ति नहीं होती, तो वह पितर की अवस्था प्राप्त करने पर मुक्त नहीं हो सकता था।

मनु स्मृति में आठ तरह के विवाहों– ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच का उल्लेख मिलता है।[18] पहले चार प्रकार के विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य शास्त्रसम्मत माने गये हैं और इनकी प्रशंसा की गई है, जबकि असुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच विवाहों की निंदा की गई है।

ब्राह्म विवाह में कन्या का विवाह वैदिक रीति से किया जाता था। वधु का पिता रीति–रिवाजों के साथ वस्त्र–आभूषणों से अलंकृत कन्या, वर को प्रदान करता था।

दैव विवाह में ऋत्विक को उपहार स्वरूप कन्या दान में दी जाती थी। देवताओं के लिए किए जाने वाले वैदिक यज्ञ को जो पुरोहित विधिपूर्वक संपन्न करा देता था, उसके साथ कन्या का विवाह करा दिया जाता था। इसलिए इस विवाह को दैव विवाह कहा गया।[19]

आर्ष विवाह में कन्या का पिता कन्यादान, वरपक्ष से एक जोड़ी गायें लेकर करता था। वरपक्ष से मिले उपहार को कन्या का पिता यज्ञीय कार्यों में इस्तेमाल करता था।

प्राजापत्य विवाह में वर–वधु को, "तुम दोनों मिलकर गृहस्थाश्रम का पालन करो," संबोधन के साथ कन्या, वर को दी जाती थी।[20]

आसुर विवाह में कन्या पक्ष धन लेकर कन्यादान करता था। गान्धर्व विवाह मात्र स्त्री–पुरुष की सम्मति से संपन्न हो जाता था। कन्या का अपहरण कर, होने वाला विवाह राक्षस विवाह कहलाता था। हालांकि कालांतर में कन्या–हरण को क्षात्र–धर्म भी कहा गया। सभी प्रकार के विवाहों में पैशाच विवाह को सबसे निन्दनीय और बर्बर माना गया है।

इन सभी विवाहों में ब्राह्म विवाह सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'यह विवाह कन्या के व्यस्क हो जाने पर ही किया जाता था। कन्या के पिता द्वारा प्रदत्त उपहार, मात्र एक औपचारिकता था, न कि कोई बाध्यता। स्मृति ग्रन्थ इस विवाह की अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। यह स्वेच्छा एवं बिना किसी दबाव के संपन्न होता था। भारत में आज भी यही सर्वाधिक प्रचलित विवाह प्रकार है।[21]

वैदिक काल में स्त्री–पुरुष दोनों को अपना जीवन–साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि युवती को अपना मनोनुकूल वर चयन की पूर्ण स्वतंत्रता थी।

ऋग्वैदिक काल में स्वयंवर होते थे, जिसमें कन्या अपना वर स्वयं चुनती थी। 'स्वयंवर की तीन विधियां प्रचलित थीं– (1)इच्छा स्वयंवर, (2) प्रण स्वयंवर और (3) शौर्य स्वयंवर। इन स्वयंवरों का आयोजन, प्रायः क्षत्रिय राजाओं के लिए होता था। इच्छा स्वयंवर में कन्या, आमंत्रित राजकुमारों में से अपनी इच्छानुसार एक का चयन करती थी। प्रण स्वयंवर में किसी प्रकार की प्रतिज्ञा रखी जाती थी। जैसे रामायण काल में राजा जनक ने अपनी कन्या के लिए यह प्रतिज्ञा की थी कि जो शिव धनुष को भंग करेगा, उसी से सीता का विवाह किया जाएगा। तीसरे प्रकार का स्वयंवर केवल शूरवीरों के लिए होता था।[22]

स्पष्ट है कि वैदिक काल में कन्या अपनी इच्छानुसार अपने पति का चयन करने के लिए स्वतंत्र थी। अन्यथा, माता–पिता द्वारा किसी योग्य वर को ढूंढने की अवस्था में कन्या की सहमति भी प्राप्त करना अहम विषय था। उस काल में स्त्री, विवाह संबंधी अधिकारों के संदर्भ में अधिक उन्नत स्थिति में थी।

विवाह के पश्चात्, पति के घर में उसके कर्तव्यों का वर्णन बहुतायत में है। पति के घर में उसकी स्थिति सम्मानजनक थी। ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है–साम्राज्ञी श्वशुरेभव...।[23]अर्थात्, पत्नी के रूप में स्त्री, श्वसुर कुल में रानी की तरह सम्मानित थी और घर के लोगों पर राज करती थी। स्त्री को पति के अलावा श्वसुर कुल के सभी सदस्यों का ध्यान रखना होता था। उनकी सेवा–सुश्रुषा उसका प्राथमिक कर्त्तव्य था। अतिथि का आदर–सत्कार भी स्त्री का परम कर्त्तव्य मामाना गया।

हालांकि वैदिक काल में एक पत्नी–विवाह को ही आदर्श माना गया, किन्तु उस युग में बहु–पत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। यद्यपि पति के घर में स्त्री को पूर्ण

सम्मान प्राप्त होता था, तथापि बुह–पत्नीत्व प्रथा के कारण, उसे उपेक्षा भी सहन करनी पड़ती थी। अधिकांशतः बहु–पत्नी की प्रथा राजकुलों या संपन्न परिवारों तक ही सीमित थी। सामान्य परिवारों में स्त्री एक पत्नी के रूप में ही स्वीकार्य थी। सभी सामाजिक मर्यादाओं के निर्वाह के लिए, एकल–पत्नी को निम्न और मध्यम–वर्गीय परिवारों में मान–सम्मान भी मिलता था और निर्णयों में उसकी अहम् भूमिका होती थी। परन्तु बहु–पत्नी प्रथा के प्रचलित होने के कारण धनाढ्य घर की स्त्रियों के आपसी मतभेद से परिवार में सद्भावना को आघात पहुंचता था और समाज में द्वेष का वातावरण बनता था। ऋग्वेद में सौत के द्वारा सौत को निर्बल करने या उसे अधीनस्थ करने का मंत्र भी मिलता है। शची पौलोमी, जो कि ऋग्वेद के दसवें मंडल की 159 सूक्त की रचयिता हैं, ने सपत्नियों (सौत) को पराभूत करने के लिए और पति को वश में करने के लिए विभिन्न प्रकार के अनुष्ठान और यज्ञ किए थे।[24]

पुत्र–प्राप्ति विवाह का प्रमुख प्रयोजन माना गया है। वस्तुतः सन्तान विहीन स्त्री और पुरुष, दोनों को धर्मग्रंथों में अपूर्ण माना गया है।

मातृत्व को स्त्री जीवन की सार्थकता माना गया है। मातृत्व के लिए स्त्रियों द्वारा तप, पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों का बहुत वर्णन मिलता है। संतान के लालन–पालन का दायित्व, यूं तो माता–पिता दोनों का है, लेकिन मुख्य रूप से माता ही बच्चे का लालन–पालन करती थी। वस्तुतः, स्त्री प्रारंभ से ही वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मानी गई है। संतान की हर आवश्यकता को पूरा करना, माता अपना कर्त्तव्य समझती है। संतान की देख–रेख के लिए, माता अपने समस्त कष्ट भुला देती है। माता संतान की मात्र माता ही नहीं, पहली गुरु भी है। संभवतः यही कारण है कि 'दस उपाध्यायों से आचार्य का, सौ आचार्यों से पिता का और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक माना जाता है।[25]

सन्तान प्राप्ति स्त्री का अधिकार था। ऋतुकाल में (जब गर्भधारण की सर्वाधिक सम्भावना होती है) पति के लिए पत्नी से संसर्ग आवश्यक कहा गया है। यह पत्नी

का अधिकार है। दिलीप इसी कारण जल्दबाजी में सुदक्षिणा के पास जा रहे थे और कामधेनु पर ध्यान नहीं दे पाए जिस कारण उन्हें निःसन्तान रहने का शाप दे दिया। इस अधिकार की पूर्ति हेतु नियोग जैसी प्रथा भी स्वीकृत थी। नियोग शब्द का अर्थ है "किसी निःसन्तान पत्नी या विधवा नारी का परिवार के बुजुर्ग पुरुष द्वारा निर्धारित पुरुष के साथ संयोग सम्बन्धी सम्पर्क।" आपस्तम्ब धर्म सूत्र में नियोग प्रथा का समर्थन करते हुए कहा है– स्त्री कुल के लिये दी जाती थी अतः यदि किसी कारणवश संतति उत्पन्न करने में परिवार का सदस्य सक्षम नहीं था तो स्त्री को अधिकार था कि वह सन्तति लाभ हेतु परपुरुष से संयोग कर सकती थी।[26]

मनु ने भी कहा है कि संतान न होने पर स्त्री देवर या अन्य सपिंड पुरूष से संतान प्राप्त कर सकती है।[27]

इसी प्रकार कौटिल्य ने लिखा है कि वृद्ध व उपचार न किए जाने वाले रोग से पीड़ित राजा को चाहिए कि वह अपनी रानी को नियुक्त कर किसी मातृबन्धु या अपने ही समान गुण वाले सामंत द्वारा पुत्र उत्पन्न कराये।[28]

कौटिल्य ने पूर्ण बताया है कि यदि कोई ब्राह्मण बिना सन्निकट उतराधिकारी के मर जाये तो किसी सगोत्र या मातृबन्धु को नियोजित कर क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न करना चाहिए। ऐसा पुत्र रिक्थ (पैतृक सम्पत्ति) का उत्तराधिकारी बनता है।[29]

नियोग प्रथा का सर्वप्रसिद्ध उदाहरण महाभारत का है। महाभारत में सत्यवती ने भीष्म को उसके छोटे भाई विचित्रवीर्य (जो मर चुका था) के लिए उनकी रानियों से पुत्र उत्पन्न करने के लिये उद्वेलित किया।[30]

किन्तु भीष्म ने यह सब करने से इन्कार कर दिया। अन्त में सत्यवती ने अपने पुत्र 'व्यास' को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। इसके कारण धृतराष्ट्र, पाण्डु व विदुर ये तीनों ही नियोग प्रथा से उत्पन्न हुए।[31] अतः कहा जा सकता है कि पति से या अन्य से संतान प्राप्ति स्त्री का अधिकार था।

विधवा स्त्री के अधिकार

पति की मृत्यु के बाद, स्त्री का जीवन वैदिक काल में भी अनेक नियमों से बंधा हुआ था, लेकिन अच्छी बात यह थी कि उसे कई अधिकार प्राप्त थे। पति की मृत्यु के बाद सती होने के कुछ वर्णन मिलते हैं, लेकिन सती होना अनिवार्य नहीं था। महाभारत काल में पाण्डु की पत्नी माद्री स्वेच्छा से सती हुई थी।[32]

पति की मृत्यु के बाद, स्त्री के पुनर्विवाह के संबंध में अलग–अलग उल्लेख मिलते हैं। कहीं तो पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया गया है, तो कहीं उसकी निंदा की गई है। वैदिक काल में विधवाओं के पुनर्विवाह की पुष्टि, अथर्ववेद में वर्णित मंत्र से हो जाती है। वैसे, विधवा स्त्री की देखभाल का दायित्व उसके पुत्रों का होता था। इसके अतिरिक्त संतानहीन विधवा के समक्ष, संतान पाने के लिए 'नियोग' का विकल्प था। सध्वा स्त्री भी नियोग के जरिए संतान प्राप्त कर सकती थी। नियोग की प्राथमिक मर्यादा यही थी कि वयोवृद्ध पारिवारिक सदस्यों के द्वारा, जिस भी व्यक्ति के संग स्त्री को संतान प्राप्ति के लिए संबंध बनाने की अनुमति मिलती थी, वह उसी से केवल उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही संबंध बनाती थी। इस नियोग प्रथा में कामना और वासना का स्थान नहीं था।

सम्मान का अधिकार

स्त्री को भले ही इस युग में अपने सम्मान के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, किन्तु वैदिक काल में स्त्री की स्थिति सम्मानीय थी। घर और बाहर, सभी स्थानों पर स्त्री का प्रभुत्व था। स्त्री को माता, गुरु–पत्नी, कन्या, पत्नी अलग–अलग रूपों में सम्मान और आदर दिया जाता था। पितृसत्तात्मक समाज होने के उपरांत भी पिता के घर में कन्या और पुत्र में कोई भेद नहीं किया जाता था। कन्यादान का बेहद महत्त्व था, इसलिए परिवार में कन्या का जन्म लेना महत्त्वपूर्ण माना जाता था। योग्य और प्रतिभाशाली कन्या हेतु, यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठान आदि का वर्णन भी मिलता है। राजा अश्वपति और राजा रैम्य को यज्ञ के पश्चात्, कन्या रत्न की प्राप्ति हुई थी।

यद्यपि परिवारों में पुत्र की आकांक्षा बलवती रहती थी, किन्तु कन्या का जन्म लेना शुभ ही माना जाता था और उसे कुलभूषण के रूप में माना जाता था।[33] पिता पुत्र के समान पुत्री के सुख तथा कल्याण की भी कामना करता था।[34] अयोग्य पुत्र की अपेक्षा योग्य कन्या का जन्म माता–पिता अधिक श्रेयस्कर मानते थे।[35]

कन्या–वध पाप समझा जाता था। उस काल में कन्याओं को गोद लेना इस बात की पुष्टि करता है कि घर में कन्या का होना कितना शुभ माना जाता है। महाभारत काल में राजा कुंतीभोज ने राजा शूरसेन की पुत्री (कुंती) को गोद लिया था और अपने पुत्र के समान ही उसका लालन–पालन किया था। सीता धरती से उत्पन्न हुई थीं, लेकिन राजा जनक ने पूरे स्नेह के साथ उनका लालन–पालन किया।श्वसुर कुल में भी स्त्री को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी वर्णित किया गया है। वैदिक काल में पत्नी के रूप में नारी महारानी के समान थी।

साम्राज्ञी श्वशुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु।।[36]

नारी की स्थिति के संदर्भ में यह टिप्पणी उल्लेखनीय है– 'उस समय नारी को किस रूप में देखा जाता था और कितना बड़ा विश्वास था नारी पर। यहां एक ऐसे समाज की कल्पना की गई है, जहां नारी का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण था और वह घर की महारानी मानी जाती थी। फलतः उसी का प्रभाव है कि आज भी समाज में लोग घर की वधू को 'बहूरानी' कहकर संबोधित करते हैं। इस उपाधि की रक्षा हेतु 'गृहिणी' को आचार–संहिता का पालन करना पड़ता था और उसकी दृष्टि में घर का प्रत्येक सदस्य, अपनी योग्यता के अनुसार आदर का भाजन था। इसकी पुष्टि काठक–संहिता (31/1) में, ऋक् संहिता (3/53/4) में 'जायेदस्तं मध्वन्सेदुः योनिः' अर्थात् पत्नी ही घर है और विश्राम स्थल है, कहकर की गई है।[37]

वस्तुतः पति के हर कदम में पत्नी का साथ होना बेहद आवश्यक है। यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्णता के लिए पत्नी का साथ होना अनिवार्य है। परिवार प्रमुख, भले ही पुरुष हो, किन्तु गृहस्वामिनी तो स्त्री ही मानी गई। निस्संदेह स्त्री के लिए यह गौरव की बात है। महाभारत में पत्नी को पति का सच्चा मित्र बताया गया है–

भार्याश्रेष्ठतमः सखा, सखायं विहितां देवैः।
पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या देवकृतः सखा।।[38]

महाभारत में ही, माता के रूप में स्त्री को श्रेष्ठ गुरू बताया है।[39] महाभारत में ही कन्याओं के लिए सुवचन भी कहें हैं। [40] तथा स्त्रियों को समृद्धि की देवी के रूप में वर्णित किया गया है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है –

यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रेतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[41]

अर्थात् जहां स्त्रियों की पूजा होती है, देवता वहीं रमण करते हैं और जहां स्त्रियों के मान–सम्मान का ध्यान नहीं रखा जाता, वहां समस्त कार्य निष्फल हो जाते हैं।

शास्त्रों में स्त्री को प्रारंभ से घर की लक्ष्मी माना गया है। वेदों में स्त्री को यज्ञीय, अर्थात यज्ञ के समान पूज्यनीया, भी बताया गया है। यहीं नहीं, वेदों में नारी की महत्ता को दर्शाने के लिए उसे कई अलंकरणों से सुशोभित किया गया। इनमें नारी को ज्ञान देने वाली, विशेष तेज वाली, देवी, सुख–समृद्धि लाने वाली, विद्या की दाता और सबको जाग्रत करने वाली, जैसे संबोधन सम्मिलित हैं।

स्त्री को शक्ति के रूप में मानकर, उनकी पूजा की गई। देवताओं से भी अधिक शक्तिशाली, देवियों को माना गया। देवी काली को रौद्र शक्ति के रूप में, देवी दुर्गा को रचनात्मक शक्ति, देवी लक्ष्मी को पोषण और देवी सरस्वती को सृजनात्मक शक्ति के रूप में पूज्यनीय माना गया। वेदों में अग्निदेव और पतिव्रता स्त्री को एक समान गरिमा देते हुए, पूजने योग्य बताया गया।

अथर्ववेद में पति की ओर से पत्नी की सम्मानीय स्थिति को पुष्ट करते हुए कई ऋचाओं का वर्णन किया गया हैं। इन ऋचाओं का सार यही है कि अश्विनी कुमार, इन्द्र, अग्नि, वरूण, आकाश, पृथ्वी आदि नारी को संतति आदि से समृद्ध करें।[42]

वैदिक साहित्य में पति को घर का सम्राट और पत्नी को साम्राज्ञी कहकर संबोधित किया गया है। पत्नी के वर्णन में उसे साम्राज्ञी, महिषी आदि सम्मानजनक शब्दों से संबोधित किया गया है। अथर्ववेद में स्पष्ट उल्लेख है कि ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा ही श्रेष्ठ जाया (स्त्री) की प्राप्ति संभव है।[43]इसके साथ अथर्ववेद में यह भी कहा गया है कि जहां नारियों का अपमान होता है, वहां विपत्तियां अपना साम्राज्य स्थापित कर लेती हैं और अंत में नारी (जाया) का अपमान, जगत के विनाश का कारण बन जाता है।[44]

महाकाव्य काल तक आते–आते स्त्री की सम्मानीय स्थिति अपने शिखर पर पहुंच गई। इसका प्रमाण महाभारत के एक प्रमुख पात्र और हस्तिनापुर के राजकुल के प्रसिद्ध व्यक्तित्व, भीष्म को उनकी मां गंगा के नाम से गंगा–पुत्र भीष्म कहकर संबोधित किया जाने लगा। उसी काल खंड में, विश्व प्रसिद्ध धनुर्धर अर्जुन को उनकी माता कुंती के नाम से कौन्तेय और पार्थ पुकारा जाने लगा। उनके समकालीन दानवीर कर्ण को उनकी पालक माता, राधा के नाम से राधेय कहा जाने लगा। स्थिति यहां तक पहुंची कि देव और भगवान के नामों के आगे, उनसे जुड़ी स्त्री शक्तियों के संबोधन प्राथमिकता पाने लगे। उदाहरणार्थ– राधेश्याम, सीताराम।

पैतृक संपत्ति अथवा दाय संबंधित अधिकार

उत्तराधिकारी के रूप में कन्या को पिता की पैतृक संपत्ति का भाग देने के संबंध में अलग–अलग कालखंडों में विभिन्न स्थितियां रही हैं।

प्रथम अवस्था में, जिसे वैदिक युग से चौथी शती ई.पू. तक के कालखंड के रूप में लिया जाता है, इस कालखंड में कन्या की सामान्य रूप से दायादों[45]में गणना

नहीं की जाती थी। किंतु उस कालखंड में भी यास्क सरीखे बुद्धिजीवियों और शास्त्रकारों ने कन्या की विशेष स्थितियों–यथा अविवाहिता और अभ्रातृमती कन्याओं को पिता की पैतृक संपत्ति में उत्तराधिकारिणी बनाने का पक्ष लिया है।

वैदिक युग में, कन्याओं को भाई होने की अवस्था में पैतृक संपत्ति प्राप्त करने का अधिकार सुलभ नहीं था। ऋग्वेद में इस दिशा में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि औरस पुत्र अपनी बहन को पैतृक संपत्ति प्रदान नहीं करता।[46] वस्तुतः वैदिककालीन समाज में पुरुष प्रधान सत्ता थी। इस कालखंड में स्त्री का सम्मान अवश्य था, परंतु धन प्राप्त करने संबंधी आर्थिक अधिकारों की दृष्टि से उसकी स्थिति हीन थी।

मूलतः कन्या की पिंडदान में कोई भूमिका न होने से भी उसे उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता न मिलना स्वाभाविक था। ऋग्वेद की एक ऋचा इस स्थिति को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है, 'यद्यपि माता–पिता स्त्री और पुरुष संतान को उत्पन्न करते हैं तथापि उनमें से एक शोभनकर्मों का कर्ता होती है और दूसरी केवल वस्त्राभूषण द्वारा समृद्ध होती है।' सायण ने अपने भाष्य में इस कारण की स्पष्ट विवेचना भी की है।[47]कुल मिलाकर, वैदिक काल में पुत्री का दायाद न होना अर्थात पैतृक संपत्ति में हिस्सेदार न होने का कारण उसका पिण्डदान करने में असमर्थता से सीधे–सीधे संबद्ध है।

अभ्रातृमती कन्या की दायाद के रूप में स्वीकृति

भ्राता के अभाव में कन्या को दायाद मानने के पीछे मूल कारण यही है कि इस अवस्था में कन्या अपने पुत्र द्वारा पिता का पिण्डदान करती थी। इस महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक–आध्यात्मिक दायित्त्व के निर्वहन से वह पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारिणी स्वीकृत थी। ऋग्वेद में इस दिशा में उल्लेख है।[48]

अविवाहित कन्या को दायाधिकार

अविवाहिता द्वारा पिता की संपत्ति से अपना भाग प्राप्त करने का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है।[49]वैदिक युग में स्त्री शिक्षा की उच्च स्थितियों के फलस्वरूप कई अवस्थाओं में कन्याएं अविवाहित रहती थीं। आजीवन अविवाहित कन्याओं को दहेज तथा पति से मिलने वाला धन प्राप्त नहीं होता था, अतः पिता की संपत्ति में उनके द्वारा अपना अंश (संपत्ति भाग) प्राप्त करना स्वाभाविक था।

कौटिल्य द्वारा कन्या को दायाद बनाने का समर्थन

कन्या को पैतृक संपत्ति में अधिकार दिलाने का श्रेय अर्थशास्त्री कौटिल्य को जाता है। कौटिल्य के मतानुसार, 'अपुत्र मृत व्यक्ति के द्रव्य को सगे तथा इकट्ठे रहने वाले भाई और कन्याएं प्राप्त करे, पुत्रों वाले व्यक्ति की संपत्ति के अधिकारी धर्म विवाहों में उत्पन्न पुत्र तथा पुत्रियां बनें।'[50]

मनु आदि अनेक शास्त्रकारों का मत

मनु ने कन्या को दायाद बनाने के संबंध में परस्पर विरोधी व्यवस्थाएं दीं। मनु ने एक ओर कहा, 'जैसी अपनी आत्मा होती है, वैसा ही पुत्र होता है, पुत्री पुत्र तुल्य होती है, उसके रूप में अपनी आत्मा जीवित रहती है, उसके जीवित रहते कोई दूसरा धन कैसे ले सकता है।'[51] इससे ध्वनित होता है कि मनु कन्या को दायाद मानते हैं। परंतु मनु इससे विपरीत व्यवस्था भी देते हैं। अपुत्र व्यक्ति के निधन की अवस्था में उसके पिता या भाइयों को ही अपुत्र व्यक्ति की संपत्ति का रिक्थहर बताया गया है।[52] तथापि मनु ने उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कन्याओं को संपत्ति में भाइयों द्वारा अपने–अपने अंश में से चतुर्थ भाग देने का एक नियम स्थापित किया।[53]याज्ञवल्क्य ने भी अधिक स्पष्टता व्यक्त करते हुए इस नियम की पुष्टि की है।[54] कात्यायन भी मनु और याज्ञवल्क्य द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था का अनुसरण करना उचित मानते हैं।[55]

स्त्रीधन पर कन्या का अधिकार

हिन्दू व्यवस्थाकारों ने स्त्री को चल संपत्ति में पूर्ण अधिकार प्रदान किया। इसमें बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण एवं श्रृंगार की अन्य दुर्लभ सामग्रियां सम्मिलित है। चल संपत्ति के अंतर्गत सभी वस्तुओं को 'स्त्रीधन' की सामान्य संज्ञा दी गई। कौटिल्य के अनुसार स्त्रीधन के दो रूप होते हैं– प्रथम– वृत्ति द्वितीय– अबाध्य।[56]

प्रथम– वृत्ति। इसमें जीवन निर्वाह के साधन, भू–संपत्ति तथा नकद धन होता था। इस धन को उस काल की इकाई के अनुसार दो हजार कार्षापण के रूप में स्वीकृत किया गया।

द्वितीय– अबाध्य। इसमें देह पर धारण किये जाने वाले आभूषणों को सम्मिलित किया गया है। इसकी कोई निश्चित सीमा निर्धारित नहीं की गई।

इसके अतिरिक्त, कुछ विचारकों के मतानुसार, स्त्रीधन के दो रूप थे–पहला, सौदायिक संपत्ति और दूसरा पति द्वारा नियंत्रित संपत्ति।

कात्यायन के अनुसार सौदायिक संपत्ति से अर्थ ऐसी संपत्ति से है जिस पर स्त्री का पूर्ण प्रभुत्व होता है। इसके अंतर्गत, विवाह काल में माता–पिता द्वारा प्रदत्त और विवाह के पश्चात पति की संपत्ति आती थी ।[57]

दूसरा रूप, पति द्वारा निंयत्रित संपत्ति का बताया गया है। इसमें वह संपत्ति सम्मिलित है जिसके उपभोग के लिए पत्नी को पूर्ण स्वतंत्रता थी। परंतु, इस संपत्ति को वह अपनी स्वेच्छा से न तो दान कर सकती थी और न ही बेच सकती थी। इस संपत्ति पर मूलतः उसके पति का नियंत्रण माना जाता था। स्त्री इस कार्य को करने पर दंड की अधिकारी मानी जाती थी।

आचार्य मनु के अनुसार स्त्रीधन के छह रूप हैं।[58]

1. अध्यग्नि–विवाह के अवसर पर अग्नि के समक्ष दिया जाने वाला धन अध्यग्नि कहलाता हैं।

2. अध्यावहनिक–पितागृह से पतिगृह ले जाते समय स्त्री को दिया जाने वाला धन।
3. .प्रीतिदत्त–वधू ससुराल में जाकर जब सास–श्वसुर के चरण–स्पर्श करती थी। उस समय वे उसे प्रीतिपूर्वक धन देते थे। वह प्रीतिदत्त कहलाता था।
4. माता द्वारा दिया हुआ धन।
5. पिता द्वारा दिया गया धन।
6. भाई का दिया हुआ धन।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी छह प्रकार के स्त्रीधन बताए हैं। उनमें से मुख्य तीन स्त्रीधनों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं।[59]

1. आधिवेदनिक–पति द्वारा दूसरा विवाह करने पर पहली पत्नी को दिया गया धन आधिवेदनिक कहलाता हैं।
2. बन्धुदत्त– कन्या के माता–पिता तथा सम्बन्धियों द्वारा दिया जाने वाला धन।
3. शुल्क– कन्या को विवाह में प्राप्त करने के लिए दी गई राशि इसके अन्तर्गत आती है।

आचार्य मनु ने अन्वाधेय स्त्रीधन के विषय में भी बताया है।

यथा– अन्वाधेय–विवाह के पश्चात पति कुल और पितृ कुल से मिला धन इसके अन्तर्गत आता था साथ ही विवाह के समय आगन्तुकों द्वारा प्रदत्त भेंट भी इसके अन्तर्गत मानी जाती थी।[60] और स्मृतिकारों में कात्यायन ने 26 श्लोकों में स्त्रीधन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वैदिक युग में विधवाओं को सांपत्तिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। कौटिल्य के समय में तो विधवा स्त्री को राजा की दया पर निर्भर रहना पड़ता था। स्त्रीधन के उत्तराधिकारी के रूप में सर्वप्रथम स्थान कन्या को दिया गया है।[61]कन्या के अभाव में यह धन पुत्रों के अधिकार क्षेत्र में दिया गया है।[62]पत्नी के निःसंतान निधन होने पर यह धन पति को प्राप्त करने की व्यवस्था थी।[63]

खण्ड (ख) : द्रौपदी के प्रतिकार की पृष्ठभूमि में स्त्रियों के अधिकार

द्रौपदी महाभारत की नायिका है। उसके प्रतिकार का कारण वो विषम स्थितियां हैं, जिसके द्वारा उसके मूल अधिकारों के साथ–साथ मानवाधिकारों को छीनने का कुत्सित प्रयास हुआ। संपूर्ण संसार के इतिहास में ऐसा कोई पात्र नहीं है, जैसी द्रौपदी थी। महाभारत में द्रौपदी के साथ जितना अन्याय और अपमान होता दिखता है, उतना दुस्सह्य, वैदिक काल से लेकर महाकाव्य काल तक की किसी अन्य स्त्री–पात्र के साथ नहीं हुआ। परंतु अन्याय की यह गाथा द्रौपदी के साहसपूर्ण संघर्ष की यशोगाथा भी है। द्रौपदी ने अपने साथ हुए अन्याय और अपने अधिकारों के हनन को पूर्ण राजनीतिक चेतना और संघर्षशील अभिव्यक्ति के माध्यम से उठाया। उसके चिंतन, कथन, उद्घोष और रुदन में मूल अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि वह तार्किक, लक्ष्यभेदी, व्यावहारिक और भविष्य सूचक हैं।

द्रौपदी कौरवों के हाथों हुए अपने अपमान का दंश झेलती नायिका के रूप में सामने आती है। महाराज द्रुपद की पुत्री, प्रतापी पांडवों की पत्नी, धृष्टद्युम्न सरीखे रणवीर की बहन और जगतपालक श्रीकृष्ण की सखी का परिचय पाकर भी द्रौपदी अपने संघर्ष में नितांत एकल है। सत्यरूप में तो द्रौपदी महाभारत की धुरी है। संपूर्ण महाभारत उसके व्यक्तित्व के व्यूहचक्र में गुंथा हुआ है। प्रतापी पांडवों के विराट चरित्र–युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के अतिरिक्त महासंकल्पवान भीष्म पितामह, महारथी द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, गुरूश्रेष्ठ कृपाचार्य, विद्वान नीति कुशल विदुर और गांधारी सरीखी श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्री – महाभारत के रूप में जगत के समस्त रूपचरित्रों की झांकी है। ऐसा कथन उपयुक्त दिखता है कि जो कुछ भी इस संसार में है, उसका दर्शन महाभारत में कर सकते हैं और जो कुछ महाभारत में है, उसका प्रमाण इस संसार में है। इस दृष्टिकोण से, मूलतः केंद्रीय पात्र होने के फलस्वरूप द्रौपदी उस काल की स्त्री की जिजीविषा, चरित्र गठन, संस्कार बोध, जीवन मूल्य और चिंतन शैली को प्रकाशित करती है, जोकि बहुमूल्य अध्ययन सामग्री है।

द्रौपदी एक प्रतीक है– उस कालखंड की स्त्री के अधिकारों और कर्त्तव्यों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में, द्रौपदी न केवल हस्तिनापुर की साम्राज्ञी के रूप में दृश्यपटल पर है, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में एक साधारण नारी की भूमिका में भी है, जो अपने असाधारण पतियों की खोई मान–प्रतिष्ठा, धन–संपदा और कर्त्तव्य–परायणता को जागृत करने का निमित्त बनती है। अपने पतियों के उत्साहवर्धन के लिए वो अपनी प्रचुर बुद्धि का उचित उपयोग करती है। उसे यह ज्ञात था कि भीम में उत्साह और जोश कूट–कूटकर भरा हुआ है। अतः इसी ज्ञान का उपयोग करते हुए वो भीमसेन को उत्साहवर्धक वचन कहती है। उसे पता था कि अन्तःकरण से भीमसेन कदापि नहीं चाहता था कि वो कौरवों के समक्ष घुटने टेके या अपने हक के लिए युद्ध न करे। किन्तु वो अपने बड़े भ्राता युधिष्ठिर की बातों का मान रखते हुए चुप था। किंतु जब द्रौपदी ने अपने वचनों द्वारा उसका उत्साह–वर्धन किया, तो उसे द्रौपदी के कहे सारे वचन अपनी रूचि के अनुकूल लगे। इन वचनों को सुनकर भीमसेन बड़े भाई (युधिष्ठिर) से उचित और वीररस युक्त बातें कहने लगे।[64]

पुरुष की असीमित शक्ति सत्ता के क्षीण होने पर स्त्री की प्रेरित करने की विराट भावना शक्ति, का ज्वलंत उदाहरण है द्रौपदी। प्रत्येक श्रेणी और स्तर पर सबसे अग्रणी माने जाने वाले पांडवों के नीतिनियामक सिद्धांतों के ध्वस्त होने पर कपट के जुए के हाथों पराजय को नियति मान बैठने वाले सर्वज्ञानी पांडुपुत्रों को जिस प्रकार द्रौपदी के वचन जागृत करते हैं, वह अद्‌भुत है। अपने वंश की लाज रखने के लिए, द्रौपदी ने प्रेमपूर्वक सब बातों का विचार करके, सबको आश्चर्य में डाल देने वाली जो बातें कहीं, वह बृहस्पति को भी विस्मित कर देने वाली थीं, ऐसी बातें बृहस्पति भी प्रयोग नहीं कर सकते।[65] एक पराजित स्त्री के प्रेरणा ज्ञान से दुर्योधन की सर्वशक्तिशाली दुर्जन सत्ता का पतन निश्चित ही स्त्री इतिहास का स्वर्णिम अध्याय है।

द्रौपदी प्रश्नों के ऐसे शस्त्र लिए खड़ी है, जिन्हें महाभारत का कोई भी पात्र झेलने के योग्य नहीं। वास्तव में, ये प्रश्न उस अग्नि से तपकर निकले हैं, जिससे

स्वयं द्रौपदी का जन्म हुआ था। द्रौपदी के शब्दों में जो अग्नि है, उसके रूप की एक झलक देखनी हो तो उसके स्वयंवर के दृश्य में झांकना पड़ेगा। स्वयंवर, राजसी स्त्रियों का वरण का अधिकार, उस समाज में स्त्री की उच्च स्थिति का द्योतक है। द्रौपदी ने स्वयंवर के मध्य में यह कहा – "नाहम वरयामि सूतम।" अर्थात् मैं एक सूतपूत्र का वरण नहीं करूंगी। द्रौपदी का यह संबोधन उस कर्ण सरीखे व्यक्तित्व को लेकर है, जिसे सूर्य का पुत्र और सूर्य के समान तेजस्वी माना जाता है। द्रौपदी का यह मुखर स्वभाव स्त्री सुलभ लज्जाशीलता को त्यागकर, कर्ण धनुर्धर के कलेजे को भेदने का कार्य करता है। मृत्युपर्यन्त, कर्ण इस उपालम्भ को नहीं भूलता और द्रौपदी को बाद में हस्तिनापुर की सभा में नग्न करने का निर्देश, दुःशासन को देने में भी सक्रिय भूमिका निभाता है। कर्ण अपने साथ हुए अपमानजनक व्यवहार की शत्रुता निकालने के लिए हस्तिनापुर की सभा में द्रौपदी को कुलटा कहकर दुर्योधन को उकसाता है। ये घटनाएं दर्शाती हैं कि द्रौपदी के कटाक्षों ने अपने कालखंड के अर्जुन के समतुल्य योद्धा को किस प्रकार मानसिक रूप से पराजित कर दिया था। वास्तव में, कर्ण की यही धृष्टता उसकी मृत्यु का कारण बनी। श्रीकृष्ण ने रथ का पहिया धंसने पर, नीचे उतरे कर्ण पर अर्जुन से बाण चलवाकर उसका अंत कर दिया। नीति की दुहाई देने वाले कर्ण को मारने से पूर्व श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के साथ उसके अनीतिपूर्ण व्यवहार को इंगित करते हुए उसे क्षमा करना अस्वीकार कर दिया था। इससे भी यह तथ्य पुष्ट होता है कि स्त्री के अपमान को स्वयं भगवान भी क्षमा योग्य नहीं मानते थें। स्त्री का **आत्मगौरव की सुरक्षा करने का अधिकार** भी इससे स्थापित होता है।

द्रौपदी अधिकार संपन्न पाण्डवों की रानी थी। पर पांडवों ने बुद्धिहीनता से सब खो दिया। श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर की संपत्ति का अनुमान इससे लगता है कि युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ किया था, तो उन्हें बहुमूल्य उपहार भेंट करने वाले राजाओं की पंक्ति मीलों लंबी थी। जिनमें अनगिनत सोने, हीरे और बहुमूल्य रत्नों के उपहार थे। उपहारों में असंख्य गज, ऊँट, गौ और भेड़ें भी थीं। विभिन्न प्रकार के हथियार, रथ,

वस्त्र, ऊन, फर के संग, अलग–अलग राजाओं ने बड़ी संख्या में दास भी महाराज युधिष्ठिर को भेंट किए थे और ये सब भी सोने से लदा–लद थे।

महाराज युधिष्ठिर के भाग्य की विडंबना या मति का विकार था कि वे अपना यह सारा वैभव और संपत्ति दुर्योधन के हाथों खो बैठे। अपना राजपाट भी वे हार गए। सबसे दुखद यह था कि वे अंततः अपने चारों प्रिय भाईयों को दुर्योधन की द्यूत–क्रीड़ा के कपट में हार गए। दुःख की पराकाष्ठा यह है कि वे स्वयं और पांडवों की पत्नी द्रौपदी को भी कौरवों के हाथों हार गए। पीड़ा का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि द्रौपदी को उन लोगों के अधीन दासत्व स्वीकार करना पड़ा, जिनके लिए संभवतः हस्तिनापुर के साम्राज्य को द्यूत–क्रीड़ा में जीतना अधिक हर्ष का विषय नहीं होता, जितना द्रौपदी को दासत्व की विषयवस्तु बनाना।

द्रौपदी के प्रति कौरवों की दुर्भावना को प्रमाणित करने के लिए घटनाक्रम साक्षी है। द्रौपदी को उसके अंतःपुर से बालों से घसीटकर उस सभाकक्ष में लाया गया, जहां उसके सारे पति, सभी कुरूवंश के वृद्ध सदस्य, कौरव शासित प्रदेशों के राजा और अन्य देशों से आए गणमान्य अतिथि उपस्थित थे। द्रौपदी उस समय रजःस्वला थी और विधान के अनुसार, उन्होंने केवल ऐसे वस्त्र धारण किए थे, जो उस समय के लिए उपयुक्त थे। द्रौपदी के उच्च संस्कार और बुद्धिमत्ता का प्रमाण ही इसे माना जाए कि इस स्थिति में भी सभा में बालों से घसीटकर ला रहे दुःशासन को रोककर, उन्होंनें सभासदों से कहा 'मुझे क्षमा करें! मैंनें अभी तक वह नहीं किया, जो मुझे सबसे पहले करना चाहिए था। मैं असहाय थी, मुझे अवसर नहीं मिला क्योंकि दुःशासन मुझे घसीटकर ला रहा था। अब मैं कुरुओं की इस सभा में सभी कुरुओं को अपना प्रणाम प्रस्तुत करती हूँ और कृपया इसे मेरी ओर से किसी भूल के रूप में मन में न रखें। ऐसा रंचमात्र भी नहीं है कि मैनें वह नहीं किया, जो मुझे करना चाहिए था।

द्रौपदी की बातें सुख देने वाली, गूढ़ अर्थवाली और दुर्बलों को उत्तेजना देनेवाली थी, द्रौपदी की बात में परम शक्तिमान्, थोड़े–से औषध के समान विशेष गुण देखने में आते थे।[66]

इसी प्रकार, द्रौपदी के व्यंग्यबोध की शक्ति आश्चर्यजनक रूप से विस्फोटक है। वह ऐसी स्त्री है, जो अपने आप में गर्वीली है, अंश–अंश राजकुमारी है, अपने युग के सबसे शक्तिशाली राजा की पुत्री है। ऐसी रानी है जिसके जैसी कोई दूसरी रानी न हुई और न होगी, एक अप्रतिम सौंदर्य की धनी महिला जिसकी भव्यता सबसे अद्‌भुत हो, जिसने पुरुषों की सभा में अपने स्वयंवर के अवसर को छोड़कर कभी कदम न रखा हो, और उसे बालों से पकड़कर घसीटते हुए उस सभा में लाया जाता है, जहां राजसी आन–बान और शान से परिपूर्ण, संसार के सबसे शक्तिशाली और तेजस्वी पुरूष थे।

द्रौपदी के बालपन के झरोखे से झांके तो दिखता है कि वह अपने पिता के घर पूर्ण लाड़–प्यार और सुरक्षा में पली–बढ़ी थी। उसका सौंदर्य इतना विलक्षण था कि उसके रुप पर किसी की नज़र नहीं रुकती थी। दासियों और सहेलियों के बीच उसने अपना यौवन व्यतीत किया था। किसी पुरूष की उस पर कभी छाया तक नहीं पड़ी थी। एक स्त्री, जो इतना सुरक्षित जीवन व्यतीत कर रही थी, जिसने अपने पतियों के अलावा कभी किसी पराए पुरुष की ओर देखा तक नहीं था, उसे अचानक, एक ऐसी हालत में, जब वह अपने पतियों तक से दूर रहती थी, एक ऐसी सभा में बालों से घसीटते हुए, बलपूर्वक लाया गया जो पुरुषों से भरी थी। एक ऐसी स्त्री, जो अपने पूजनीय बुजुर्गों को सम्मान देने की जीवंत प्रतिमा थी, उसे भीष्म पितामह और गुरू द्रोणाचार्य के समक्ष, एक ऐसी अवस्था में लाया गया, जो किसी भी स्त्री के लिए असहनीय थी। एक स्त्री को जब यह पूर्ण अधिकार प्राप्त है कि वो ऐसी अवस्था में किसी के समक्ष न जाए, और समाज का यह नियम भी है, इस अवस्था में द्रौपदी को कितने सारे पुरुषों और बुजुर्गों के सामने ले जाया गया, जो उसके लिए बेहद कष्टदायी था। दुःशासन जैसे बलशाली पुरुष ने अपने बल और हालात का पूर्ण लाभ

उठाया और उसकी अवस्था तक की परवाह न करते हुए, उसे सभा में खींचकर ले गया। यह द्रौपदी का नहीं, पूरी नारी जाति का अपमान है। इस अपमान ने द्रौपदी के भीतर प्रतिशोध को जन्म दिया।

द्रौपदी के अपमान का अन्त यहीं तक नहीं हुआ। सभा में ले जाकर, उस पर कौरवों ने कितने कटाक्ष कसे, उसे हर तरह से अपमानित किया, कर्ण उसे वेश्या तक कहने से नहीं चूका। अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए दुर्योधन ने द्रौपदी, जिसे उसके पति द्यूतक्रीड़ा में हार चुके थे और अब वो साम्राज्ञी से दासी बन चुकी थी, उसको अपनी जाँघ पर बैठने के लिए कहा। एक पतिव्रता नारी का इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है। वो कैसे न **प्रतिशोध की ज्वाला में जले और अपने अधिकार के लिए सिर उठाए!**

अपमान के घूँट पीते हुए द्रौपदी सिर झुकाए बेबस खड़ी थी। उसे उस भरी सभा में एक भी पुरूष ऐसा नहीं दिख रहा था, जो उसकी सहायता करे। एक स्त्री के लिए यह मृत्यु से भी ज्यादा असहनीय अवस्था होती है, जब उसके मान–सम्मान पर आँच आए। सम्भवतः एक पुरुष यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक स्त्री के लिए उसकी इज्ज़त का क्या महत्त्व है। दुर्योधन तो पाँडवों को हर तरह से प्रताड़ित और अपमानित करते हुए हर मर्यादा भूल चुका था। उसने एक स्त्री के सम्मान तक की परवाह न करते हुए द्रौपदी को भरी सभा में दुःशासन द्वारा नग्न करने का आदेश दिया। यह द्रौपदी के लिए अपमान की पराकाष्ठा थी। एक स्त्री हर कटु वचन, हर कटाक्ष, हर प्रताड़ना सह सकती है, पर अपनी इज्ज़त पर आँच नहीं सह सकती। उसके लिए ऐसी अवस्था में मर जाना श्रेयस्कर है। पर द्रौपदी तो उस समय इतनी बेबस थी कि वो अपने जीवन का अंत भी नहीं कर सकती थी। उसकी सहायता करने वाला उस भरी सभा में कोई नहीं था, यहाँ तक कि उसके पति भी नहीं। एक पति का यह कर्त्तव्य है कि वो अपनी पत्नी के मान–सम्मान और गौरव की रक्षा करे, पर द्रौपदी यह जानती थी कि उसके पति बेबस हैं। वो कुछ नहीं कर पाएँगे। द्रौपदी को अपने प्रिय सखा श्रीकृष्ण पर पूर्ण विश्वास था। जब दुःशासन द्वारा उसका

चीरहरण किया जाने वाला था, तो द्रौपदी ने पूर्ण श्रद्धा और प्रेम से खुद को श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया और रक्षा करने के लिए प्रार्थना की। द्रौपदी ऐसी अवस्था में भी लेशमात्र भी व्याकुल नहीं हुई, दुःशासन उसके वस्त्र खींच रहा था और द्रौपदी चुपचाप हाथ जोड़कर, आँखें बंद किए, मन–ही–मन गोविंद को पुकार रही थी। श्रीकृष्ण ने भी उसकी तुरन्त सहायता की और दुःशासन ने वस्त्र खींचते–खींचते हार मान ली, पर द्रौपदी की मर्यादा को किंचित मात्र भी भंग नहीं कर पाया। इस प्रकार द्रौपदी के आत्म–सम्मान की रक्षा होना, नारी के प्रेम और श्रद्धा का सटीक प्रतीक है। नारी के चरित्र की विलक्षणता द्रौपदी से प्रकट होती है कि उसकी भगवान के प्रति श्रद्धा कितनी दृढ़ है। द्रौपदी की जगह अगर कोई भी स्त्री होती, तो वो इतना अपमान न सह पाती। पर द्रौपदी, श्रीकृष्ण के प्रति अपने दृढ़ विश्वास के कारण इस अपमान को भी सह गई।

द्रौपदी को अपमानित करते हुए कोई कमी नहीं छोड़ी गई। उसे यह तक कहा गया कि वो सभा में उपस्थित किसी एक या अनेक पुरुषों को चुन ले और उन्हें खुद को समर्पित कर दे। दुर्योधन को यह पता था कि पाँडव द्यूतक्रीड़ा में परास्त होकर अब उसके दास हैं और वो उनका या द्रौपदी का कितना भी अपमान कर ले, उनको कुछ भी कहने का कोई अधिकार नहीं है। द्रौपदी से कहा गया कि वो अब दासी के रूप में, दूसरी दासियों के साथ सफाई का कार्य करे।

द्रौपदी सशक्त व्यक्तित्व की स्त्री थी। उसका जितना अपमान हुआ, वो एक स्त्री के अपमान की पराकाष्ठा ही मानी जाएगी। इससे ज्यादा अपमान, मानव इतिहास में कभी किसी स्त्री का नहीं हुआ। पर ऐसी विषम अवस्था में भी द्रौपदी ने अपना विवेक नहीं खोया।

द्रौपदी ने इतने अपमान के पश्चात्, वहां उपस्थित सभाजनों को उपालम्भ दिए, पर तब भी उसने अपनी गरिमा को बरकरार रखते हुए अपनी वाणी को संयमित रखा और अपनी सभ्यता नहीं भूली। इतने अपमान के पश्चात्, वो किसी पर भी कैसे दया

दिखाती! जब वहाँ उपस्थित उसके पतियों और बुजुर्गों तक ने उसे अपमानित और प्रताड़ित होते हुए देखकर भी मौन धारण कर लिया था, तो वो क्यों न अपनी वाणी के तीखे बाणों से सबको भेदती! **यह उसका अधिकार था।** वो किसी और रूप में अपने अपमान का प्रतिशोध नहीं ले सकती थी, पर अपने कटु वचनों से तो उन सबके हृदयों को झकझोर सकती थी। इतने बड़े अपमान को उसने कैसे सहा और कहा, यह द्रौपदी के व्यक्तित्व की ही दृढ़ता थी। उसने अपने शब्दों में तनिक भी दया नहीं बरती और अपने शब्दों से उसने सभा में उपस्थित सब लोगों को ऐसे घाव दिए, जो जीवनपर्यन्त भर नहीं सके। सब लोगों के सिर शर्म से झुके थे, सब अत्यन्त दुःख के सागर में डूबे थे और वो जीवन–भर द्रौपदी के हुए अपमान से उबर नहीं पाए।

यह है नारी शक्ति – कितनी दृढ़ और कितनी अडिग। यह है स्त्री की सूझ–बूझ, जो उसने ऐसी अपमानजनक अवस्था में अपने शब्दों द्वारा प्रदर्शित की। यह है नारी की प्रबुद्धता और उसके व्यक्तित्व की निडरता।

द्रौपदी पाँच पतियों की पत्नी होकर भी अकेली थी। द्रौपदी का अपमान उसका संताप बना और वही उसकी ताकत भी। द्रौपदी की बुद्धिमत्ता, तर्क, ज्ञान और पांडित्य के आगे सब लाचार हो गए। वह सवाल करती रही, पर पूरी सभा निरूत्तर थी। उसका प्रतिशोध तब तक जीवित रहा, जब तक पाँडवों ने कौरवों को परास्त नहीं किया।

चाहे द्यूतक्रीड़ा के उपरांत का सभागृह हो या काम्यक वन, द्रौपदी ने हर स्थान पर अपने साहस का परिचय दिया। एक पतिव्रता स्त्री हर परिस्थिति में अपने पति के प्रति वफादारी नहीं त्यागती। वो चाहे फूलों के बिस्तर पर भव्य महलों में सोए, या भयावह जंगलों में काँटों की सेज पर, वो अपने पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए किसी भी मोह में नहीं फँसती। द्रौपदी भी एक ऐसी ही बुद्धिमान और दृढ़ स्त्री थी।

द्रौपदी ने अपने अपमान के घूँट को पी लिया था, पर वो अपने अपमान को भूली नहीं थी। वो हरसंभव प्रयत्न करके अपने पतियों को उनका हक दिलवाना

चाहती थी और अपने अपमान का बदला लेना चाहती थी। अतः काम्यक वन में उसे जब यह अवसर प्राप्त हुआ, उसने अपनी बुद्धिमत्ता, साहस और दृढ़ निश्चय का पूर्ण रूप से लाभ उठाया और युधिष्ठिर को उकसाने के लिए उसे उपालंभ देते हुए कहा कि शत्रुओं द्वारा ऐसी गिरी हालत में पड़ा हुआ युधिष्ठिर का पुरुषार्थ, जो देवताओं तक से प्रशंसित है, चौपट और व्यर्थ हो रहा है, तो इससे बढ़कर और क्या कष्ट होगा?[67]

दुर्योधन के बहनोई जयद्रथ को जब यह ज्ञात हुआ कि पाँडव काम्यक वन में हैं, तो एक दिन अवसर पाकर उसने द्रौपदी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वो पाँडवों को छोड़ दे, उसकी पत्नी बन जाए, वो उसे सिंधु और सौवीर की महारानी बना देगा, उसकी पत्नी बनकर वो सुख भोगे और आनंद से रहे।

द्रौपदी जयद्रथ के इरादे जानती थी। उसे पता था कि अगर वो जयद्रथ की बात नहीं मानेगी, तो जयद्रथ उसे अपना बनाने के लिए नीचता पर उतर आएगा और बलपूर्वक उसका अपहरण कर लेगा। पर वो नारी–शक्ति से परिपूर्ण थी। उसे अपनी नारी होने की अद्वितीय शक्ति का एहसास था। पूरी निडरता से उसने जयद्रथ की बात को अस्वीकार कर दिया और एक सिंहनी की तरह उस पर गरज पड़ी। एक आत्मसम्मानी नारी अपने आत्मसम्मान और गौरव पर आँच आते देखकर कितना उग्र रूप धारण कर लेती है, यह द्रौपदी का क्रोध से भरा लाल चेहरा, उसकी अग्नि के समान दहकती आँखें और क्रोध से चढ़ी भौहें दर्शा रही थीं। एक पतिव्रता नारी पति के होते हुए किसी पर पुरुष का किसी भी तरह का प्रलोभन स्वीकार नहीं करती। जयद्रथ के ऐसा कहने से द्रौपदी के भीतर पनपती प्रतिशोध की ज्वाला और भी भड़क गई और उसने जयद्रथ से कहा कि चरित्रवान व्यक्ति हमेशा दूसरों का सम्मान करते हैं, चाहे वो राजभवनों में रह रहे हों या वनों में। पर एक कुत्ते के तुल्य दुश्चरित्र व्यक्ति ही ऐसे शब्द कह सकता है, जैसे जयद्रथ ने उससे कहे थे।

द्रौपदी ने बिना डरे, जयद्रथ को उलाहना देते हुए कहा कि वो मूर्ख है, जैसे जब बाँस, केले के पेड़ और नदी किनारे उगने वाली झाड़ियों में फूल उगते हैं, तो वो उनके भले के लिए नहीं, उनके विनाश के लिए होते हैं, जैसे एक स्त्री के गर्भ में शिशु होता है, तो उसकी मृत्यु निकट भी हो सकती है, उसी तरह अगर जयद्रथ ने उसका (द्रौपदी) का अपहरण किया, तो वो अपनी मृत्यु को निमंत्रण देगा।

किसी कुटिल और शक्तिशाली पराए पुरुष को इस तरह से वक्तव्य कहना एक नारी के लिए सहज नहीं है, पर द्रौपदी ने जितनी निडरता से जयद्रथ को शौर्यपूर्ण शब्द कहे, यह द्रौपदी का अपने पतियों के प्रति और अपने प्रिय सखा श्रीकृष्ण के प्रति गहरा विश्वास दर्शाता है। उसे यह पूर्ण रूप से ज्ञात था कि अगर जयद्रथ ने उसका अपहरण करने की मूर्खता कर ली, तो उसके पति और श्रीकृष्ण उसे इस पृथ्वी पर जीवित नहीं छोड़ेंगे। इसी विश्वास ने उसे इतना निडर बना दिया कि वो जयद्रथ के समक्ष दृढ़ता से खड़ी रही और उसे उसकी नीचता से परिपूर्ण विचारों का निर्भीकता से उत्तर दिया।

द्रौपदी का जीवन अपमान और तिरस्कार की एक मर्मस्पर्शी सम्पूर्ण गाथा है। उसका अपमान और तिरस्कार ही उसके प्रतिशोध की नींव है। चाहे द्यूतक्रीड़ा हो या जयद्रथ का उसका अपहरण करने की चेष्टा करना या कीचक का दुर्व्यवहार, उसने कभी अपना धैर्य नहीं त्यागा, उसने बड़ी सहनशीलता से हर अपमान को सहा और हर कदम पर प्रतिशोध किया। द्रौपदी का जीवन इस बात का मूर्त प्रमाण है कि नारी को अपने **अपमान का प्रतिशोध लेने का पूर्ण अधिकार है** और वह इसमें सक्षम भी हैं।

अज्ञातवास के दौरान जब राजा विराट के महल में वो सैरन्ध्री के रूप में रही, तब कीचक ने उसका जीना बहुत कठिन कर दिया। वह उसे अपमानित करता, उससे बुरा व्यवहार करता और उसे अश्लील शब्द कहता। जब उसकी अश्लीलता अपनी सीमा पार करने लगी और असहनीय हो गई, तब उसने भीम से मदद ली। वह भीम के समक्ष गई और उसे निद्रा से इस प्रकार जगाया जैसे एक शेरनी सोते हुए

शेर को जगाती है। द्रौपदी के चरित्र में इतनी विलक्षणता और संयम था कि उसके शब्द एक शेरनी की दहाड़ के समान थे, पर उसकी वाणी, वीणा की तरह मधुर थी। वो अत्यंत क्रोधित थी पर उसे पता था कि एक सभ्य नारी का परिचय देते हुए उसे अपने पति से मधुरतापूर्वक बात करनी है। वाणी में पूर्ण मधुरता का उपयोग करते हुए वह भीम से कहती है– उठो, उठो भीम! एक मृत व्यक्ति की तरह वहाँ मत पड़े रहो। एक मृत व्यक्ति की पत्नी को ही कोई पापी छूकर जीवित रह सकता है।

बेहद सभ्यता और मधुरता से ऐसा कहकर द्रौपदी ने कीचक द्वारा किए गए उसके अपमान का सारा वृतांत सुनाया, उसे उसका कर्त्तव्य याद दिलाया और उसे अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए कहा। द्रौपदी के साथ हुआ हर अपमान उसके भीतर एक ज्वाला की तरह भड़क रहा था। वो हस्तिनापुर की सभा में हुए अपने अपमान के समय बेबस और मजबूर थी क्योंकि उसके पति, राजा युधिष्ठिर द्यूतक्रीड़ा में सब कुछ हार गए थे। पर कीचक के द्वारा किए गए अपमान का प्रतिशोध लेने में कोई विवशता नहीं थी। एक आत्मसम्मानी नारी होते हुए उसने **अपने आत्मगौरव की सुरक्षा के अधिकार** का पूर्ण उपयोग किया और भीम को कीचक से तुरंत बदला लेने को कहा। अब तक उसके साथ जो भी अन्याय हुए थे, उसने वो सब भी भीम को याद दिलाए।

द्रौपदी ने काम्यक वन मे भी भीमसेन को उत्तेजना भरे वाक्य कहे, उनसे प्रेरित होकर भीमसेन ने युधिष्ठिर को अपने अधिकार के प्रति जागरूक करते हुए कहा कि चारों दिग्गजों के समान बलवान और आकार में अपार सागर के समान, आक्रमण योग्य जो नहीं है, ऐसे इन्द्र के समान पराक्रम वाले युधिष्ठिर और उनके भाई हैं, किन्तु दुश्मनों के पक्ष में कौन है, जो ठहरकर, क्षणभर युद्ध करें।[68]

भीम द्रौपदी के साथ हुए अन्याय से पहले ही प्रतिशोध की अग्नि में जल रहा था। कीचक के दुर्व्यवहार से भीम के भीतर प्रतिशोध की ज्वाला और भी भड़क गई और उसने कीचक का वध कर दिया। भीम द्रौपदी के अपमान से इतना क्षुब्ध था और

उसका क्रोध इतना प्रचण्ड था कि उसने कीचक का वध करके, उसकी बाजुएँ और टाँगें उसके शरीर में दबा दीं और उसके शरीर को माँस की एक गेंद बना दिया।

एक आत्म–सम्मानी, दृढ़ और परिपक्व स्त्री जब कुछ कहती है, उसके शब्द कितने सशक्त, भावपूर्ण और सक्षम होते हैं, यह द्रौपदी के चरित्र से समझा जा सकता है। द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से अपनी व्यथा का व्याख्यान ऐसे ही मर्मभेदी शब्दों का उपयोग करके किया। जब श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर का यह संदेश मिला कि पाँडवों को शांति के अलावा कुछ नहीं चाहिए, इसलिए वो पाँच गाँव लेकर युद्ध नहीं करेंगे, तो कृष्ण शांतिदूत के रूप में, संधि करने के लिए हस्तिनापुर जाने लगे। यहाँ तक कि भीम, जो कभी भी अन्याय के प्रति चुप नहीं रहता था, उसने भी यह शांति–संधि स्वीकार कर ली। इससे द्रौपदी को बहुत ठेस लगी। वह बहुत निराश हुई क्योंकि यह उसके प्रति विश्वासघात था। इतने बड़े अपमान का प्रतिशोध लेने की अपेक्षा, शांति–संधि करना उसके प्रति अन्याय था। इतने अपमान के पश्चात् वो यह अन्याय कैसे सहती! युधिष्ठिर द्वारा प्रस्तावित शांति–संधि के विषय में जानकर द्रौपदी यह समझ गई कि जब भीम तक चुप हो गए हैं, तो न्याय नहीं मिलेगा। अब उसे अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए खुद ही कुछ करना होगा। उसने सारी परिस्थिति अपने हाथ में ले ली और कृष्ण के सामने ह्रदय की गहराई से अपनी व्यथा का वर्णन किया, जिससे श्रीकृष्ण बहुत प्रभावित हुए।

द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से भाव–विभोर होकर कहा – कौरवों के साथ सुलह और संधि से कुछ नहीं हेागा, न ही दान–दक्षिणा से कुछ होगा। उनसे अपने जीवन की रक्षा का एकमात्र उपाय है– दण्ड, हिंसा, बल और शस्त्रों का उपयोग। जो धर्म के ज्ञाता हैं, वो यह जानते हैं कि दुष्टों को उनके पापकर्मों के लिए सज़ा न देना उतना ही बड़ा पाप है, जितना निर्दोष को सज़ा देना।

द्रौपदी बहुत विद्वान स्त्री थी। उसे धर्म–अधर्म का उचित ज्ञान था। अपनी विद्वता का परिचय देते हुए ही द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को दोषियों को सज़ा देने के धर्म का स्मरण दिलाया।

वास्तव में, द्रौपदी को श्रीकृष्ण, अपने परम सखा, पर अटूट विश्वास था। वो यह हृदय से जानती थी कि चाहे इस संसार में कोई उसका साथ न दे, पर श्रीकृष्ण उसका साथ कभी नहीं छोड़ेंगे और हमेशा उसकी रक्षा के लिए अडिग रहेंगे। इसी विश्वास के बल पर द्रौपदी कृष्ण से एक बार फिर कुछ बातें कहती है, जो वो पहले भी कह चुकी थी। उसने कृष्ण से पूछा कि इस पूरी पृथ्वी पर उसके जैसी स्त्री कौन होगी – राजा द्रुपद की कन्या जो अग्नि से प्रकट हुई, धृष्टद्युम्न जैसे पराक्रमी वीर की बहन, कृष्ण की परम सखा, महान पाँडु की पुत्र–वधू, बलशाली पाँडवों की पत्नी जिनका यश इन्द्र के समान है, पाँच शूरवीर पुत्रों की माता और अभिमन्यु जैसे महारथी की बड़ी माँ। और इस द्रौपदी को कौरवों की सभा के बीच बालों से खींचकर ले जाया गया। सब पाँडुपुत्र मूक होकर यह भयावह दृश्य देखते रहे। आपके जीवित रहते यह सब हुआ, पाँडु पुत्रों के जीवित रहते यह हुआ। वृष्णिवंशियों के जीवित रहते यह हुआ। इन सबके जीवित रहते मुझे एक दासी के रूप में दुष्ट हृदयी कौरवों की सभा के बीच खड़ा होने को विवश होना पड़ा। उस समय, श्रीकृष्ण केवल आप हो, जिसे मैंने हृदय से याद किया और अपनी रक्षा के लिए पुकारा। उस समय, मेरे पति तक, बिना कुछ किए, चुपचाप वहाँ बैठे रहे। केवल आपने ही मेरी रक्षा की।

द्रौपदी ने फिर कहा कि वो अर्जुन के गाँडीव और भीम की ताकत को दुत्कारती है, उन्हें शर्म आनी चाहिए कि दुर्योधन आज तक जीवित है। उसने श्रीकृष्ण से विनती की, कि अगर द्रौपदी उनकी कृपा के योग्य है, तो वो बिना रुके अपने क्रोध की ज्वाला धृतराष्ट्र के पुत्रों के वध से शांत करें।

ऐसा कहकर, वो श्रीकृष्ण के पास गई और अपने काले, घने, सुंदर और खुले केशों के छोर को अपने हाथों से पकड़कर कृष्ण को दिखाया, और हृदय की पीड़ा को

आँखों से बहती हुई अश्रुधारा से व्यक्त करते हुए, जिसे वो चाहकर भी थाम नहीं पा रही थी, कृष्ण से कहा कि वो धृतराष्ट्र पुत्रों से अगर शांति की बात करते हैं, तो उन्हें क्षण–भर के लिए भी उसके केशों का विस्मरण नहीं करना चाहिए, जिन्हें अपने हाथों से खींचते हुए दुःशासन उसे कुरूओं की भरी सभा में लाया था।

द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से यह भी कहा कि अगर भीम और अर्जुन दो कायरों की तरह शांति की बात करते हैं, तो उसके बूढ़े पिता द्रुपद उसके अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए और **उसके अधिकारों को** पुनः वापस दिलाने के लिए अपने वीर पुत्रों के साथ कौरवों से युद्ध करेंगे, द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को स्पष्ट कर दिया कि उसके पाँचों निडर पुत्र, अभिमन्यु के निर्देशन में युद्ध करेंगे।

द्रौपदी ने श्रीकृष्ण को अपने हृदय की व्यथा का वर्णन करते हुए कहा – तेरह साल से उसके हृदय में क्रोध और प्रतिशोध की ज्वाला जलते हुए वो प्रतीक्षा कर रही है। उसके हृदय की वेदना तब तक शांत नहीं होगी, जब तक उसकी आँखें दुःशासन की भुजाओं को उसी के मृत शरीर और खून में डूबी नहीं देखेंगी। द्रौपदी की करूणा–भरी व्यथा सुनकर श्रीकृष्ण व्यथित हो गए। वस्तुतः वे द्रौपदी की व्यथा और अपमान की ज्वाला की तपिश भली–भांति समझते थे। उन्हें यह आभास था कि द्रौपदी के साथ हर कदम पर अन्याय हुआ था। एक बेबस नारी को न्याय दिलाना उनका कर्त्तव्य था और श्रीकृष्ण तो उसके सखा थे। चाहे वो युधिष्ठिर द्वारा प्रस्तावित शांति–संधि का समाचार हस्तिनापुर लेकर जा रहे थे, पर द्रौपदी, जो उन पर अटूट विश्वास करती थी, उसके साथ उचित निर्णय करना भी उनका कर्त्तव्य था। इसलिए कृष्ण ने द्रौपदी को वचन दिया कि चाहे हिमालय पर्वत अपने स्थान से हिल जाए, चाहे धरती के सौ टुकड़े हो जाएँ, चाहे आकाश नीचे गिर जाए, पर उनके ये वचन कभी गलत नहीं होंगे – ''मैं, कृष्ण, तुम्हें वचन देता हूँ, अपने आँसू पोंछो, जल्द ही तुम अपने पतियों को फिर से शोभायमान पाओगी और उनके शत्रुओं का नाश होगा।''

इस प्रकार द्रौपदी के अपमान की पृष्ठभूमि में भी उसके स्त्रियोचित अधिकारों का दिगदर्शन होता है। स्त्री को समाज में अपने कुल, पति की प्रतिष्ठा व वीरता तथा अपने गुणों के अनुरूप मान–सम्मान प्राप्त करने का अधिकार है। यदि उसके सम्मान की हानि होती है तो उसे प्रतिकार करने का पूर्ण अधिकार हैं। द्रौपदी के इस अधिकार की रक्षा हेतु ही महाभारत का युद्ध हुआ।

खण्ड (ग) : मानव के रूप में स्त्री के अधिकार

वैदिक और महाकाव्य काल पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट है कि मानव के रूप में स्त्री अधिकार की स्थिति, कालक्रम के अनुसार परिवर्तित होती रही है। जहां वैदिक काल की स्त्री, अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत तक, पुरुष के समानांतर अधिकार संपन्न रही है, वहीं महाकाव्य काल मे स्त्री की दशा और दिशा, दोनों में, वृहद परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। वैदिक काल में स्त्री को शिक्षा, समानता, स्वतंत्रता और स्वपहचान एवं सम्मान के अधिकार आदि मूल अधिकार सहज सुलभ थे। परंतु महाकाव्य काल में मानव के रूप में स्त्री अधिकार की स्थिति अपेक्षाकृत क्षीण प्रतीत होती है। महाकाव्य काल की स्त्री को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, पारिवारिक सुख, मान–सम्मान और अपने सामाजिक–सांस्कृतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

अब चर्चा बृहत्त्रयी की! हमारी विवेच्य बृहत्त्रयी में पात्र अपने मानवाधिकारों और इनके उद्‌गम् बिंदुओं अर्थात् मूल अधिकारों के लिए कहीं विद्वत्तापूर्ण उपालंभ देते दृष्टिगोचर होते हैं, तो कहीं अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए स्वयंवर प्रथा का उपभोग करते हुए। किरातार्जुनीयम् जोकि महाकवि भारवि की अद्वितीय रचना है, उसमें कवि द्वारा द्रौपदी के माध्यम से, उस युग में स्त्री के मूल अधिकारों का मुखर चित्रण हुआ है। द्रौपदी एक पात्र के रूप में उस काल में राजसत्ता का सुख भोगने से वंचित एक साम्राज्ञी की वस्तुस्थिति को चित्रित करती है। परन्तु इसके साथ–साथ, यह उस काल की नारी की वास्तविक प्रभुसत्ता का चित्रण करने में पर्याप्त प्रभावशाली है। इस प्रकार

द्रौपदी के चिन्तन, वचन और क्रियाकलापों से सामान्य स्त्री ही प्रतिबिंबित होती है। उधर, नैषधीयचरितम् में कवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती और नल की स्वयंवर कथा में स्त्री के स्वयं वर चुनने के अधिकार को उजागर किया है। जबकि शिशुपाल वध एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें कोई भी मुख्य नायिका नहीं है। इस महाकाय में भले ही कोई भी मुख्य स्त्री पात्र नहीं है किन्तु सेना के साथ आई यादव रमणियों की विविध कामजन्य भाव भंगिमाओं, जलक्रीड़ा आदि का वर्णन किया है। इन युवतियों का सैनिको के साथ युद्ध स्थल तक आना यह सिद्ध करता है कि स्त्रियों को घर से बाहर जाने की पूर्ण स्वतंत्रता थी।

हमें इस अध्ययन में मानव के रूप में स्त्री के अधिकारों की अन्य शाखाएँ भी सम्मिलित करने की आवश्यकता है, जिससे कि उस कालखण्ड की मानवाधिकार स्थिति का सम्पूर्ण अवलोकन हो सके। उदाहणार्थ, प्रमुख मानवाधिकारों के साथ–साथ, गृहस्थी पालन के लिए पति को परामर्श देना, विशिष्ट भावनात्मक स्थितियों में पति का मार्गदर्शन करना, अन्याय के विरूद्ध प्रतिकार के अधिकार का प्रयोग करना आदि का अध्ययन करना भी आवश्यक है।

उल्लेखनीय यह है कि किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि ने द्रौपदी की राजनीति–विषयक समझ और सम्मानजनक जीवन जीने के अधिकार को बहुत ही कुशलता से लेखनी में उतारा है। इस लेखन में, द्रौपदी की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी मुखर रूप में प्रकट हुई है। किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी के चरित्र की गौरव–गाथा प्रथम सर्ग से आरम्भ होती है और अन्तिम यानि अष्टादश सर्ग तक संपूर्ण होती है।

1. सामाजिक अधिकार

नारी की सामाजिक स्थिति प्राचीन काल में उच्च थी। पुरुषों की तरह उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकर नारी समाज को भी था। घोषा अपाला, जुहू रोमशा, लोपामुद्रा आदि इस बात की प्रमाण है कि उस समय ऋषि होने का गौरव नारी समाज को सुलभ था। परिवार में नारियों की प्रतिष्ठा थी जो कि उनका सामाजिक

अधिकार है। भारतीय समाज में युग परिवर्तन के साथ नारी की स्थिति में भी अन्तर आता गया। कहीं पर नारी को गृह की स्वामिनी[69] और कहीं उसे प्रत्येक अवस्था में क्रमशः पिता, पति तथा पुत्र के अधीन[70] माना जाता था। वास्तविक रूप में सामाजिक जीवन में नारी की स्थिति विरोधाभास पूर्ण रही है कहीं पर ऐसे स्थानों पर देवताओं के रमन करने की बात कही गयी है जहाँ स्त्रियों की पूजा हो।[71] और कहीं पर नारी की अत्यन्त निंदा की गयी है।[72] ऐसे ही महाकाव्य किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी जैसी साध्वी पर दुर्योधन कुदृष्टि डालता है। उसे अपमानित करता है इस कारण अपने अपमान का बदला लेने के लिए द्रौपदी अपने सामाजिक अधिकारों की मांग पाण्डवों से करती है। अतः द्रौपदी ने किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में अपने सम्मान, संपत्ति–विषयक अधिकार और नियत कर्मों को करने के तथा सबसे बढकर **अभिव्यक्ति के अधिकार** के बल पर महाराज युधिष्ठिर को अपने वचन कहे हैं। युधिष्ठिर महाराज पराजित अवस्था में थे, उनकी मानसिक स्थिति भी दुःखद थी, इस पर भी उन्हें अपने मन की व्यथा कहने का साहस, द्रौपदी को मिले सम्मान के अधिकार को ही पुष्ट करता है।

उदाहरणार्थ, युधिष्ठिर के द्वारा दुर्योधन की शासन व्यवस्था के भेद लेने के लिए भेजे गए गुप्तचर–वनेचर की सूचनाएँ, जब द्रौपदी को भी भाइयों के साथ परिचर्चा में सम्मिलित करके बताई जाती हैं, तो इससे ज्ञात होता है कि स्त्री को परिवार के सम्मान और कुल की मर्यादा से जुड़े विषयों पर बराबरी अथवा **समानता का अधिकार** प्राप्त था। द्रौपदी अपने शत्रुओं की उन्नति सुनकर शांत नहीं रहती। भीम और युधिष्ठिर की प्रतिक्रिया न करने को भी द्रौपदी संज्ञान में नहीं लेती। उल्टा, वह अपने पति युधिष्ठिर को क्रोध दिलाने और शत्रु नाश के लिए उद्योग कराने वाली बातें बोलती है।[73]

द्रौपदी का यह व्यवहार उस कालखंड की नारी की स्थिति को स्पष्ट करता है। द्रौपदी का यह कथन कि आप जैसे लोगों (पति) के प्रति स्त्री की बातें अपमान के समान हैं, स्त्री की अभिव्यक्ति के प्रति तत्कालीन समाज की अवहेलना के दंश को

दर्शाती है। परंतु द्रौपदी यही नहीं रुकती, जब वह कहती है कि अपने हृदय के दुख को, अपनी मर्यादासीमा को लांघकर भी वह अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहती है, तो स्त्री की निजता के नितांत, नवीन पहलुओं की बलशाली स्थिति का सृजन होता है।[74]

द्रौपदी यह स्पष्ट रूप से कहती है कि उसके चित्त का दुःख, उसके उचित शील को हटाकर भी उसको बोलने के लिए प्रेरित करता है। इससे यह दृष्टिगोचर होता है कि बृहत्त्रयी काल में स्त्री की मर्यादा उसके साथ हुए अन्याय पर प्रतिक्रिया न करने की दुहाई देती है। लेकिन इसी से यह भी इंगित होता है कि अगर स्त्री स्वयं को कहीं अपमानित और दुःखद स्थिति में पाती है, तो वह उसके लिए दोषी व्यक्ति या परिस्थिति के विरूद्ध **प्रतिक्रिया करने के अधिकार से सम्पन्न है।** वस्तुतः यह **स्त्री की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है,** जो उसे लोक–मर्यादा को उलाँघकर भी अपने सम्मान के लिए, अपनी हृदयाभिव्यक्ति करने का सामाजिक अधिकार दिलाता है।

द्रौपदी के हृदय में दुर्योधन के छल–कपट के लिए जो क्षोभ है, उसे अभिव्यक्त करने के लिए जिस प्रकार वह अपने पति युधिष्ठिर को तर्क और व्यंग्य–बाणों से मर्माहत करती है, उससे उस काल की स्त्री के चारित्रिक बल और संवेदनशील विषयों पर प्रतिकूल टिप्पणी का सच्चा साहस परिलक्षित होता है।

द्यूत–क्रीड़ा में छल–कपट से दुर्योधन के हाथों राज–पाट और सुख–समृद्धि गँवा बैठे युधिष्ठिर को, द्रौपदी केवल नियति के क्रूर हाथों तले पिसते हुए नहीं देखना चाहती। उल्टा, वह युधिष्ठिर को उनके पूर्ववर्ती पराक्रमी राजाओं की कुल–परंपरा का स्मरण कराते हुए उत्तेजित करती है। यह सब द्रौपदी के सामाजिक अधिकार को परिलक्षित करता है। द्रौपदी द्यूत–क्रीड़ा में हार के पश्चात् युधिष्ठिर महाराज के अज्ञातवास के निर्णय के औचित्य पर प्रश्नचिन्ह भी लगाने से भी नहीं चूकती। द्रौपदी कहती है – 'जिस समुद्रपर्यंत पृथ्वी को, इन्द्र के समान पराक्रम वाले अपने कुल के राजा लोगों ने बराबर अपने अधीन रखा, उसको आपने अपने ही हाथ से खो दिया।'[75]

द्रौपदी एक बुद्धिमान और कुशल साम्राज्ञी है। उसे ज्ञात है कि राजा युधिष्ठिर ने अपना राज–काज जुए में दुर्योधन के हाथ हार कर, मात्र अपनी स्वेच्छाचारिता का परिचय दिया। वस्तुतः कुल के महान राजाओं ने जिस पराक्रम से हस्तिनापुर को स्व–नियंत्रण में रखा, ख्याति को क्षीण नहीं होने दिया, उसी प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा राजा युधिष्ठिर से की जाती थी। परन्तु युधिष्ठिर महाराज ने निराश ही किया। इसलिए द्रौपदी ने उसी निराशा को प्रेषित करते हुए राजा युधिष्ठिर के गलत निर्णयों पर गम्भीर कटाक्ष किए। द्रौपदी ने हस्तिनापुर के राज–पाट को छोड़कर, द्वैतवन में शरण लेने वाले युधिष्ठिर की तुलना मद से मतवाले हाथी द्वारा अपने गले की माला को तोड़कर फेंक देने से की। हाथी एक बुद्धिमान प्राणी है। हाथी के गले की माला उसे सुशोभित करती है, किंतु हाथी जब मद में चूर हो जाता है, तो वो अपनी शक्ति और विवेक, दोनों को भूल जाता है। मद से वशीभूत होकर वो स्वयं उसके व्यक्तित्त्व को शोभायमान करने वाली माला तक को उठाकर फेंक देता है।[76]

मूलतः द्रौपदी राजसत्ता छिनने के छल को सहन नहीं कर पा रही थीं। उसके हृदय में युधिष्ठिर महाराज को लेकर कोई वैर–भाव नहीं था। वह तो स्वयं उनके प्रति प्रेम से आपूरित थीं। उसके मन में यह भाव था कि महाराज युधिष्ठिर अपनी भोली प्रवृत्ति के कारण ठगे गए हैं। इसलिए उसने सह–धर्मिणी के अपने कर्म का निर्वाह करते हुए उनकी चेतना को प्रेरित करने का प्रयास किया। द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर को उत्साहित करते हुए कहा कि उनके जितने भी सहायक हैं, सब उनके प्रेमी हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं युधिष्ठिर महाराज को भी, उन्होंने कुल की मर्यादा रखने वाला राजा कहकर संबोधित किया। द्रौपदी को यह क्षोभ था कि राजा युधिष्ठिर ने अपनी भोलेपन की प्रवृत्ति के परवश होकर, वंश परंपरा में ठहरी हुई राजलक्ष्मी को क्यों त्यागा? द्रौपदी ने राज–सत्ता और वैभव की तुलना राजा की स्त्री से की और उन्होंने दुख जताया कि गुणों से भरी कुलीन और मन मोहने वाली स़्त्री को राजा ने क्यों त्यागा? द्रौपदी के भाव, पति के प्रति प्रेम को दर्शाते हैं। साथ ही, व्यवहार–कुशलता के लिए सद्मार्ग भी इंगित करते हैं।[77]

अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में नारी को एक महान शक्ति के रूप में आदर सम्मान दिया जाता रहा है नारी सामाजिक क्षेत्र में पुरुषों की

सहभागिनी रहती है। नारी को भी पुरूषों के समान अपनी बात कहने अर्थात् अपना पक्ष स्पष्टतापूर्वक रखने का पूर्ण अधिकार है। स्त्री को अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए यदि लोकमर्यादा का उल्लंघन करना पड़े तो भी वह अपनी अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण व्यक्त कर सकती है।स्त्री को समाज में अपने पति की प्रतिष्ठा एवं अपना मान–सम्मान प्राप्त करने का पूर्ण, अधिकार है यदि कोई उसके सम्मान को ठेस पहुँचाता है तो उसे उसका विरोध करने का भी पूर्ण अधिकार है जोकि उसके सामाजिक अधिकार हैं।

2. राजनैतिक अधिकार

राज्य का शासन चलाने में परामर्श और सहयोग के लिए नीतिशास्त्र का ज्ञान आवश्यक होता है इसलिए राजनैतिक शिक्षा राजकुमारियों व सामन्त कुमारियों की शिक्षा का प्रमुख अंग थी।[78] और वे इसमें रुचि लेती थी। सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही नारियाँ अपने पति के साथ प्रत्येक कार्य में सक्रिय भाग लेती थी फिर चाहे गृहस्थी का कार्य क्षेत्र हो, राजनीति का क्षेत्र या रणक्षेत्र।

अतः भारतीय समाज में स्त्रियों को भी राजनैतिक शिक्षा दी जाती थी लेकिन राजतन्त्रीय व्यवस्था में सामान्य वर्ग की स्त्रियों को इसमें प्रवेश करने का कोई अवसर नहीं दिया जाता। केवल राजपरिवारों की स्त्रियाँ ही इसमें भाग लेती थी ऐसा लगता है कि बाल्यावस्था में ही बालकों के सदृश बालिकाओं को भी राजनीति की शिक्षा दी जाती होगी क्योंकि महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर को जो स्वयं एक राजा है द्रौपदी उन्हें राजनीति की बातें बताती है। किरातार्जुनीयम् में युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करती हुई द्रौपदी ने अनेक युक्तियाँ दी है जबकि शिशुपालवध में तो स्त्रियां भी युद्धस्थल की ओर जाती हैं।

द्रौपदी का राजनीतिक विषयक ज्ञान उनकी राजनीतिक शिक्षा के संदर्भ में उच्चतर स्थिति को दर्शाता है। स्पष्ट है कि द्रौपदी राजनीतिक सूझ–बूझ और व्यवहार–कुशलता की धनी थी। किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी का यह पक्ष बहुत ही सुन्दर अलंकृत वाक्यों से उद्घाटित होता है। जब द्रौपदी युधिष्ठिर को समझाने की चेष्टा करते हुए कहती है कि जो व्यक्ति धूर्त और बदमाश लोगों के प्रति धूर्त नहीं बनता,

वह भारी दुख को भोगता है, तो उनकी राजनीतिक बुद्धिमत्ता परिलक्षित होती है। वस्तुतः द्रौपदी राजनीतिक ज्ञान से परिपूर्ण है। जब वह युधिष्ठिर को स्पष्ट करती है कि शैतान लोग सीधे आदमी के सब बाहर–भीतर का हाल उसी तरह चौपट करते हैं, जैसे एक नंगे बदन वाले योद्धा के भीतर बाण घुस कर मारते हैं तो वह राजनीति की रणनीति को ही स्पष्ट करती है। द्रौपदी का कथन द्विअर्थी है और व्यावहारिक भी। जब एक योद्धा बिना कवच के, नंगे बदन, युद्ध करता है, तो वो उसके शरीर को भेदने वाले बाणों को किसी भी प्रकार रोक नहीं सकता।[79] ऐसी समझ द्रौपदी के राजनीतिक अनुभव को स्थापित करती है। द्रौपदी साधारण स्त्री नहीं थी। वह हस्तिनापुर के राजसी कुल की वधू थी। परंतु जिस दृष्टिबोध से उसने राजनीतिक यथार्थ को परखा, वह सराहनीय है। राजनीतिक अंतर्जगत की इतनी गहरी दृष्टि उस काल की स्त्री की उच्चतर राजनीतिक समझ और व्यापक शैक्षणिक दृष्टिकोण की द्योतक है।

यूं देखा जाए तो द्रौपदी स्त्री के उन मनोभावों का प्रतीकात्मक चित्रण है, जिसके लिए स्त्री सदैव से जानी जाती है यथा – द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध, शत्रुता, उकसाना आदि। द्रौपदी भी युधिष्ठिर को क्रोध दिलाने के लिए कोई उपक्रम नहीं छोड़ती। वह उनके पौरुष को ललकारते हुए कटु वचन कहने से नहीं चूकती। उसकी भाषा संतुलित होने के फलस्वरूप युधिष्ठिर को उससे कोई आपत्ति नहीं होती, वरन् द्रौपदी के कथन उत्तेजना के दावानल को प्रदीप्त करने में लेशमात्र भी कम नहीं थे। द्रौपदी के वचन युधिष्ठिर को क्रोध दिलाकर सूखे शमीवृक्ष की लकड़ी की तरह प्रज्जवलित करने में सक्षम हैं।[80]

द्रौपदी इस उपमा को अपने नीति वचनों से और पुष्ट करते हुए कहती है – 'जिसका क्रोध व्यर्थ नहीं जाता, अर्थात् जिसके ऊपर क्रोध करते हैं, उसको अवश्य दण्ड देते हैं, ऐसे आदमी के सब, स्वयं ही अधीन हो जाते हैं। और जिसको क्रोध के स्थान पर भी क्रोध नहीं आता, उस आदमी को न तो शत्रु से डर और न ही मित्र से आदर मिलता है।[81]

द्रौपदी की युधिष्ठिर को दी गई यह राजनीतिक सीख उनकी राजनीतिक शिक्षा की श्रेष्ठता को दर्शाती है। इससे उनकी व्यावहारिक बुद्धिमत्ता भी परिलक्षित होती है और राजकार्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग भी दिखाई देता है। इस प्रकार स्त्री का पुरूष को राजकार्य में दिया जाने वाला सहयोग उसकी सुदृढ़ राजनीतिक शिक्षा और **राजनीतिक अधिकार,** दोनों का प्रतीक है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि द्रौपदी का वाक् चातुर्य उसका कौशल, उसका स्वाभिमान बन्धुजनो पर शासन एवं विभिन्न विषयों सम्बन्धी ज्ञान इस बात को स्पष्ट करता है कि महाकाव्य की एक प्रमुख स्त्री पात्र द्रौपदी राजनैतिक दाव–पेच अच्छी तरह जानती थी और राजनीति की गूढ़ नीतियाँ सुशिक्षित व्यक्ति ही जान सकता है। अतः कहा जा सकता है कि महाकाव्य काल में स्त्रियां शिक्षित रही होंगी। सभी कृत्यों में पति के समान भाग लेती थी। हर शुभाशुभ कार्यों में पत्नी पति का सहयोग करती थी। इस प्रकार स्त्री द्वारा राजकार्य में दिये जाने वाला सहयोग ही राजनीति अधिकार है।

3. संपत्ति विषयक अधिकार

प्राचीन काल से ही स्त्री को संपत्ति विषयक अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतन्त्रता नगण्य के समान थी, परन्तु पिता, पति एवं पुत्र की छत्र–छाया में रहते हुए उसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक अधिकारों की तरह आर्थिक अर्थात् संपत्ति विषयक अधिकारों के उपभोग की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। स्त्री पुरूष की सहधर्मिणी सहचरी थी, जो परिवार की समस्त व्यवस्था पर नियन्त्रण करती हुई आर्थिक संतुलन बनाये रखने हेतु पति का सहयोग करती थी। नारी के पास भी सम्पत्ति के रूप में जमीन जायदाद न सही, किन्तु कुछ न कुछ अवश्य रहता था जिसकी वह अधिकारिणी थी।

द्रौपदी कुशल राजनीतिक बोध के अतिरिक्त अपने संपत्ति विषयक अधिकारों के प्रति भी पूर्णरूप से सचेत थी। द्रौपदी को ज्ञात था कि साम्राज्ञी होने के कारण,

हस्तिनापुर की संपत्ति पर उसका पूर्ण अधिकार था। चूंकि कौरवों ने छल से हस्तिनापुर को पांडवों से छीना था, इसलिए पांडवों के नैतिक बल का ह्रास हो चुका था। द्रौपदी अपनी सांस्कृतिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि के कारण वस्तुस्थिति से पूर्णतया परिचित थी। उसके मानस में अपनी संपत्ति पर प्रभुता पाने के लिए उथलपुथल मची थी। अपनी संपत्ति के स्वामित्व को लेकर द्रौपदी की चेतना स्पष्ट थी, इसीलिए उसने अपनी रणनीति को थोड़ा परिवर्तित किया। द्रौपदी ने हस्तिनापुर के साम्राज्य के लिए धर्मराज युधिष्ठिर को भावनात्मक रूप से उद्वेलित करने का निर्णय लिया। इसी आधार पर उसने शिक्षा के अतिरिक्त, अपनी परिपक्वता का परिचय देते हुए, बड़ी कुशलता और चतुराई से अपना पक्ष रखा। द्रौपदी को यह भली–भांति विदित है कि युधिष्ठिर अपने भाइयों से अत्यधिक प्रेम करते हैं और सामाजिक रूप से उनकी यह छवि जन–मानस में भी मुद्रित है। युधिष्ठिर अपने भाइयों को अपने भाई नहीं, पुत्र से भी बढ़कर समझते थे। हर सुख–दुख में वो हमेशा उनके साथ थे। एक घने वृक्ष की छाया की तरह चारों भाई युधिष्ठिर की सूझ–बूझ और धर्म के ज्ञान की शीतलता पाते थे। यह कर्म युधिष्ठिर की सांस्कृतिक सूझ–बूझ का परिचायक था और द्रौपदी भी इसे समझती और जानती थी कि भारतीय संस्कृति के अनुसार बड़े भाई का पूर्ण कर्त्तव्य है कि वो अपने छोटे भाईयों की रक्षा करे और उनके सुख–दुख का हर पल ध्यान रखे।

द्रौपदी को विदित था कि युधिष्ठिर अपने भाईयों को किसी भी तरह से कष्ट में नहीं देख सकते थे। वो खुद चाहे जितने भी कष्ट भोग लें, पर अपने भाइयों पर वो आँच भी नहीं आने देना चाहते थे। उनके भाई उनकी आँखों के तारे थे। द्रौपदी यह जानती थी कि युधिष्ठिर अपने भाईयों को किसी भी तरह के कष्ट से बचाने के लिए अपनी जान की बाज़ी भी लगा देंगे। युधिष्ठिर के इस सामाजिक बोध से द्रौपदी भली–भाँति परिचित थी।

परंतु इसके साथ–साथ, द्रौपदी यह देख रही थी कि वो धर्मराज युधिष्ठिर को कौरवों के विरूद्ध किसी भी तरह से धर्मयुद्ध के लिए राजी नहीं कर पा रही थी।

युधिष्ठिर को इस कार्य के लिए उत्तेजित करने हेतु उसके हरसम्भव प्रयास विफल हो रहे थे। द्रौपदी इन सबसे पराजित होने वाली नहीं थी। द्रौपदी राजा द्रुपद जैसे वीर और पराक्रमी राजा की कन्या थी, हस्तिनापुर जैसे विराट साम्राज्य की साम्राज्ञी थी और सर्वश्रेष्ठ शूरवीरों – पाँडवों की पत्नी थी। ऐसे व्यक्तित्त्व की स्वामिनी हार कैसे मान सकती थी। इसलिए उसके सामने आई घोर विपदाओं और असहनीय अपमान को भी वो निडरता और धैर्य से सह गई। द्रौपदी का यह साहस, एक प्रखर स्त्री की सहनशीलता और निडरता का परिचायक है। यह दर्शाता है कि चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, नारी कभी हार नहीं मानती। वो अपनी रक्षा और लज्जा को बचाए रखने के लिए और धर्म की स्थापना के लिए, 'साम, दाम, दंड, भेद' सभी उपक्रमों का उपयोग करती है। उसे यह ज्ञान था कि अगर वह युधिष्ठिर से उनके भाइयों की त्रासद स्थिति का उल्लेख करेगी, तो युधिष्ठिर का कोमल हृदय अवश्य ही पिघलेगा और वो अपने भाइयों के कष्ट को महसूस कर, अवश्य हस्तिनापुर पर अधिकार के लिए युद्ध करने का निर्णय ले लेंगे।

मूलतः इस प्रकरण में द्रौपदी की अपने संपत्ति विषयक अधिकारों के लिए जागृति का भी बोध होता है। द्रौपदी को यह ज्ञान था कि उसे अपने संपत्ति विषयक पक्ष को उचित साबित करने का पूरा अधिकार है। वह स्त्री है, इसका यह अर्थ नहीं कि वो अपनी संपत्ति के स्वामित्त्व के लिए लड़ नहीं सकती। अब इसके लिए वह क्या मार्ग अपनाए और कैसे अपनी बात सामने रखे, यह उसकी चतुराई, वाक्पटुता और बुद्धिमानी पर निर्भर था। द्रौपदी में स्त्री के इन सभी गुणों का समावेश था। उसने युधिष्ठिर के हृदय को झकझोरने के लिए बलशाली और पराक्रमी छवि वाले योद्धा भीमसेन का भी सहारा लिया। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के सामने बदली आर्थिक स्थिति से उत्पन्न दुखद परिणामों की झलक प्रस्तुत की। उन्होंने युधिष्ठिर को उत्तेजित करने के लिए कहा कि जो राजकुमार अर्थात् भीम, पहले लाल चन्दन शरीर पर लगाते थे, उसी शरीर पर अब इन्हें धूल लगानी पड़ती है। जो पहले रथ पर चलते थे, वे अब पर्वत पर पैदल घूमते हैं।[82]द्रौपदी अपने भाव में भरकर, अथाह दुःख और शोक प्रकट

करते हुए युधिष्ठिर से बोली – 'हाय! ऐसे सहोदर भाई को देखकर भी क्या आपका हृदय दुखता नहीं ?

द्रौपदी के उपरोक्त कथन केवल उनका भावनात्मक व्यवहार या परिस्थितिवश उपजा आक्रोश भर नहीं था, वरन् अपने आर्थिक अधिकारों के संरक्षण के लिए उनके व्यवहार की चतुराई को भी दर्शाते हैं। भले ही द्रौपदी युधिष्ठिर को भीमसेन के संबंध में उपालम्भ दे रही थी, परंतु उसके मूल में युधिष्ठिर की करूणा जगाने का प्रयास था ताकि वे उत्तेजित होकर अपनी खोई संपत्ति पाने के उपक्रम में लग सकें।

किरातार्जुनीयम् की विशेषता यही है कि वो नारी के समस्त अधिकारों के प्रति उसकी जागरूकता और उसके लिए जरूरी उपक्रमों को चित्रित करता है। द्रौपदी ने देखा कि भीमसेन की करूणा भरी दशा का विवरण सुनने पर भी युधिष्ठिर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। पर द्रौपदी किसी भी तरह युधिष्ठिर को हस्तिनापुर के साम्राज्य में अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए युद्ध हेतु प्रेरित करना चाहती थी। उसे यह ज्ञात था कि जब उसके पति युधिष्ठिर अपने कर्त्तव्य को नहीं समझ पा रहे कि उन्हें स्वयं को और अपने भाईयों को उनका अधिकार दिलाना है, तो उनकी अर्धांगिनी होने के कारण यह उसका अधिकार था कि वो युधिष्ठिर को उनका अधिकार याद दिलाए और उसके लिए उत्साहित करे। वो नहीं चाहती थी कि समाज में उसके पति का अपमान हो या समाज उन्हें दीन–हीन समझे। यह द्रौपदी के भी अपने आर्थिक अधिकारों की अवहेलना होती जिसे स्वीकार करना उसके स्वभाव के अनुरूप नहीं था।

युधिष्ठिर के सबसे प्रिय थे अर्जुन और वे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर के रूप में भी जगविख्यात थे। उन्होंने अपनी धनुर्विद्या से बहुत ऊँची स्थिति प्राप्त की थी। द्रौपदी यह जानती थी कि युधिष्ठिर यह कभी नहीं सह पाएँगे कि अर्जुन का किसी भी प्रकार अपयश हो। इसलिए हृदय से कोमल और सहृदय होते हुए भी द्रौपदी ने युधिष्ठिर को कटु वचन कहे। वस्तुतः वो युधिष्ठिर को स्मरण कराना चाहती थी कि अर्जुन का

अपयश स्वयं युधिष्ठिर के लिए अपनी मृत्यु के समान है। इसलिए द्रौपदी को लगा कि अगर वो अर्जुन की दुर्दशा का भान युधिष्ठिर को कराने में समर्थ हो जाएगी तो वो अपने कर्त्तव्य को समझ पाएँगे और दुर्योधन से हस्तिनापुर के लिए युद्ध करने को प्रेरित होंगे।

हालांकि, यह सब सरल नही था, द्रौपदी के लिए यह भारी दुविधा की स्थिति थी। एक तरफ वो अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहती थी और दूसरी तरफ, वो युधिष्ठिर के कोमल हृदय को भी नहीं दुखाना चाहती थी। पर स्त्री के हृदय की विशालता और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए दृढ़ता और साहस का एक साथ, परिचय देते हुए द्रौपदी ने युधिष्ठिर को एक बार फिर अर्जुन की उपलब्धि के विषय में उपालम्भ दिया।

द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा कि अर्जुन ने इन्द्र के समान, उत्तर कुरू देशों को जीतकर अतुल धन दिया था। पर अब अर्जुन, जो सबसे बड़े धनुर्धर थे और धनंजय के नाम से भी जाने जाते थे, उनकी दशा इतनी दयनीय थी कि वो भाईयों के लिए वल्कल लाया करते थे। द्रौपदी ने अर्जुन की इस दशा को रेखांकित किया और युधिष्ठिर के हृदय को अपनी वाणी के तीखे बाणों से भेद दिया – "क्या अर्जुन की यह दशा देखकर भी युधिष्ठिर को क्रोध नहीं आता?"[83] द्रौपदी ने अपने विवेक का उपयोग करते हुए जब यह देखा कि युधिष्ठिर पर करूणा का प्रभाव नहीं हो रहा, तो उसने क्रोध का उपयोग करने की चेष्टा की। उसने युधिष्ठिर को अपना साम्राज्य लेने के लिए युद्ध हेतु, क्रोधित करने के लिए उत्तेजिक वाक्य कहें।

पृष्ठभूमि का विचार करते हुए द्रौपदी ने अपने संवाद को गति दी। द्रौपदी के सामने ऐसी स्थितियां थी कि वह विपदा में होते हुए भी शक्तिपूर्ण थी। भीमसेन बलवान गदाधारी थे, जिनके बल की चर्चा दूर–दूर तक फैली थी। अर्जुन धैर्यवान और बेहद कुशल धनुर्धारी थे, जो अपने विवेक के लिए जग प्रसिद्ध थे। और इन दोनों के संग नकुल और सहदेव भी थे जोकि सुकुमार और कोमल थे। द्रौपदी को

युधिष्ठिर की मानसिक स्थिति पूर्णतया ज्ञात थी। जैसे एक माँ अपने सभी बच्चों का पालन पोषण और स्नेह करती है, और उसे पता होता है कि उसका कौन सा पुत्र या पुत्री खुद को सँभाल पाने में सक्षम है और किनको उसके संरक्षण और लाड़–प्यार की अधिक आवश्यकता है, इसी तरह द्रौपदी भी यह बात भली–भाँति जानती थी कि युधिष्ठिर एक ऐसी ही माँ की भूमिका में है, जो अपने हर बच्चे की शक्ति और कमज़ोरियों को भली–भाँति जानती है और जानती है कि उसे किस तरह पोषण देना है! द्रौपदी को यह ज्ञान था कि युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को अपने कोमल पुत्रों की तरह प्रेम करते हैं।

द्रौपदी के माध्यम से स्त्री के चरित्र का यह नैसर्गिक गुण कि वो अपने सांस्कृतिक–सामाजिक कर्त्तव्यों और अधिकारों के प्रति सदैव जागरूक रहे, और उनको पूरा करने के लिए वो अगर कुछ संकल्प करें, तो उसे पूर्ण किए बिना हार नहीं मानें, सामने आता है। जब द्रौपदी ने देखा कि भीम और अर्जुन की दशा का वर्णन सुनकर भी युधिष्ठिर युद्ध के लिए तैयार नहीं हो रहे, तो उसने युधिष्ठिर के हृदय में भ्रातृ–प्रेम जगाने की अंतिम चेष्टा की। द्रौपदी को यह ज्ञान था कि युधिष्ठिर के हृदय में नकुल और सहदेव के लिए माँ के हृदय जैसी ममता थी और वो इसी को लक्ष्य करके कार्य कर रही थी।

द्रौपदी स्वयं भी नकुल और सहदेव की दशा से अति व्यथित थी। उसे पता था कि नकुल और सहदेव के कोमल शरीर कष्टप्रद स्थिति में थें। उसने युधिष्ठिर को नकुल और सहदेव, दोनों की दशा का स्मरण कराते हुए कहा कि कभी दोनों राजकुमार हस्तिनापुर में कोमल बिछौने पर सोते थे। पर उनकी अब यह दशा थी कि वो जंगल में बिना बिछौने के सोने के लिए विवश थें। इससे उनका कोमल शरीर कड़ा हो गया था। कोई सुख–सुविधा न होने के कारण इतने सुंदर दिखने वाले कुमार बढ़े हुए केशों, से व्याप्त होकर जंगली हाथियों की तरह प्रतीत हो रहे थे। द्रौपदी ने सुन्दर कुमारों की दुर्दशा पर युधिष्ठिर को उलाहना देते हुए कहा कि इन दोनों (नकुल और सहदेव) को देखते हुए भी आप धैर्य नहीं छोड़ते।[84]

किन्तु युधिष्ठिर पर द्रौपदी के वचनों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इससे द्रौपदी व्यथित तो हुई, पर अपने क्रोध का प्रदर्शन न करते हुए उन्होंने अपनी संस्कार–संपन्नता का परिचय देते हुए यही कहा कि महाराज युधिष्ठिर की मति को समझना उसके वश में नहीं। द्रौपदी ने अपने पत्नी–धर्म और इसी अधिकार को दृष्टिगोचर करते हुए यही कहा कि उनकी इस विपत्ति को सोचते हुए द्रौपदी का हृदय दुखता है और इस विषय में महाराज युधिष्ठिर की संवेदना ही नहीं जगती।[85]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नारी जो समाज में गौरवपूर्ण स्थान रखती थी वह घर की महारानी मानी जाती थी। आज भी समाज में लोग घर की वधू को बहूरानी कहकर सम्बोधित करते है वह पति की सामाज्ञी होती है। पति की सम्पत्ति पर उसका पूर्णरूपेण अधिकार होता है। यदि कोई छलपूर्वक उसकी सम्पत्ति का हनन करता है तो वह अधिकारपूर्वक पति की सम्पत्ति प्राप्त करने हेतु युद्ध तक के लिए विवश कर सकती है।

4. सांस्कृतिक अधिकार

सांस्कृतिक अधिकार से तात्पर्य है– संस्कृति की विशेषताओं के कारण प्रदत्त अधिकार। भारतीय संस्कृति में स्त्री का एक विशेष गरिमामय स्थान है। उसके बिना कोई धार्मिक कृत्य पूर्ण नहीं हो सकता। वह सहधर्मचारिणी है। वह घर की साम्राज्ञी है। गृहिणी के बिना घर की कल्पना दुरूह है। वह बच्चे की प्रथम गुरू है। अर्धांगिनी होने के कारण जो अधिकार पुरूषों के है वे समस्त अधिकार स्त्रियों के भी है। संस्कृति प्रदत्त ये समस्त अधिकार सांस्कृतिक अधिकारों की श्रेणी में वर्णन किए जा सकते हैं।

द्रौपदी ने महाराज युधिष्ठिर को उनके राजसी ठाठ–बाट और क्षत्रिय धर्म की विशेषताओं के संदर्भ में भी कई वचन कहे। मूलतः यह द्रौपदी के सांस्कृतिक अधिकारों का ही विस्तार है। जीवन जीने के मूल अधिकारों में सम्मान और अपने पद के अनुरूप जीवन जीना प्रत्येक स्त्री का अधिकार है और इसी के अनुरूप द्रौपदी के

कथन, महाराज युधिष्ठिर को संबोधित हैं। किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में द्रौपदी महाराज युधिष्ठिर से उनकी सत्ताच्युत स्थिति का वर्णन करती है। द्रौपदी उन्हें स्मरण कराती है कि पहले राज–पाट के दौरान महाराज युधिष्ठिर प्रातःकाल बन्दी–भाट–मागध आदि जनों के स्त्रोत पाठ के मंगल शब्दों से जागते थे, अब बदली परिस्थितियों में महाराज और उनके भाईयों को कुश, काश तथा कंटकों से भरी हुई जमीन में सोना पड़ता है। सुबह उठने के लिए भी मंगल–गान की अपेक्षा सियारों के अमंगल रूदन से उनकी नींद खुलती है।[86] द्रौपदी इस तुलनात्मक विवरण से महाराज की सुप्त चेतना को जगाने का प्रयास करती है।

द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर को उनके निजी कष्टों का स्मरण कराकर उनकी दुर्गति की ओर ध्यान दिलाने का प्रयास किया। राजा युधिष्ठिर को संबोधित करते हुए वे कहती है कि पहले ब्राह्मण तथा अभ्यागतों को खिलाकर, बाकी अन्न से अपनी देह को पाल–पोसकर वे सुंदर बनाए रखते थे और कीमती बिछौने पर सोते थे। वही देह जंगल के कंद–मूल का भक्षण करके दुर्बल बना ली है और उसके साथ ही यश को भी वे कम कर चुके हैं।[87]

द्रौपदी दुःखी है कि हर समय रत्न–जटित पीठिका पर रखे हुए महाराज के पाँव, पहले भेंट देने आए हुए राजाओं के मस्तक की मालाओं के पराग से सुशोभित होते थे, वे पाँव आजकल हरिण और ब्राह्मणों से नोचे हुए कुशों के वन में चलते हैं।[88]

द्रौपदी के कथनों में आर्त–वेदना और कटाक्ष–बोध होने के अपेक्षित कारणों को अनदेखा नहीं किया जा सकता। संभ्रांत और अधिकारसंपन्न स्त्री को अधिकारविहीनता से जो वेदना उत्पन्न होती है, द्रौपदी के कथन उसी व्यथा का चित्रण हैं। यह द्रौपदी के जीवट और जिजीविषा का चरम है कि वह इन विद्रूपता भरी स्थितियों में भी भावनात्मक उपालम्भों के इतर, क्षात्रधर्म की गुह्यतर शिक्षा देने के उपकर्म को भी निभाती चलती है। वह राजा युधिष्ठिर की स्थिति को परिलक्षित करते हुए कहती है कि आपकी यह हालत शत्रुओं के कारण है और इसी से मेरा मन उखड़ा हुआ–सा जान पड़ता है। शत्रुओं से अपराजित, पौरूष–संपत्ति वाले मानी जन के लिए पराभव,

उत्सव ही के समान मालूम पड़ता है।[89]वेदना से भरे ये कथन किसी भी सुसंस्कृत राजा के लिए तीक्ष्ण बाणों से कम नहीं हैं।

द्रौपदी एक तेजस्विनी नारी है, जो अपनी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सजग है। शिक्षा, संस्कार और संस्कृति–विषयक ज्ञान की चमक, उसके प्रत्येक कथन में देखी जा सकती है। उसके गुणों में इन तत्त्वों के अलावा एक और जो सांस्कृतिक संपन्नता है, वह है– प्रेरित करने का भाव। प्रेरणादायी वक्तव्यों की धनी है द्रौपदी। उदाहरणार्थ, वह कहती है– महाराज युधिष्ठिर! आप सहनशीलता को छोड़कर शत्रुओं का संहार करने के लिए उस तेज को फिर से धारण कीजिए। आप जो समझते हैं कि 'ऐसी ही प्रकृति अच्छी है। इसी से सब होगा' सो कभी नहीं। ऐसी प्रकृति से मुनि लोग अपने काम–क्रोध आदि शत्रुओं को दूर कर, योग सिद्धि करते हैं। राजा–महाराजा तो केवल क्षात्रधर्म (उग्रधर्म) से ही शत्रुओं को परास्त कर सिद्धि पाते हैं।[90] यह द्रौपदी का युधिष्ठिर को सांस्कृतिक रूप से कर्त्तव्य बोध कराने के लिए उपक्रम है।

द्रौपदी कथनों की बाणावली आगे बढ़ाती हुई कहती है – अगर तेजस्वियों में आगे गिनने लायक, यशरूपी धन वाले आप लोगों के जैसे महापुरूष, इस तरह अत्यन्त दुःसह दुःख पाकर भी चुपचाप बैठे रहेंगे, तो हाय! मनस्विता बेचारी मानो निरवलंब होकर खत्म हो गई।[91]

द्रौपदी के हृदय में राजधर्म और कुलीन संस्कृति का पालन न करने वाले युधिष्ठिर को कर्त्तव्य–पालन की शिक्षा देते हुए क्षोभ तो है ही, कुछ–कुछ क्रोध भी है, जो वह छिपा नहीं पाती। वह कहती है– अगर आप पराक्रम को दूर कर, केवल शांति को ही सुख का साधन (सहायक) समझते हैं, तो आप राजचिह्न स्वरूप इस धनुष को दूर कर और जटा बढ़ाकर अग्नि में हवन कीजिए।[92] जटाधारी और हवन करने वाले साधु धार्मिक संस्कृति के रक्षक हैं, इसलिए द्रौपदी प्रकारांतर से युधिष्ठिर को उत्तेजित कर रही है।

यही नहीं, द्रौपदी कूटनीतिज्ञता का परिचय देते हुए महाराज को साथ–ही–साथ कह डालती है– सदा कपट (दगा) करने वाले दुश्मनों से समय की प्रतीक्षा करते रहना ठीक नहीं; क्योंकि यश की इच्छा रखने वाले राजा लोग छल से दुश्मनों की सँधि तोड़कर सत्यानाश करते हैं। आप तो निश्चिंत हैं, यह ठीक नहीं है।[93]

किरातार्जुनीयम् में प्रकरण है कि विजय पाने के लिए व्यासजी ने अर्जुन को कठोर तपस्या करके दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए कहा। व्यासजी के परामर्श और आज्ञा को मानकर, अर्जुन ने द्रौपदी और चारों पाँडवों को छोड़कर, घोर तपस्या करने के लिए जाने का निश्चय किया।

जैसे ही द्रौपदी को अर्जुन के इस निर्णय का ज्ञान हुआ, उसे शोकरूपी अन्धकार ने घेर लिया। एक स्त्री के चरित्र का एक पक्ष यह भी है कि वह अपने पति के बिछोह से बचने के लिए किसी भी अस्त्र का उपयोग करे, चाहे वह अश्रुधारा ही क्यों न हो। द्रौपदी, अर्जुन को जाने से रोक सकती थी। पर वो एक विवेकवान और धैर्यवान स्त्री थी। वो यह जानती थी कि व्यासजी का कहना सर्वथा उचित था और अर्जुन का दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिए जाना श्रेयस्कर होगा।

द्रौपदी एक सांस्कृतिक रूप से परिपक्व स्त्री थी जो अपनी अभिव्यक्ति के परिणामों को भली–भाँति जानती थी। इसलिए वो यह जानती थी कि अर्जुन से अश्रु भरे नेत्रों से मिलना अमंगल होगा। अतः उसने अति धैर्य का परिचय दिया, अपने आपको संयमित किया और पाले के बिन्दुओं से भरे हुए कमल के समान, आँसुओं से डबडबाती आँखें अर्जुन से न मिलाईं। द्रौपदी का यह व्यवहार उसकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता और उच्च मर्यादा का परिचायक है।[94]

किरातार्जुनीयम् में कवि भारवि ने द्रौपदी के रूप में सांस्कृतिक अधिकारों से संपन्न ऐसी स्त्री का चरित्र–चित्रण किया है, जो स्त्री के अधिकारों, उसके सांस्कृतिक–सामाजिक कर्त्तव्यों और अधिकारों, उसके चरित्र और समाज के उत्पीड़न

से जन्मी उसकी वेदना और दुःख को संपूर्ण गहनता से प्रकट करती है। कवि ने द्रौपदी के द्वारा यह दर्शाया है कि स्त्री, परिवार और समाज से अत्यन्त वेदना, अपमान और दुख सहने के पश्चात् भी अपने सब अधिकारों की रक्षा करती है और कर्त्तव्यों का पालन करने से भी नहीं चूकती।

द्रौपदी यह जानती थी कि पांडव बंधु, कौरव रूपी शत्रुओं के कपट–कीचड़ में फँस चुके थे, पर यह सब होने के पश्चात् भी द्रौपदी ने अति धैर्य का परिचय देते हुए, अपनी पीड़ा और दुःख पर नियंत्रण पाकर, अपने अधिकारों को महत्त्व दिया और अर्जुन से कहा कि जब तक वो अपनी तपस्या की सिद्धि नहीं पा लेते, वो उसके (द्रौपदी) बिना उत्कण्ठित न हों।[95]

यह द्रौपदी की सहनशीलता का जीवंत उदाहरण होने के साथ–साथ एक बुद्धिमान और परिपक्व स्त्री होने का भी सूचक है। उसे कुलीन संस्कृति का पूर्ण ज्ञान था। उसे ज्ञात था कि कार्यसिद्धि के लिए मनुष्य को क्या करना श्रेयस्कर होगा! इसी का उल्लेख करते हुए द्रौपदी अर्जुन को प्रेरणा देने के लिए कहती है कि लोग अनेक प्रकार के कार्यो को सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। कोई यश मिलने की इच्छा से, कोई सुख की चाह से, कोई सब से अलग, कुछ असाधारण कार्य करने की इच्छा से कार्य करते हैं, ऐसे उद्योगी लोग उत्कण्ठा को त्यागकर काम करते हैं, तब एक उत्कण्ठिता स्त्री की तरह, कार्यसिद्धि उनकी गोद में दौड़कर पहुँच जाती है।[96]

जब एक स्त्री किसी को पाने के लिए उत्कण्ठित या व्यग्र होती है, तो वह अपने आपको रोक नहीं पाती और बिना समाज की परवाह किए, लोक–लज्जा त्यागकर, दौड़कर अपने प्रिय की गोद में चली जाती है। इसी तरह जब एक व्यक्ति किसी भी तरह का कोई कार्य सिद्ध करने के लिए अग्रसर होता है, और वो किसी भी उत्कण्ठा की परवाह नहीं करता तो निश्चित ही, कार्यसिद्धि प्राप्त करता है।

द्रौपदी एक सबल नारी थी। उसने द्यूत–क्रीड़ा से लेकर महाभारत तक अनेक अपमान और दुःख सहे, पर उसके धैर्य का बाँध नहीं टूटा। वह एक ऊँची और

मजबूत चट्टान की भाँति, अपमान और दुःख रूपी नदी के हर वेग को सहती रही, पर उसकी अपने अधिकारों के लिए लड़ने और उन्हें पाने की दृढ़ता टस–से मस नहीं हुई। पर द्रौपदी थी तो एक कोमल–हृदया स्त्री ही। एक स्त्री का हृदय समाज के हर दुःख को सह लेता है, पर जो हृदय से जुड़े हैं और अति प्रिय हैं, उनका बिछोह नहीं सह पाता। दृढ़–निश्चयी द्रौपदी भी अर्जुन का बिछोह नहीं सह पा रही थी। वो चाहती थी कि अर्जुन तपस्या से सिद्धि प्राप्त करके शत्रुओं का नाश करे, वो अर्जुन को रोकना भी नहीं चाहती थी, और वो बिछोह के कारण उत्पन्न हृदय की पीड़ा का बयान भी करना चाहती थी, इसलिए नारी की अभिव्यक्ति के अधिकार का उपयोग करते हुए वो अर्जुन को अपने हृदय की पीड़ा कहने लगी। उसने अर्जुन से कहा कि उसे यह ज्ञान है कि ब्रह्मा से लोगों की रक्षा के लिए पैदा की गई क्षत्रिय जाति का तेजोबल रूपी धन, उसका दुःख चुरा रहा है, विजय ही जिसका मुख्य लक्ष्य है, ऐसी मन की स्थिति वाले के प्राणों के समान प्रिय गौरव का, उसके दुःख के कारण नाश हो रहा है, अर्जुन के बिना यह सारा दुःख, अर्जुन के जाने से फिर से नया हो जाएगा।[97]

वो आगे अर्जुन से कहती है कि द्यूतक्रीड़ा में दुर्योधन और उसके भाइयों द्वारा जब उसका अपमान हो रहा था, तो लज्जा से सब राजाओं के सिर झुक गए थे, उस समय उसका हुआ अपमान, दुनिया में चाँदनी के समान फैली हुई दिगन्तव्यापी कीर्ति के समान था, यह अपमान अर्जुन के बिना फिर से नया हो जाएगा।[98]

एक पत्नी को पूर्ण अधिकार है कि वो अपने पति से हर सुख–दुःख बाँटे और उसे अपनी बात स्पष्टता से कहे, चाहे वह दुःखदायी ही क्यों न हो। द्रौपदी यह जानती थी कि अर्जुन उसके दुःख को सुनकर अति व्यथित होंगे, पर अर्जुन के बिछोह के दुःख ने उसके धैर्य के बाँध को भी तोड़ दिया था। जिस तरह एक उफनती नदी का वेग, मजबूत–से–मजबूत बाँध को भी तोड़ देता है, उसी तरह अर्जुन का द्रौपदी को छोड़कर जाना, उसके धैर्य की सीमा को लाँघ चुका था। अपनी सहृदयता को और आगे प्रकट करते हुए द्रौपदी अर्जुन से कहती है – राजसूय यज्ञ आदि से पूर्व

जगत–विजय के अवसर में दिखाए हुए पराक्रम पर भी आक्षेप करता हुआ, और जैसे अर्जुन की कीर्ति हुई ही नहीं, ऐसे लोगों में विश्वास करता हुआ और जैसे दिन का शेष, सूर्य की किरणों का सर्वनाश करता है, ऐसे ही अर्जुन की सब चीज़ों का सर्वनाश करता हुआ, उसका अपमान, अर्जुन के वियोग से नया हो जाएगा।[99]

वस्तुतः पांडवों ने राजसूय यज्ञ में बहुत पराक्रम दिखाया था और जगत्–विजय से उनकी बहुत कीर्ति हुई थी, पर द्रौपदी के अपमान ने उस कीर्ति को सर्वथा नष्ट कर दिया था। यह अपमान उनके लिए ऐसा था जैसे ढलते दिन में सूर्य की लुप्त होती किरणें बचे दिन का नाश करती हैं। द्रौपदी जान रही थी कि उसके अपने अपमान की पीड़ा अर्जुन के वियोग से पुनः सतह पर उभर आएगी।

इसलिए द्रौपदी न चाहते हुए भी अर्जुन से अपने हृदय की वेदना को बताने से स्वयं को नहीं रोक पा रही थी। यह द्रौपदी के रूप में नारी की दयनीय दशा का वर्णन है। एक नारी पूरे समाज के सामने सिर उठाकर खड़ी हो सकती है, उससे हर तरह का मुकाबला कर सकती है, पर अपनों के दुख के आगे वो हार जाती है। पति होने के नाते, अर्जुन द्रौपदी को अति–प्रिय थे और उनके बिछोह का दुःख उसके लिए असहनीय था। इसी दुःख का अर्जुन को विवरण देते हुए द्रौपदी कहती है कि जिस तरह से द्यूतक्रीड़ा में उन लोगों का अपमान हुआ, वह याद करने के भी योग्य नहीं है, तो उसे याद करके दुबारा उसे अनुभव क्या करना। पर अर्जुन के चले जाने से यह दुःख पुनः नवीन हो जाएगा। इतना अपमान और तिरस्कार सहकर, उसका हृदय जो कठोर होकर सूख चुका था, फिर से पिघल जाएगा। इसका उल्लेख करते हुए द्रौपदी कहती है कि इस अपमान से, उसके हृदय पर जो घाव लगे थे, वो संसार को देखते–सुनते सूख गए थे। उसके आँसू भी सूख गए थे। पर अर्जुन से विरह की वेदना की चोट से ये घाव फिर ताजा हो जाएँगे और आँसू बनकर निकलेंगे।[100]यह द्रौपदी की सांस्कृतिक संवेदना का परिचायक है।

यह कैसी विडंबना है कि एक ओर समाज नारी को प्रताड़ित करता है, हरसंभव दुःख और वेदना देता है, और दूसरी ओर उससे प्रतिकार न करने और सब कुछ चुपचाप सहने की अपेक्षा भी करता है। पर द्रौपदी ने अपने सम्मान के अधिकार का पूर्ण उपयोग किया और अपना अधिकार और खोया हुआ मान–सम्मान पाने का हरसम्भव प्रयास किया।

द्रौपदी अर्जुन के विरह से हृदय में व्याप्त वेदना को छुपा नहीं पा रही थी। उसकी वेदना अब सब बाँध तोड़ चुकी थी। सो वो अर्जुन को कटाक्ष कर कहने लगी।

द्रौपदी अर्जुन को यह सब कहना नहीं चाहती थी, पर उसके हृदय की पीड़ा ने उसके वचनों को कठोर बना दिया और अर्जुन को उपालम्भ देते हुए वो कहती है कि जिस तरह एक हाथी के दाँत न होने से वह असहाय हो जाता है, उसी तरह अर्जुन के गौरव का नाश होने पर वह लुप्ततेज हो गया है। द्रौपदी को अर्जुन भिन्न रूप में बने हुए प्रतीत हो रहे थे। जैसे आश्विन–कार्तिक के बादलों से ढकने पर सूर्य तेजहीन प्रतीत होता है, उसी तरह शत्रु के प्रताप से ढकने पर, अर्जुन जिनका तेज विशेष और अद्वितीय था, वो शोभा नहीं पा रहे थे।[101]द्रौपदी एक कुशल नीतिपरक साम्राज्ञी ही नहीं थी, बल्कि वो सांस्कृतिक ज्ञान में भी निपुण थी। उसका बोध उसके अधिकारसंपन्न होने की घोषणा करता है।

इस उदाहरण पर विचार करें– एक हाथी की शोभा और शौर्य उसके दाँतों की वजह से होती है। उसके दाँत उसका बल होते हैं। वो अपने दाँतों से किसी से भी मुकाबला कर सकता है। उनकी वजह से वो जंगल के राजा शेर को भी परास्त करने की क्षमता रखता है। पर दाँतों के बिना हाथी नष्ट हो जाता है। द्रौपदी को अर्जुन ऐसे ही दाँतों के बिना नष्ट हुए हाथी प्रतीत हो रहे थे और वो अर्जुन का यह भिन्न रूप सह नहीं पा रही थी।

अर्जुन का तेज जग–प्रसिद्ध था। अपनी विलक्षण धनुर्विद्या और सुमधुर व्यवहार से अर्जुन ने चारों ओर ख्याति प्राप्त की थी। पर शत्रु के प्रताप से उनका विशेष तेज नष्ट हो गया था, जिसे द्रौपदी के लिए सह पाना असंभव था।

द्रौपदी अपने हृदय की व्यथा को दबा नहीं पा रही थी। द्यूतक्रीड़ा के अपमान से वो पहले ही आहत और व्यथित थी, फिर भी उसने इस अपमान के घूँट को पी लिया और अपने विशिष्ट गुणों के बल पर वो युधिष्ठिर को युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करती रही। पर जब उसे यह ज्ञान हुआ कि अर्जुन सिद्धि प्राप्त करने के लिए उसे व अन्य पांडव बंधुओं को छोड़कर जा रहे हैं, तो उसके धैर्य की सीमा समाप्त हो गई और वो न चाहते हुए भी अर्जुन से अपने हृदय की व्यथा कहने लगी। उसके हृदय की वेदना इतनी प्रबल हो गई कि वो अर्जुन से कटु वचन तक कहने पर उतर आई। यह अलग बात है कि द्रौपदी के वचनों में उसकी सांस्कृतिक गरिमा निरंतर बनी रही।

द्रौपदी ने अर्जुन को कई उपालम्भ दिए। उदाहरणार्थ, द्रौपदी ने कहा कि अर्जुन कर्महीन रहने के कारण लज्जित थे और हथियारों के बिना शोभित भी नहीं हो पा रहे थे। उनके यश की कमी हो जाने के कारण, वो जल के बिना समुद्र की तरह, कोई दूसरे ही द्रव्य बन गए थे।

जबसे द्रौपदी अर्जुन की अर्धांगिनी के रूप में हस्तिानपुर आई थी, तबसे उन्होंने अर्जुन को हमेशा एक पराक्रमी और हर पल कर्त्तव्यपालन में रत, धनुर्धारी के रूप में देखा था। वे हमेशा कर्मठ रहे और सफलता उनकी संगिनी बनी रही। पर द्यूतक्रीड़ा में पराजय के पश्चात् अर्जुन कोई भी कार्य नहीं कर पा रहे थे, वे कर्त्तव्यच्युत थे और पराजय–बोध से ग्रसित थे। द्रौपदी के लिए अर्जुन की अकर्मण्यता असहनीय थी। धनुर्धारी अर्जुन की धनुष–बाण के बिना ऐसी ही स्थिति थी, जैसे सेना के बिना राजा। इससे अर्जुन का यश और तेज कम हो गया था।[102]

समुद्र का जल के बिना कोई अस्तित्व नहीं, इसी तरह एक धनुर्धारी का उसके धनुष के बिना कोई प्रयोजन नहीं। एक नारी हर दुःख, हर अपमान सह सकती है, पर

वो अपने आत्म–सम्मान और गरिमा पर आँच स्वीकार नहीं कर पाती। अपने आत्म–सम्मान की मृत्यु की अपेक्षा वो अपनी मृत्यु अधिक श्रेयस्कर समझती है। द्रौपदी एक स्वाभिमानी स्त्री थी। वो अपने आत्म–गौरव और गरिमा की रक्षा हेतु कुछ भी करने के लिए कटिबद्ध थी। किन्तु उसका दुर्भाग्य यह था कि द्यूतक्रीड़ा के पश्चात् उसका भरी सभा में बेहद अपमान हुआ। जब दुःशासन उसे भरी सभा में बालों से खींचकर लाया, वह पल उसके लिए मृत्यु से भी अधिक कष्टकर था। वो ऐसे अपमान से, अपनी मृत्यु का वरण करना उपयुक्त समझती। लेकिन द्रौपदी इस अपमान के सारे कड़वे घूँट पी गई। यह उसके संस्कारों के बल के बूते पर संभव हो सका। पर जब द्रौपदी के समक्ष अर्जुन की यात्रा का औचित्य और लक्ष्य प्रकट हुआ, तो उसके अपमान की त्रासद व्यथा–कथा फिर से स्मृतियों के ढेर से निकल आई। द्रौपदी अर्जुन को इस त्रासदी का स्मरण कराते हुए दुःशासन के घृणित कर्म के विषय में बोली। द्रौपदी ने अपनी व्यथा को शब्द आधार देते हुए, धनुर्धारी पर कई व्यंग्यबाण कसे। द्रौपदी ने कटु स्वर में पूछा – जब दुःशासन ने द्रौपदी को बालों से खींचा, उस समय अर्जुन का पराक्रम और बल कहाँ गया था? द्रौपदी ने चुनौती दी कि अगर यह वही वीर और धनुर्धर अर्जुन है, तो वो दुःशासन के लिए कलंक को पखारते क्यों नहीं।[103]

हस्तिनापुर की कुलवधू और साम्राज्ञी और पाँडवों की धर्मपत्नी का इस तरह भरी सभा में अपमान, न केवल पाँडवों के लिए एक घृणित कलंक भरी घटना थी, अपितु तत्कालीन समाज के लिए भी सांस्कृतिक ग्रहण से कम नहीं थी। एक स्त्री, घर की स्वामिनी के साथ–साथ घर की मर्यादा और लज्जा भी होती है। उसका अपमान पूरे घर का अपमान होता है। एक स्त्री ही अपने परिवार के मान का सूचक है। स्त्री का अपमान परिवार का अपमान है और स्त्री की प्रशंसा परिवार की प्रशंसा है। जब द्रौपदी का अपमान हुआ, तो वो केवल द्रौपदी का नहीं, पूरे हस्तिनापुर और पाण्डवों का अपमान था। यह द्रौपदी पर कलंक नहीं था, पूरे साम्राज्य और समाज पर लगा कलंक था। जहाँ एक स्त्री का मान–सम्मान नहीं होता, जहाँ एक स्त्री की मर्यादा की

रक्षा नहीं की जाती, वहाँ सर्वनाश निश्चित है। इस सबकी याद दिलाते हुए ही द्रौपदी अर्जुन को इस कलंक से मुक्त होने के लिए कहती है। द्रौपदी एक सशक्त, स्वाभिमानी और सबल स्त्री होने के साथ–साथ एक ज्ञानवान स्त्री भी थी। वह राजनीतिक और सामाजिक ज्ञान की भी धनी थी। द्रौपदी एक ऐसी स्त्री का प्रतीक है, जो सर्वगुण सम्पन्न है, चाहे वो रूप, गुण, सौंदर्य, का विषय हो अथवा अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और उनकी रक्षा या फिर अपनी गरिमा और स्वाभिमान के प्रति जागरूकता हो।

द्रौपदी अपने इन्हीं अधिकारों के बोध का उपयोग करते हुए अर्जुन से कहती है कि जो सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ है, वही क्षत्रिय है। जिसकी संग्राम के कामों में शक्ति है, वही धनुष है। इन दोनों के अर्थ–निरर्थ हो जाने पर भी जो लोग धनुष धारण किए हुए हैं, वो इन दोनों को उसी तरह व्यर्थ या अर्थ शून्य करते हैं, जिस तरह व्याकरण के नियम से विरूद्ध बात की जाती है।[104]

एक क्षत्रिय का धर्म क्या है? एक क्षत्रिय का केवल एक ही धर्म है – हर प्रकार से सज्जनों की रक्षा करना। केवल एक क्षत्रिय ही सज्जनों की रक्षा करने में समर्थ होता है। यह कार्य ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र नहीं कर सकते।

एक धनुष का कार्य क्या है? धनुष का केवल एक ही कार्य है – युद्ध में काम आना। यदि एक क्षत्रिय रक्षा नहीं करता और एक धनुष युद्ध में काम नहीं आता, तो ये दोनों निरर्थक हैं और उनकी कोई उपयोगिता नहीं, उनका कोई प्रयोजन नहीं, वो निःस्सार हैं।

व्याकरण का उपयोग करने के लिए उसमें नियम हैं और उसके विरूद्ध जाकर उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। इसी तरह क्षत्रिय का एक धर्म है और धनुष का एक उपयोग है, इसके विरूद्ध होने पर इनका कोई अर्थ नहीं, ये अर्थशून्य हो जाते हैं।

अर्जुन के जाने का ज्ञान होने पर द्रौपदी के हृदय की वेदना जब प्रगाढ़ हो गई, तो उसने अर्जुन को इस प्रकार कई उपालम्भ दिए। पर द्रौपदी को हृदय में यह ज्ञात था कि अर्जुन एक विलक्षण और अद्वितीय धनुर्धारी थे, जिनका पूरे विश्व में कोई सामना नहीं कर सकता था।

द्रौपदी अपनी सांस्कृतिक जवाबदेही से उपजे बोध के कारण इस तथ्य से भी परिचित थी कि एक पत्नी ही पति की परछाई होती है और उसका कर्त्तव्य है कि वो अपने पति का हर परिस्थिति में साथ दे और हर प्रयत्न करके उसका मानसिक बल बढ़ाए।

द्रौपदी यह जानती थी कि द्यूतक्रीड़ा में जो कुछ भी हुआ, वो कौरवों द्वारा रचा प्रपंच था और उन्होंने पांडवों को धोखे से पराजित किया था। एक स्त्री जब पत्नी का रूप ले लेती है, तो वो अपने पति की हार या असफलता पर चाहे जितने कटाक्ष या कटुवचन कह ले, पर वो कभी उसे हतोत्साहित नहीं होने देती। हर अपमान और दुःख सहकर भी, चाहे उसे पता हो कि ये सब उसके पति की दुर्बलता के कारण ही हुए हैं, पर फिर भी वो अपने पति के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर खड़ी रहती है, उसकी हर तरह से सहायता करती है, और उसका मनोबल बढ़ाती है और उसे टूटने नहीं देती। यह स्त्री के सांस्कृतिक अधिकारों का व्यवहारिक पक्ष है और द्रौपदी के चरित्र में तो यह निरंतर परिलक्षित होता है।

इसी कर्तव्य को उजागर करते हुए द्रौपदी, अर्जुन का मनोबल बढ़ाने के लिए उससे कहती है कि जिस प्रकार धोखे से, हाथी सिंह के कन्धे के बाल नोच लेता है, उसी तरह धोखे से शत्रुओं ने उन्हें अपमानित किया। यह कहकर वह अर्जुन को सांत्वना देने का प्रयास भी करती है। वो अर्जुन को यह विश्वास दिलाना चाहती है कि अर्जुन और पांडवों की हार उनकी दुर्बलता के कारण नहीं, कौरवों के धोखे के कारण हुई।

अर्जुन को उसके कर्त्तव्य का भान कराते हुए द्रौपदी अर्जुन से कहती है कि अब जैसे दिन की शोभा सूर्य का ही आश्रय करती है, इसी तरह उनकी विजय–अभिलाषा के कार्य का भार अब अर्जुन पर ही है।[105]

एक पत्नी का यह सांस्कृतिक कर्त्तव्य है कि वह अपने पति का हर प्रकार से साथ दे, यह करते हुए उसे किसी भी साधन का उपयोग करना पड़े– चाहे वो कटाक्ष हों, कटु स्वर हों, अभद्र वाणी हो, उत्तेजना विकसित करने के लिए कोई वाक्य हों, प्रशंसा भरे वाक्य हों या उत्साहवर्धक बातें हों।

द्रौपदी अपने इस कर्त्तव्य को भली–भाँति जानती थी। वो यह भी समझती थी कि अर्जुन वाणी से कुछ नहीं कहे, पर शत्रुओं के धोखे से हुई हार के कारण वो हतोत्साहित हो रहे होंगे, इसलिए अर्जुन के उत्साहवर्धन के लिए द्रौपदी उनसे कहती है कि जो व्यक्ति सब लोगों से ज्यादा बल, पौरूष को पाकर, क्रिया से उसको पूरा सार्थक करता है, जब किसी सभा में आदमियों की गिनती होने लगती है, उस वक्त उस व्यक्ति की पहली संख्या होती है, अर्थात् उसे सबसे पहले गिना जाता है।[106]

कोई व्यक्ति तभी अग्रगण्य माना जाता है, जब वो ऐसे कार्य करता है, जिससे उसका बल और पौरूष सार्थक हो सकें। द्रौपदी अर्जुन की इस विलक्षणता को जानती थी और उसी को उजागर करने के भाव से वो अर्जुन को उत्साहित करती है।

भारतीय संस्कृति में पति–पत्नी एक–दूसरे के पूरक हैं और यह पूर्णता केवल तभी फलित होती है, जब स्त्री को अपने लिए नियोजित अधिकारों का ज्ञान और उनकी उपलब्धि भी हो। यहाँ पति की शुभ–चिंतक द्रौपदी इसका सटीक उदाहरण है। अर्जुन की मंगलकामना करते हुए कहती है कि अगर प्रियजनो में कारणों को जाने बिना, जिनके सोचने से मन घबरा जाता है और विजय के समय जाते हुए अगर अर्जुन को पाप शंकाएँ होती हो, तो इन्द्र देवता उनका नाश कर देते हैं।[107]

द्रौपदी नीति–कुशलता दर्शाते हुए अर्जुन से कहती है कि जिस स्थान पर शंका की भी संभावना नहीं है, ऐसे स्थान में अकेले रहते हुए भी वे (अर्जुन) असावधान न रहें। ऐसा इसलिए क्योंकि जिन दुष्टों की आत्मा राग और द्वेष से घिरी हैं, उनका दिल सज्जन पुरूषों के लिए अनिष्टकारक हो जाता है।[108]

सांस्कृतिक रूप से समृद्ध और सामर्थ्यवान एक स्त्री, एक पत्नी होने के साथ–साथ, आवश्यकता पड़ने पर अपने पति के लिए मार्गदर्शक भी बन सकती है। द्रौपदी को यह ज्ञात था कि अर्जुन जब तपस्या करने जाएँगे, तो वो बिल्कुल अकेले होंगे। राग और द्वेष से घिरा दुर्योधन इस परिस्थिति का लाभ उठा सकता है, इसलिए समझदारी का परिचय देते हुए द्रौपदी अर्जुन को सावधान रहने की चेतावनी देती है।

द्रौपदी के द्वारा कवि भारवि यह दर्शाना चाहते हैं कि इतनी विषम अवस्था में भी एक स्त्री अपना धैर्य नहीं खोती और अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहकर अपने पति के हित के लिए हरसम्भव प्रयत्न करती है।

एक पत्नी का यह सांस्कृतिक अधिकार है कि वो अपने पति के हित और गौरव की रक्षा करे। उसका यह सांस्कृतिक कर्त्तव्य भी है। किरातार्जुनीयम्, द्रौपदी के माध्यम से इस तथ्य को उजागर करता है। अति संवेदनशील नारी होते हुए भी द्रौपदी ने अपनी सारी संवेदना और पीड़ा को, जो अर्जुन के जाने की सूचना से पुनः उजागर हो गई थी, उसे रोक लिया और अर्जुन के उत्साहवर्धन की पूरी चेष्टा करने लगी। द्रौपदी की चेष्टा पूर्ण हुई, जिसके स्मरण कराने से शत्रु का अपकार पुनः नवीन होकर उमड़ पड़ा है, ऐसी द्रौपदी की बात को सुनकर अर्जुन अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे, उसी तरह जैसे उत्तर दिशा को पाकर सूर्य प्रज्वलित हो उठता है।[109]

अर्जुन का इस प्रकार प्रदीप्त होना नारी की महान् दृढ़–शक्ति का परिचायक है। यह इस बात को उजागर करता है कि नारी अगर कोई कार्य करने का दृढ़ निश्चय कर ले, तो वो न रूकती है, न थकती है, न हार मानती है और कार्य में सफलता पाकर ही चैन की साँस लेती है।

सांस्कृतिक अधिकारों के क्षेत्र में नारी को अधिकांशतः समाज की ओर से कई विशेषाधिकार सुलभ रहे हैं। द्रौपदी के जीवन चरित्र से हमें ऐसा देखने को मिलता है। यद्यपि, द्रौपदी अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए जीवनपर्यंत संघर्ष करती रही, परंतु उन अधिकारों की नींव पर ही उसने अपने संघर्ष की भूमि विकसित की, यह भी प्रमाणित होता है। जहां किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी अपने विवाहित जीवन में परिस्थितिवश उत्पन्न संकटों के निवारण के लिए अपने अधिकारों का प्रयोग करती दिखती है। वहीं बृहत्त्रयी के एक अन्य महत्वपूर्ण महाकाव्य नैषधीयचरितम् में महाकवि श्रीहर्ष, नल और दमयंती की कथा के माध्यम से स्वयंवर के अधिकार को स्थापित करते हैं। दमयंती को मिला स्वयंवर का अधिकार, स्त्री को तत्कालीन समाज द्वारा दिए गए सांस्कृतिक अधिकार की सबसे बड़ी उपलब्धि है। राजा की पुत्री दमयंती अपने पिता से अपने पति के घर जाने के महत्वपूर्ण संस्कार को जिस प्रकार निभाती है, वह स़्त्री की अधिकार सत्ता को प्रमुखता से सामने लाती है।

दमयंती की स्वयंवर–सभा में श्रेष्ठ राजगण उपस्थित हुए थे। अयोध्या के ऋतुपर्ण, महाकुलीन पाण्ड्यनरेश, महेन्द्रगिरी–देश कलिंगाधिपति, काँचीपुरी के अधिपति, नेपाल राज्य के अधीश्वर, मलयाद्रिनरेश, कामरूपाधिपति, उत्कलेश, कीकटप्रभु आदि। ये सब एक से एक वीर, विलासी और श्रृंगारी थे।

जो नृपगण विलम्ब से आए थे, वे आरम्भ में आशान्वित नहीं थे, उन्हें यह संदेह था कि उनके विलम्ब से आने के कारण कहीं दमयन्ती द्वारा चुने जाने के सौभाग्य से वे वंचित न हो जाएँ। परंतु सभा में पहुँचकर उनकी आशा का दीपक फिर से प्रज्वलित हो गया। उन्होंने देखा कि उनसे पहले पहुँचे नरेश लम्बी–लम्बी साँसे भर रहे हैं। यह देखकर वे समझ गए कि उनसे पहले आए राजा दमयन्ती द्वारा अस्वीकृत हो जाने पर निराश हैं। ऐसी परिस्थिति देखकर, जो राजा अभी आए थे, उनकी आशा की किरणें फिर से जग गईं। इस आशा से कि कदाचित् दमयन्ती उन्हें वर लेगी, वे हर्षित होने लगे। उनके हृदय में आशा की उम्मीद इसलिए जगी क्योंकि दमयन्ती

पहले आए राजाओं के प्रति अरूचि दिखा चुकी थी। उनके हर्ष और उल्लास की सीमा न रही और स्वयंवर का क्रियाकलाप पुनः चलने लगा।[110]

दयमन्ती के समक्ष, स्वयंवर के लिए अनेक शूरवीर और पराक्रमी राजा उपस्थित थे। पर उसे यह अधिकार था कि वो किसी को भी चुने। इसी अधिकार का उपयोग करते हुए दमयन्ती ने सबको अस्वीकृत कर दिया। इस अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि राजागण को अस्वीकृत करते हुए दमयन्ती को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि उसने राजागणों को क्यों अस्वीकृत किया! और न ही राजागणों को यह अधिकार था कि दमयन्ती के मना करने पर वे बुरा मानें या दमयन्ती से कोई सवाल–जवाब करें।

कवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती द्वारा स्त्री के सांस्कृतिक वैभव को दर्शाया है, साथ ही नारी के शिष्टाचार और सभ्यता को भी प्रकाशित किया है। दमयन्ती नए आए नृपों को भी देखना चाहती थी, पर उसे नारी की लज्जा और मान–मर्यादा की रक्षा करने का भी पूर्ण ज्ञान था। वो अपनी बात कहने में भी अति निपुण थी। शिविकाहारिणियों तक दमयन्ती अपनी बात पहुँचाना चाहती थी और वो यह भी नहीं चाहती थी कि किसी को इस बात का आभास तक हो। इसलिए उसने धीरे से शिविकाहारिणियों को अपने पैर की ठोकर से संकेत किया। शिविकाहारिणी उसकी बात समझ गई कि वो नए आए नृपों को देखना चाहती है। उसका अभिप्राय समझकर शिविकाहारिणियों ने पालकी को राजाओं के समूह के बीच में रख दिया और बहाना किया कि चलते–चलते थक गयी है और कुछ देर विश्राम करना चाहती हैं।[111] दमयन्ती का यह व्यवहार स्त्री की व्यवहार–कुशलता और शालीनता को दर्शाता है। लोक–लाज और समाज की मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए अपनी बात कैसे कहनी है, यह स्त्री अपनी सूझ–बूझ से करना जानती है। यह उसकी सांस्कृतिक उत्कृष्टता का द्योतक है।

सरस्वती को स्वयंवर में यह कार्य सौंपा गया था कि जो भी राजा दमयन्ती के समक्ष आएँ, सरस्वती उनके विषय में विस्तृत रूप से बताए। सरस्वती ने राजा ऋतुपर्ण की अत्यधिक प्रशंसा की। दमयन्ती एक सभ्य और संस्कारित स्त्री थी। उसे राजा ऋतुपर्ण में कोई रूचि नहीं थी, क्योंकि उसका अनुराग तो सोमवंशी नल के प्रति था। फिर भी शिष्टाचारवश दमयन्ती ने सरस्वती के मुख से निकली राजा ऋतुपर्ण की प्रशंसा सुनकर सिर हिला दिया। एक सभ्य स्त्री में यह अद्वितीय गुण होता है कि उसे कोई बात चाहे पसंद हो या न हो, वो कहने वाले के आत्मसम्मान को ठेस न पहुँचे, इसलिए उसकी बात को ध्यान से सुनती है और अपनी अस्वीकृति उजागर नहीं करती। एक स्त्री का हृदय एक विशाल समुद्र की तरह होता है, जिसमें हर सुख–दुःख, हर्ष–पीड़ा, स्वीकृति–अस्वीकृति, मान–अपमान, सब समा जाता है, पर ऊपर से वो शांत समुद्र की तरह ही प्रतीत होती है।

दमयन्ती का हृदय भी केवल राजा नल से जुड़ा था और किसी के बारे में सोचना भी वो दुष्कर समझती थी। पर उसने अपने हृदय की यह अवस्था कभी सामने नहीं आने दी और कोई रूचि न होते हुए भी सरस्वती की कही बात ध्यान से सुनी और सिर भी हिला दिया।[112]

कवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में एक संस्कारवान स्त्री के चरित्र में चंचलता के तत्त्व का भी उल्लेख किया है। एक स़्त्री जिससे प्रेम करती है, उसी को समर्पित होती है, यह उसका संस्कार भी होता है, पर वो स्वभाव से चंचल होने के कारण खुद को कभी–कभी रोक भी नहीं पाती।

दमयन्ती का अनुराग राजा नल के प्रति था, तो वो पांडवनरेश को पूर्णतया नहीं देखना चाहती थी। पर अपने चंचल स्वभाव के कारण वो अपने हृदय को समझाने लगी कि एक बार नयन–कटाक्ष से क्षण भर को देख लेना तो उचित ही होगा।[113]

एक स्त्री का हृदय कितना विशाल और प्रेम से परिपूर्ण होता है, यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उसके लिए काम करने वाली उनसे हृदय से इतनी जुड़ी थीं कि उनके बिना कहे, उनका इशारा तक समझती थीं।

दमयन्ती की सहवर्तिनी दासी, दमयन्ती के बिना कुछ कहे, उसके संकेतों से ही उसके मनोभाव समझ रही थी कि वो केवल नल के प्रति अनुराग रखती है और पांडवनरेश में उसे कोई रूचि नहीं है। अपनी स्वामिनी की तरह दमयन्ती की दासी भी अति चतुर और शिष्ट थी। वो अपनी बात बिना कहे, कहना जानती थी। अति बुद्धिमता का परिचय देते हुए उसने दमयन्ती से कहा कि वह चित्र देखें कि एक मूर्ख कौआ चंचल ध्वजा पर पैर रखने की उपहास से भरी चेष्टा कर रहा है। इससे दो भाव प्रकट हो गए। एक यह कि दमयन्ती को पांडवनरेश में कोई रूचि नहीं है, और उसकी अपेक्षा वह कौआ देखना अधिक उचित मानती है। इसलिए भगवती को पांडवनरेश की प्रशंसा करना समाप्त कर देना चाहिए। और दूसरा यह कि पांडवनरेश की दमयन्ती के प्रति आकांक्षा उसी तरह उपहास से परिपूर्ण है, जिस तरह एक कौआ वायु से फरफराती ध्वजा पर पैर रखने की चेष्टा करता है। यह अनुचित, उपहास से पूर्ण और असंभव है।[114]

एक स्त्री अपने चातुर्य से अपने हर भाव को प्रकट कर सकती है, यह स्त्री के चरित्र में एक विलक्षण गुण है। महाकवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती के द्वारा स्त्री के चरित्र में व्याप्त चातुर्य का वर्णन किया है।

दमयंती को नल नरेश के अतिरिक्त किसी और राजा में कोई रूचि नहीं थी। पर वो औपचारिकता और शिष्टाचार–वश महेन्द्रचलाधीश का विवरण सुनती रही। पर जब वो उनका विवरण सुनते–सुनते ऊब गई, तो उसने अपनी चतुराई का उपयोग किया और अपने मुख में उंगली रख ली, उसी तरह जैसे कमल में कमलनाल होती है। यह आश्चर्य और वचन–निषेध की संकेतक मुद्रा है। ऊपर से तो सबको यह लग रहा था कि दमयंती महेन्द्राचलाधीश का विवरण सुनकर आश्चर्य–चकित है, पर साथ–ही साथ

इस संकेत से उसकी अरूचि भी प्रकट हो गई कि इस विवरण को समाप्त किया जाय। लोगों ने इस वर्णन–निषेधार्थक संकेत को दमयंती का महेन्द्रचलाधीश के गुणों के प्रति आश्चर्य–चकित होना संभावित किया।[115]

एक स्त्री, दूसरी स्त्री, जिसका उससे तादात्म्य हो, उसका संकेत और भाव तुरंत समझ जाती है। यह स्त्रियों की समझदारी का प्रतीक है। पुरुष की तुलना में एक स्त्री, दूसरी स्त्री के भाव तुरंत समझ जाती है। दमयन्ती के संकेत को वहाँ सभा में बैठे दूसरे राजाओं ने महेन्द्रचलाधीश के गुणों के प्रति आश्चर्यचकित होना समझा, पर सरस्वती, दमयंती का आशय तुरंत समझ गई। उसने महेन्द्रचलाधीश का गुणवर्णन समाप्त कर दिया और दूसरे राजा–कांची नरेश का वर्णन करने लगी। यह राजा कामदेव से कहीं अधिक मनोरम और अत्यन्त तेजस्वी थे।[116]

एक स्त्री का यह गुण है कि एक बार अगर वो किसी पुरूष को हृदय से स्वीकार कर लेती है, तो फिर वह किसी और की ओर दृष्टिपात नहीं करती, चाहे वह कितने ही पराक्रमी, शूरवीर, धनी या रूपवान क्यों न हों। दमयन्ती भी हृदय से नल नरेश को अपना स्वामी मान चुकी थी। वो समाज की मान–मर्यादा से भी भली–भाँति परिचित थी। उसे ज्ञात था कि यदि आप किसी को पसंद नहीं करते, तो भी उसका अनादर करना दुर्व्यवहार है। इसलिए दमयन्ती ने कांची नरेश के गुणों का अनादर नहीं किया। पर अपने होठों की मुस्कान के माध्यम से कांचीपति के प्रति अपनी अरूचि ज्ञापित कर दी। अपनी मंद मुस्कान से उसने अपना यह आशय प्रकट कर दिया कि यद्यपि कांचीपति इतने महान गुणों के स्वामी थे, पर उनके गुण वर्णन की परिधि में आते थे, पर नल नरेश के गुणों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता।[117]

एक स्त्री को यह पूर्ण अधिकार था कि स्वयंवर में अगर कोई भी राजा उसके हृदय को आकर्षित न कर पाए, तो वह सबको अस्वीकृत कर सकती थी। पराजय से लज्जित होने पर भी किसी को यह अधिकार नहीं था कि वो उस स्त्री के इस व्यवहार पर कोई प्रश्नचिन्ह लगाए या उससे कुछ अभद्र व्यवहार करे। यह स्त्री के

सांस्कृतिक अधिकार की पराकाष्ठा का परिचायक है। वस्तुतः तो ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं कि जिसमें किसी भी व्यक्ति को अस्वीकृत करने पर कोई औचित्यपूर्ण तर्क देना आवश्यक न हो। दमयन्ती के द्वारा अस्वीकृत राजाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। अनादर और पराजय से राजा लज्जा से सिर झुकाए बैठे थे। सरस्वती को इस पर खेद हुआ कि दमयन्ती को कोई नहीं भा रहा है। तब उन्होंने नेपाल नरेश की ओर दमयन्ती का ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा की।[118]

एक स्त्री का हृदय करूणा और प्रेम का कितना विशाल समुद्र है, यह उसकी दासियों की उसके प्रति भावना से पता चलता है। दमयन्ती अपनी दासियों से कितना प्रेम और सौहार्द–भरा व्यवहार करती थी, यह कवि श्रीहर्ष ने दर्शाया है। दमयन्ती ने अपनी दासियों तक को अपने मनोभाव व्यक्त करने का अधिकार दिया हुआ था। दमयन्ती ने उन्हें इतनी स्वतन्त्रता और प्रेम प्रदान किया था कि वो निडर होकर अपने भाव व्यक्त करने के अधिकार का बड़ी चतुराई से उपयोग करने में सक्षम थीं।

एक हास्य – प्रिय दासी ने देवी से नेपाल नरेश के लिए कह दिया कि वो उनके बारे में चढ़ा कर न कहें। एक मनुष्य में इतने गुण कैसे हो सकते हैं। जैसे एक संकुचित स्थान में रहने से कष्ट होता है, उसी तरह एक व्यक्ति में जब सब गुण रहेंगे, तो उन्हें कष्ट होगा।

दमयन्ती की दासी उसकी विश्वासपात्र थी। उसका दमयन्ती के प्रति बेहद अनुराग था। वो यह जानती थी कि दमयन्ती का मन कहीं अन्य अनुरक्त है, इसलिए नेपाल नरेश की प्रशंसा सुन–सुनकर वह अकुला रही थी।[119]

दमयन्ती के साथ–साथ भगवती भारती भी राजनीतिक ज्ञान में निपुण थी। उसे यह अधिकार प्राप्त था कि वो दमयन्ती को उचित मार्गदर्शन दे। वह दमयन्ती के मनोभाव से भली–भाँति परिचित थी कि उसका हृदय नलनरेश में बसा है, फिर भी वो यह नहीं चाहती थी कि दमयन्ती लोक–लज्जा और समाज की मर्यादा का उल्लंघन करे। उसी का स्मरण रखते हुए भगवती भारती ने दमयन्ती से कहा कि इस प्रकार

किसी और राजा पर दृष्टि न डालना उचित नहीं है। एक वरार्थिनी अर्थात् स्वयंवर में जो वर को चुनती है, उसे सबका सम्यक निरीक्षण करके ही निर्णय करना, उसके लिए उचित है। उसने दमयन्ती से आगे कहा कि वो मिथिलाराज का भली–भांति निरीक्षण कर ले, यही तर्कसम्मत है।[120]

दमयन्ती ने पहले तो भगवती भारती की बात को मान देते हुए मिथिलेश्वर का गुणवर्णन सुना, किन्तु अपने स्वयंवर के अधिकार का उपयोग करते हुए उसने मिथिलेश्वर के गुण–वर्णन में व्यावधान उत्पन्न करने की अनुमति चाहती सखी के उत्तर में, मुख दूसरी ओर कर दिया और मुस्करा दी। यह मुसकुराना ही उसकी मिथिलापति के प्रति अरूचि का द्योतक समझ लिया गया। इस तरह मुस्कुराने से सखियों और मिथिलानरेश ने अरूचि समझ ली।

मिथिलापति बहुत बलशाली और पराक्रमी राजा थे। किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि उन्हें कोई किसी बात के लिए मना कर दे। पर दमयन्ती को यह ज्ञान था कि उसके स्वयंवर के अधिकार के अनुसार, उसे यह स्वतंत्रता थी कि वो पराक्रमी से पराक्रमी राजा को भी अस्वीकृत कर दे। इस कारण उसे किसी का भी भय नहीं था। उसे यह आश्वासन था कि उसके मना करने पर भी उसे किसी प्रकार की हानि नहीं होगी और न ही कोई क्रोधित या अपमानित होने पर उसे कुछ कहेगा। इसलिए वो निडरता से सब राजाओं को अस्वीकृत कर रही थी।[121]

दमयन्ती के समक्ष एक से बढ़कर एक महान, पराक्रमी, शूरवीर, रूप–सौन्दर्य में मनोरम एवं अत्यंत दानवीर राजा आए, पर दमयन्ती ने उन सबकी ओर दृष्टि डालने की भी रूचि नहीं दिखाई। वो केवल शिष्टाचारवश उन सबका गुणगान सुनती रही। उसका हृदय तो नल–नरेश में बसा था। यह एक नारी के हृदय के अनुराग और दृढ़–निश्चय को दर्शाता है कि नारी अगर एक बार किसी को हृदय से अपना मान लेती है, तो संसार का कोई भी आकर्षण उसे आकर्षित नहीं करता। वो किसी अन्य की ओर देखना तो क्या, किसी और का वर्णन भी नहीं सुनना चाहती। यह नारी के

चरित्र का एक महान गुण है, जिससे यह ज्ञात होता है कि नारी एक विश्वसनीय व्यक्तित्व है, जिसके प्यार और समर्पण भाव पर सदैव विश्वास किया जा सकता है।

दमयन्ती के हृदय में केवल नल–नरेश बसे थे, पर वो एक सभ्य और समझदार स्त्री थी और वह किसी को अपमानित भी नहीं करना चाहती थी। दमयंती और उसकी सखियों के हास्यपरक वचनों को सुनकर सभा में आए सभी राजा हँस पड़े और वचनभंगिमा पर चकित भी हुए। दमयंती ने उन्हें देखा और यह जानने के लिए कि इस कथन पर मगध–नरेश को हँसी आयी या नहीं, अथवा वह अप्रसन्न तो नहीं हो गए, यह विचार करते हुए दमयन्ती ने मगध नरेश को भी एक बार, सामान्य रूप से, अनुराग के कारण नहीं, देख लिया।[122]

एक पत्नी का यह कर्त्तव्य है कि वो केवल अपने पति को ही देखे, अपने पति के अतिरिक्त किसी और पुरुष की ओर न देखे। यह एक पतिव्रता स्त्री के लक्षण और कर्त्तव्य हैं। किन्तु दमयन्ती ने मगधेश्वर आदि को देख, भले ही उसने, उनपर अनुरागहीन दृष्टि डाली। इस कारण, यहाँ संभावित पतिव्रत–भंग–दोष का परिहार किया गया है। दमयन्ती ने अन्य जनों पर तो सामान्य दृष्टि ही डाली, एक बार साधारण भाव से पुतली को घुमा दिया, एक उचटती–सी आँख से देख लिया। किन्तु कटाक्षपूर्वक अनुराग से तो उसने केवल नल की ओर ही देखा। इस प्रकार उस पर पतिव्रत–भंग–दोष की संभावना नहीं है।

आँख की पुतली काली और मलिन होती है। इसलिए वह मलिन व्यक्ति के अनुरूप आचरण करती है। किन्तु कटाक्ष है कि जिनकी पुतली श्वेत–रक्त, निर्मलता और अनुराग से परिपूर्ण है, ऐसे निर्मल और सहज अनुरागी लोग उचित कार्य ही करते हैं, इसलिए उन्होंने नल को ही देखा। इससे यह ज्ञात होता है कि दमयन्ती का अनुराग केवल नल में ही था, किसी अन्य में नहीं। इसी कारण उसने नल पर अनुराग से परिपूर्ण कटाक्षपात किया, अन्य पर सामान्य दृष्टि डाली। सभा में चार मिथ्या नल

भी बैठे थे, सत्य नल तो एक ही था। किन्तु अनुराग की बहुलता के कारण दमयंती का कटाक्षपात सत्यनल पर ही हुआ, बाकी नलों पर नहीं।[123]

नल, कामदेव सदृश सुन्दर थे और दमयन्ती का नल के प्रति अनुराग था। वह उन्हें पति के रूप में अपनाना चाहती थी। उसे स्वयंवर के रूप में यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसलिए उसने स्वयंवर प्रणाली से, स्वयंवर में स्वयं, वर को चुनने के अधिकार का उपयोग करते हुए, नल को वरने की आकांक्षा की।[124]

नारी के चरित्र में एक विलक्षणता यह भी है कि जिसके लिए उसका हृदय अनुराग से परिपूर्ण हो जाता है, वह उसे पाने के लिए हठ का उपयोग कर लेती है। यदि उसका अनुराग पवित्र और निर्मल है, तो वह कभी धोखा नहीं खा सकती। दमयन्ती का नल के प्रति अनुराग भी कुछ इसी प्रकार का था। उसके समक्ष अनेक गुणी और प्रतापी राजा आए, किन्तु उसकी निष्ठा नल के प्रति दृढ़ रही। भाग्य भी उसका सहायक रहा और उसने वास्तविक नल को ही भली–भाँति अनुराग सहित देखा, इन्द्र आदि मिथ्या नलों को नहीं।

जब एक स्त्री पूर्ण हृदय से किसी को अपना लेती है, तो उस पर केवल दृष्टिपात करने से ही, वो आनन्द के सागर में हिलोरें लेने लगती है। इससे कवि स्त्री के हृदय की निष्ठा और सच्चाई दर्शाना चाहते हैं। दमयन्ती के उल्लेख द्वारा कवि ने स्त्री के इस स्वभाव का वर्णन किया है। नल को देखकर दमयन्ती अत्यन्त प्रसन्न हुई। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह आनन्द और हर्ष के समुद्र में पूर्णतः निमग्न हो गयी है। अनुराग से दैदिप्यमान दमयन्ती ऐसी प्रतीत हो रही थी, कि जैसे वह आन्नद सागर के तल में पहुँचने की क्षमता रखने वाली नाग कन्या हो। हठ अनुराग से परिपूर्ण दमयन्ती, उस समय, पाताल–सुन्दरी जैसे मनोहारिणी प्रतीत हो रही थी।[125]

नैषधीयचरितम् में महाकवि श्रीहर्ष ने भगवती सरस्वती द्वारा स्त्री की बुद्धिमत्ता और चतुराई का उल्लेख किया है। शिविकावाहकों ने दमयन्ती को उपस्थित राजसमूह

से हटाकर उस स्थल पर पहुँचा दिया, जहाँ नल और उसका रूपधारण किए इंद्र, अग्नि, यम, और वरूण अर्थात पाँच नल बैठे थे।

भगवती, सरस्वती सब कुछ जानती थीं। कौन क्या है, यह उनसे छिपा नहीं था। असत्य भाषण वे कर नहीं सकती थी और विष्णु के आदेश के कारण परिचय उन्हें देना ही था। दोनों का भ्रम भी वे सहसा नहीं तोड़ना चाहती थी। यहाँ उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता और परिपक्वता का परिचय दिया। उन्होंने ऐसी भाषा का आश्रय लेकर परिचय आरंभ किया कि देव का स्वरूप भी सूचित हो गया और उसका कपट भी प्रकट न हुआ।[126]

एक स्त्री किस तरह से अपनी बुद्धिमानी द्वारा हर परिस्थिति सँभाल लेती है कि सत्य भी प्रकट हो जाए और किसी का अपमान भी न हो, यह भगवती सरस्वती के व्यवहार से प्रकाशित होता है। एक स्त्री में कितनी सूझ–बूझ होती है और परिस्थिति को वह किस तरह सम्भालती है, इसका परिचय भगवती सरस्वती ने दिया। नल रूपधारी इन्द्र का, भगवती सरस्वती ने ऐसा वर्णन किया कि वह इन्द्र परक भी हो गया और नल–संकेतक भी। उनका सत्य भी रह गया और उचित वर्णन भी हो गया। अब दमयन्ती पर निर्भर था कि वो अपनी बुद्धि और समझदारी से स्थिति समझे। दमयन्ती को संदेह से व्याप्त देख भगवती ने अब दूसरे नल–रूपधारी का प्रसंग उठाया और मरूत्सरवा अग्नि का विवरण–परिचय आरम्भ किया।[127]

कवि श्रीहर्ष ने भगवती सरस्वती द्वारा नारी के करूणा–भरे हृदय का वर्णन किया है। भगवती सरस्वती अपने वचन से बँधी थीं पर फिर भी दमयन्ती की दशा ने उनके करूणामयी हृदय को झकझोर दिया था। उन्होंने देखा कि दमयन्ती संशय में पड़ गयी थी। दमयन्ती को संदेह था कि निश्चय अभाव के कारण, आश्चर्य था दो समान आकृति वाले व्यक्ति देखकर और भय था नल–प्राप्ति में विघ्न पड़ने का। इस प्रकार दमयन्ती के हृदय में अनेक प्रकार के विचार उठ रहे थे। सरस्वती ने दमयन्ती

की ऐसी स्थिति देखी और उनके हृदय में व्याप्त करूणा का सागर उमड़ पड़ा। वे अग्नि को छोड़ सूर्यतनय दक्षिण दिशा के लोकपाल यम के वर्णन में प्रवृत्त हुई।[128]

एक स्त्री, कोमल हृदया होने के कारण दूसरी स्त्री की परिस्थिति को देखते हुए किस तरह उसकी सहायता करती है, इसका भगवती सरस्वती सटीक उदाहरण हैं। भगवती सरस्वती ने पाया कि दमयन्ती यम और नल में भेद करने में संशय में है और निर्णय लेने में समर्थ नहीं हो पा रही है। तब उन्होंने यम के पश्चात् क्रम में बैठे जलेश वरूण का वर्णन आरंभ कर दिया।[129]

दमयन्ती एक सीधी और सरल स्त्री थी। परन्तु उसका नल के प्रति अनुराग और प्रेम दृढ़ था, इसलिए मायावी देव भी उसे धोखा नहीं दे पा रहे थे। इतने चालाक मायावी भी दमयंती को ठग न पाए। उसकी सत्यता को ये देव छू भी न सके।[130]

एक स्त्री किस तरह अपनी चतुरता से परिस्थिति को सँभालती है, कवि ने भगवती सरस्वती द्वारा इसे उजागर किया है। भगवती ने चातुरीपूर्ण परियोजना द्वारा नल और अनल – दोनों के नामों का उल्लेखपूर्वक वर्णन किया – उन्होंने नल का इस तरह वर्णन किया कि वो सुरेश्वर इन्द्र के समान त्रिलोकी का परिपालन–कर्त्ता और महान तेजस्वी हैं। उन्होंने अनल का नामतः कथन कर दिया। यह तेजस्वी है, इसका वरण शुभ होगा। अथवा यह अग्नि सदा दूसरे का अन्न खाकर तेजस्वी बना है। यह परान्न भोगी है, इसका पूर्णतः निषेध शुभ होगा। यह तो अनल अर्थात् नलभिन्न है। इसका वरण साधु न होगा।[131]

सरस्वती ने आगे कहा– नल शत्रुहंता वीर हैं, उदार हैं, दक्षिण अनुकूल नायक हैं और उस पर दमयन्ती का सहज अनुराग भी है, अतः इस धर्माचारी राजा का वरण करना उचित होगा। यमराज सबके प्राणों के स्वामी हैं, दक्षिणाशयाश्रित हैं, किन्तु वे सरल और उदार नहीं हैं, केवल दक्षिण दिशा के स्वामी हैं, अत्यन्त क्रूर हैं, सहज अनुराग न होने से इस धर्मराज को स्वार्पण उचित न होगा।[132]

भगवती सरस्वती एक स्त्री के चरित्र के सबसे उत्तम गुण–चतुरता का बहुत बुद्धिमत्ता से उपयोग करती है।

भगवती विशिष्ट पद–योजना द्वारा नल और वरूण दोनों का वर्णन करती हैं। नल के विशिष्ट गुणों का संकेत करके उसका दमयन्ती द्वारा वरण उचित बताया गया है। जबकि वरूण के वरण में विधि और निषेध दोनों का संकेत दिया है।[133]

नारी को अपनी बात स्पष्ट करने के लिए तर्क देने का पूर्ण अधिकार है। इस अधिकार का उपयोग करते हुए भगवती सरस्वती ने तर्कों द्वारा दमयन्ती को, पाँचों में से कौन से वास्तविक नल हैं, इसके कई संकेत दिए। उसने दमयंती को वरे या न वरे, इसके कई तर्क भी दिए।

सरस्वती का कथन कई भंगिमाओं से युक्त है, जिसमें नल के वरण और अवरण के विषय में द्वन्द्व उपस्थित किया गया है। नल का वरण कैसे शुभ होगा? होगा भी अथवा नहीं? नल राजा हैं, राज दिक्–पालांश होता है। इंद्र, अग्नि, यम, वरूण – सब नलरूप में यहाँ उपस्थित थे, अतएव नल का वरण शुभ होगा, अथवा इन चारों देवों के रहते नल का वरण शुभ न रहेगा, क्योंकि ये चारों अप्रसन्न हो जायेंगे। और देवों का क्रोध अकल्याणकर होता है। इन चारों में से किसी एक का वरण भी शुभ न होगा, क्योंकि अन्य तीन अप्रसन्न हो जायेंगे।

सरस्वती का यह संकेत भी महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने पाँचों में से कौन–सा नल है, यह बता दिया। दमयन्ती को सरस्वती ने यह निर्देश दिया कि वह संकेत समझकर नल को वर ले। यदि अनेक प्रकार से संकेत देने पर भी दमयन्ती नल वरण नहीं करती, तो शेष चारों में से सुन्दरतम देव को चुन ले, वही कदाचित् शुभ हो।

एक स्त्री के पास कितनी तार्किक बुद्धि होती है, सरस्वती के तर्क इसके परिचायक हैं।

सरस्वती ने अपने सारे तर्क दमयन्ती के समक्ष प्रस्तुत तो कर दिए, पर स्पष्ट रूप से नल का संकेत न होने से दमयन्ती भ्रम में ही रही। वह संतप्त रही और शंका और संदेह के झूले में झूलती रही। नल का वरण भी देवों का क्रोध बढ़ा सकता है, और नल का अवरण तो शुभ होगा ही नहीं। यह भी संकेत है कि देव जो सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं, वे नलरूप में होने के कारण सुन्दर हैं। सहज सौंदर्य इनमें नहीं है। इनका वरण कैसे शुभ होगा?[134]

एक स्त्री का जब किसी के प्रति वास्तविक अनुराग होता है, तो वो उसके दैहिक सौन्दर्य पर निर्भर नहीं करता। यह तो पूर्वजनित कर्मों के कारण होता है। नैषधीयचरितम् में महाकवि श्रीहर्ष ने दमयन्ती द्वारा स्त्री के चरित्र के इस रूप को दर्शाया है कि स्त्री का अनुराग दैहिक सौंदर्य पर निर्भर नहीं करता कि मोहक रूप देखा और अनुरक्त हो गयी। उसका अनुराग देह से नहीं, हृदय और पूर्व जन्मों के कर्मो से जुड़ा है। यह उसकी सांस्कृतिक विरासत का अंग है।

यद्यपि चारों देव नलरूपधारी ही थे, चारों कांतिमान, सुन्दर और मोहक थे, किन्तु दमयन्ती ने उन चारों के प्रति कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि दमयन्ती का नल के प्रति अनुराग दैहिक सौंदर्य के कारण नहीं था। वह तो पूर्व जन्मों में किए कर्मों के फलस्वरूप था। इसी कारण वह बाकी नलाकार देवों के प्रति अनुरक्त नहीं हुई। उसका अनुराग तो वास्तविक नल के प्रति पूर्व जन्मों के फलस्वरूप था, नल के आकार पर नहीं। यह अनुराग कर्माश्रित था, रूपाश्रित नहीं। दमयन्ती बाकी देवों के रूप और सौन्दर्य के प्रति आकर्षित नहीं हुई और उसका अनुराग केवल नल के प्रति था। यद्यपि दमयन्ती को किसी भी देव को वरने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ था, पर फिर भी दमयन्ती नल के प्रति अनुराग के लिए दृढ़ रही और उसका हृदय लेशमात्र भी नहीं डगमगाया। दमयन्ती द्वारा स्त्री का दृढ़तत्व प्रतिपादित होता है।[135]

दमयन्ती यह जान पाने में अक्षम हो रही थी कि पाँचों नल–रूपों में वास्तविक नल कौन–सा है। संदेह में व्याकुल होकर वह बार–बार पाँचों नलों को देखती, पर

कहीं किसी प्रकार का भेद या अन्तर उसे न मिलता। उसे सब समान लगते। उसके मन में अनेक शंकाएँ और संदेह उपजते और दूर होते। उसका चित्त अव्यवस्थित हो गया। फिर दमयन्ती विचारने लगी कि संभवतः नल ने हास–विलास करने के लिए अनेक शरीर रच लिए हों, क्योंकि नल क्रीड़ापरायण था। नल के अनेक देह लेने का इन्द्रजाल–जानने की संभावना हो सकती थी। नल घोड़ों के मनोभाव समझ लेता है, उसे अनेक कलाएँ आती हैं, अवश्य ही नट बहुरूपिया होने के कारण, परिहास कर रहा है।[136]

एक स्त्री जिससे अनुराग करती है, उसके विरह में वह उन्माद से इतनी भर जाती है कि उसे चारों ओर केवल अपना प्रियतम ही दिखता हैं। दमयन्ती भी नारी की कुछ ऐसी ही दशा दर्शा रही थी। उसे लगा कि जैसे पहले भी वो नल के विरह में उन्माद दशा का अनुभव कर चुकी थी, उसी तरह, पहले के समान ही वो इस समय भी उन्मादिनी हो गयी है, जिससे उसे पाँच–पाँच नल दिख रहे हैं।[137]

दमयन्ती बहुत व्यथित अवस्था में थी क्योंकि वह वास्तविक नल को पहचान नहीं पा रही थी। समुद्र की लहरों की भाँति उसके मन में अनेक विचार हिलोरें ले रहे थे, पर वह कोई निर्णय नहीं कर पा रही थी कि वो असली नल को कैसे पहचाने। दमयन्ती ने एक बार सोचा कि उचित हो कि वो देवी के हाथ में ही वरमाला समर्पित कर दे और उनसे निवेदन करे कि इन पाँचों के मध्य जो नल हो, उसी के कण्ठ में वो माला पहना दें। पर उसी समय दमयन्ती का विवेक जगा। दमयन्ती ने यह विचार किया कि इसमें उसका स्वार्थ नगण्य है, तृण समान है और देवी और उनका बन्धुत्व रत्नसमान बहुमूल्य है। देवी यदि उसके निवेदन पर नल को वरमाला पहना देगी, तो देव उनके शत्रु हो जाँएगें। यह तो उसके लिए बन्धुघात होगा। ये ऐसा होगा जैसे तिनके के लिए रत्न को खो देना। उसे यह एहसास हुआ कि ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। उसके कारण देवी की इन्द्रादि से शत्रुता हो जाना उचित नहीं है।[138]

दमयन्ती का ऐसा विचार करना स्त्री की त्याग भावना का परिचायक है। एक स्त्री को अगर यह ज्ञान भी होगा कि उसका कोई कार्य उसे लाभ देगा, पर उसकी वजह से, उसके किसी प्रिय को किसी भी प्रकार का नुकसान होगा, तो वो अपना नुकसान कर लेगी पर वो किसी और की हानि नहीं होने देगी। यह स्त्री की महान त्याग और सौहार्द की भावना का परिचायक है।

कवि ने दमयन्ती द्वारा स्त्री के चरित्र की इस विशेषता को दर्शाया है कि वो अपनी मर्यादा और लोक लज्जा का, अपने लाभ के लिए, कभी त्याग नहीं करती, चाहे इसके लिए उसे कितने ही कष्टों का सामना क्यों न करना पड़े। वो अपने आत्म गौरव के प्रति भी बेहद जागरूक होती है और ऐसा कोई कार्य नहीं करती, जिससे उसके आत्मसम्मान को हानि हो।

इसी का प्रमाण दमयन्ती ने दिया। दमयन्ती ने विचारा किया कि वो आगे बढ़े और घोषणा कर दे कि उन पाँचों में जो सत्य नल है, वह इस वरमाला को स्वीकारे और वरण करे। पर उसने यह विचारा कि सभा के बीच लज्जा छोड़ कर ऐसा करना निंदा और उपहास का कारण होगा। इसलिए यह भी संभव नही है।[139]

सामान्यतया, स्त्रियां धर्मावलंबी होती हैं। अतःएव बहुधा स्त्रियों में भक्त के विलक्षण गुण भी पाए जाते हैं। ऐसी स्त्रियों का भगवान के प्रति प्रगाढ़ विश्वास होता है, और वो संकट के समय भगवान पर ही आश्रित होती हैं, यह कवि ने दमयन्ती द्वारा दर्शाया है। दमयन्ती एक भक्त थी, जो देवों की सदा आराधना करने वाली थी। जब वह अपने संकल्प – विकल्प से उबर न पायी, तो उसको यही उचित प्रतीत हुआ कि इस संदेह भरे संकट से विस्तार पाकर, नल की प्राप्ति के निमित्त देवपूजा ही आवश्यक है। उसे यह ज्ञान था कि देवाराधना ही मानवों को अभीष्ट दे सकती है। विधाता ने जैसे देवों की अभीष्ट सिद्धि के लिए कामधेनु सुरभि को रचा है, उसी तरह मनुष्यों की अभीष्ट–प्राप्ति के लिए देव आराधना की सृजना की है। इसलिए उसने यह विचार किया कि नल की प्राप्ति के लिए देवाराधना ही उचित है।[140]

एक स्त्री में अनेक गुणों के साथ–साथ भक्तिभाव भी पूर्णरूपेण होता है, भक्तिभाव एक स्त्री के चरित्र का अविभाज्य अंश है, कवि ने दमयन्ती के उल्लेख से इसे उजागर किया है।

जब दमयन्ती को वास्तविक नल को पहचान पाने का कोई मार्ग नहीं दिख रहा था, तो उसने भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण और श्रद्धा को दर्शाते हुए देव–आराधना करने का निर्णय लिया। उसे यह ज्ञान था कि देव जब प्रत्यक्ष हो जाते हैं, तो वो अवश्य इच्छा पूर्ण करते हैं। देव–दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता। अतः देवपूजा के अंग, "ध्यान" द्वारा देवों का मानस दर्शन, दमयन्ती द्वारा किया गया। पहले नमस्कार, तदनंतर ध्यान।[141]

दमयन्ती को यह ज्ञान था कि जब देव प्रसन्न होते हैं, तो वो वर देते हैं, जैसे कि फल–दान से पूर्व फल विकसित और सुगन्धित हो जाया करते हैं। इसी कारण दमयन्ती ने सभा में उपस्थित लोगों की ओर ध्यान न देकर, पूजा–आराधना द्वारा देवों को प्रसन्न करने का उपाय किया।[142]

एक स्त्री का भक्ति भाव कैसे असंभव प्रतीत होने वाले कार्यों को संभव कर देता है, दमयन्ती इसका जीवंत उदाहरण है। देवगण तो दमयन्ती के अनेक गुणों से पहले ही संतुष्ट थे, अब जब उसने भक्तिभाव से किंचित् ही उनकी आराधना की, वे चारों पूर्ण रूप से प्रसन्न हो गये, जैसे जो आग जल उठने वाली ही हो, उसे थोड़ा–सा फूँक देना प्रर्याप्त होता है।[143]

कवि ने दमयन्ती द्वारा एक स्त्री के भक्तिभाव की दृढ़ता और पवित्रता को उजागर किया है। जब एक स्त्री निर्मल मन और समर्पण भाव से ईश्वर की आराधना करती है, तो ईश्वर उससे प्रसन्न होकर, सही–गलत का उचित ज्ञान और बुद्धि प्रदान करते हैं। जब दमयन्ती ने सच्चे हृदय से देवों की उपासना की तो देव प्रसन्न हो गए। देवों के प्रसन्न होते ही दमयन्ती को भगवती सरस्वती की पहले कही गई किलष्ट रचनाओं का भेद समझ में आ गया कि किस प्रकार से देवबोधक होने के

साथ–साथ वे नल का भी संकेत करती थीं और वह समझ गयी कि ये पहले चार देव हैं और पाँचवे, वास्तविक नल हैं। इससे यह सत्यता प्रकट होती है कि देव प्रसन्न होकर बुद्धि निर्मल कर देते हैं, जो उचित और अनुचित का बोध करा देती है। देव जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे सुबुद्धि दे देते हैं। जहाँ सुमति होती हैं, वहीं सब सम्पदाओं का वास हो जाता है।[144]

एक स्त्री में अपनी बात कहने की कितनी विलक्षण क्षमता होती है, यह भगवती सरस्वती द्वारा स्पष्ट होता है। दमयन्ती ने जब सरस्वती की किलष्ट रचना शैली पर विचार किया, तो उसे निश्चय हो गया कि परिचय देने वाली भगवती, वाग्देवी सरस्वती ही हैं, क्योंकि उनके अतिरिक्त इतनी क्षमता किसमें है कि एक साथ ही देवों का सादर विवरण भी दे दिया और नल का परिज्ञान भी करा दिया। एक स्त्री का यह व्यवहार, स्त्री में पायी जाने वाली बुद्धिमत्ता का परिचायक है।[145]

कवि श्रीहर्ष ने एक स्त्री की अपनी बात चतुराई और लोक–व्यवहार की मर्यादा में रहते हुए, किस प्रकार सबके समक्ष प्रकट करनी है, इसका ज्ञान दर्शाया है। सरस्वती ने चारों देवों का जो किलष्ट वर्णन किया था, वह इतना चातुर्यपूर्ण था कि उसमें इच्छित का अनुमोदन और त्याज्य का त्याग – दोनों स्पष्ट थे। सरस्वती की कैसी वचन भंगिमा थी, जिसमें अनुमोदन–त्याग दोनों एक साथ कहे जा रहे थे। भगवती की वचन–संरचना कितनी चातुर्यपूर्ण और अद्भुत थी। सरस्वती के लोकोत्तर वचन इतने अद्भुत थे कि उन्होंने अनुमोदन और त्याग, दोनों की प्रेरणा, दमयन्ती पर कृपा करके ही दी थी।[146]

एक स्त्री को स्वयंवर का अधिकार है, जिसके फलस्वरूप वो स्वेच्छा से अपना वर चुन सकती है। इतनी बड़ी स्वतंत्रता और अधिकार होते हुए भी एक स्त्री लोक – लज्जा और मर्यादा का भी पूर्ण रूप से ध्यान रखती है, यह विशेष उल्लेखनीय बात है। जैसे ही दमयन्ती को वास्तविक नल का ज्ञान हुआ, वो कामना से विह्वल हो गई और उसे नल के गले में माला अर्पण करने की प्रबल इच्छा हुई। किन्तु लोक–लज्जा

और मर्यादा ने उसे रोक लिया। माला पहनाने, न पहनाने की इच्छा में और प्रवृति और निवृति की दुविधा में उसका चित्त पड़ गया, पर फिर भी अपनी लोक–मर्यादा के दायित्व को उसने पूर्ण रूप से निभाया।[147]

रास–विह्वला और अनुरागिणी दमयन्ती ने नल की ग्रीवा में वरमाला पहनाने की बड़ी चेष्टा की, यह उसका अधिकार भी था, किन्तु उसने अपनी लोक–मर्यादा की सीमा को नहीं लाँघा और जड़ता और लज्जा से अभिभूत होकर उसका हाथ हिल तक नहीं सका।[148]

एक स्त्री को स्वयंवर द्वारा अपना वर चुनने का पूर्ण अधिकार है। इतना बड़ा अधिकार होते हुए भी दमयन्ती के व्यवहार से यह स्पष्ट होता है कि लज्जा स्त्री का सबसे बड़ा गहना है। एक स्त्री के पास सब अधिकार होते हुए भी वो अपनी लज्जा को कभी नहीं छोड़ती।

वास्तविक नल का पता लगने पर दमयन्ती लज्जावश, नल के गले में वरमाला नहीं पहना पा रही थी। भगवती सरस्वती इस बात को समझ पा रही थी। उसकी सहायता करने के लिए सरस्वती ने उसे अपने वर का नाम उसके कानों में कहने के लिए कहा। सरस्वती के आग्रह करने पर दमयन्ती ने लज्जा त्यागकर उनके कान में अपनी इच्छा बतानी चाही। उसने उनके कान में नल का नाम कहने के लिए 'न' इस एक अक्षर नाम के आधे भाग का उच्चारण किया ही था कि लाज ने उसे फिर घेर लिया। लज्जा से ग्रस्त दमयन्ती अंगुलियों से अंगुलियाँ मरोड़कर, सिर झुकाते हुए दूर जाकर खड़ी हो गई।[149]

ईर्ष्या, एक स्त्री से इस तरह जुड़ी है कि वह स्वर्ग की देवियों को भी अपने वश में कर लेती है। इसका उल्लेख कवि श्रीहर्ष ने इन्द्राणी द्वारा किया है। सरस्वती के कहने पर भी दमयन्ती जन–लज्जावश नल के नाम का आधा भाग 'न' ही उच्चारित कर सकी, तो उसकी लज्जा मिटाने के लिए, सरस्वती दमयन्ती को एक–एक करके सब देवों के समक्ष खड़ा करने लगी। उन सबके सामने आते ही

दमयन्ती 'वामा' (टेढ़ी और उल्टी) हो जाती। दमयन्ती को जब इन्द्र की ओर ले जाया जा रहा था, तो एक पत्नी होते हुए, आशंका से स्वर्गाधिपति की राज्यलक्ष्मी इन्द्राणी शची घोर ईर्ष्या से ग्रस्त हो गयीं और वो असहनशील हो उठीं। किन्तु उनकी ईर्ष्या उसी क्षण लज्जा में परिवर्तित हो गयी, जब उन्होंने देखा कि दमयन्ती इन्द्र देव से भी 'वामा' हो गयी हैं। लज्जावश, वे सोचने लगीं कि वो उस इन्द्र की पत्नी है, जिसका एक मानवी तिरस्कार कर रही है।[150]

एक स्त्री के अनेक रूप हैं जैसे पत्नी, माँ, प्रेमिका, सखी आदि। एक सुहृदयी स्त्री हर रूप में, पूर्ण रूप से अपना कर्तव्य निभाती है। भगवती सरस्वती, दमयन्ती के लिए एक सखी के रूप में थी। वो पूर्ण रूप से सखी का कर्तव्य निभा रही थी और दमयन्ती को उचित–अनुचित का पूर्ण ज्ञान दे रही थीं। उन्हें यह ज्ञान था कि वो दमयन्ती को देव–सम्मुख ले जा रही हैं, किन्तु दमयन्ती किसी भी प्रकार देवपराङ्मुखी होना चाहती थी। उनकी स्थिति देखते हुए सरस्वती समझ गयीं कि दमयन्ती उनका ऐसा करने का आशय नहीं समझ पा रही हैं। तब एक सखी का कर्तव्य निभाते हुए, मुस्कुराते हुए सरस्वती ने उससे कहा कि उन पर दमयन्ती क्यों रोका करती है? वे तो उससे सखी के सदृश व्यवहार कर रही हैं। उनसे अनिष्ट की शंका करना उचित नहीं है।[151]

आगे सरस्वती ने दमयन्ती को समझाया कि वे दमयन्ती को देवों के वरण करने के लिए उनके समीप नहीं ले जा रही है, प्रत्युत वह उन देवों को प्रणाम करके प्रसन्न करने के लिए ले जा रही हैं, जिससे वो उसे नल को वरण करने की सम्मति दे दें। उनके रूष्ट होने पर नल को वरने की इच्छा सफल नहीं हो सकेगी। वे अप्रसन्न होकर शापादि दे सकते हैं, इसलिए उन्हें प्रसन्न करना उचित है।[152]

भगवती सरस्वती का दमयन्ती के लिए इतना विचार करना, नारी की दूरदर्शिता को दर्शाता है। एक नारी किस तरह हर पहलू पर विचार करके ही कोई कार्य करती है, सरस्वती इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। वो नहीं चाहती थी कि दमयन्ती

का किसी भी प्रकार कोई अनिष्ट हो। वो चाहती थी कि दमयन्ती नल को वरे, किन्तु वो इस बात का भी ध्यान रख रही थी कि ऐसा करते हुए सब देव भी प्रसन्न रहें। इसलिए चतुराई का उपयोग करते हुए, वो दमयन्ती को सब देवों के समक्ष ले गयी। इसी को ध्यान में रखते हुए, भगवती ने दमयन्ती को देवों के चरणों में झुकाया और उनसे कहा कि दमयन्ती उनकी पुजारिनी है, इस मंगल–पर्व पर वह उनकी कृपा पाने की आकांक्षा करती है।[153]

नैषधीयचरितम् में कवि श्रीहर्ष ने भगवती सरस्वती द्वारा एक स्त्री की तार्किक बुद्धि का वर्णन किया है। उचित तर्क देकर किस तरह एक स्त्री प्रेमपूर्वक अपना कार्य कर लेती है और सबको संतुष्ट भी कर देती है, भगवती के व्यवहार ने इसे पूर्ण रूप से रेखांकित किया। भगवती नहीं चाहती थी कि दमयन्ती द्वारा नल के चयन पर देव अप्रसन्न हों। उनकी अप्रसन्नता के औचित्य को प्रमाणित करने के लिए भगवती ने बहुत उचित तर्क उपस्थित किए। उसने देवों से पहला तर्क देते हुए कहा कि दमयन्ती इन्द्रादि चारों देवों को वर कर चार की पत्नी नहीं बन सकेगी, क्योंकि वह सती है – एकभर्तृका है। उसके बाद उसने दूसरा तर्क दिया कि दमयन्ती चारों में से किसी एक को इसलिए नहीं वरेगी कि शेष रहे तीन देव अपमानित होंगे। इसलिए वह एक राजा (नल) को वरने की देवों से अनुमति चाहती है। उसने आगे तर्क देते हुए कहा कि राजा नल सबका ही अंश हैं, वो लोकपालांश हैं। इस कारण सब देवों को असंतुष्ट नहीं होना चाहिए। उसने देवों को यह आश्वासन दिलाते हुए कहा कि दमयन्ती उन सबकी तुष्टि के लिए ही राजा नल का वरण करना उचित समझती है। इससे उन सब देवों का उचित सम्मान होगा।[154]

अपना तर्क आगे प्रस्तुत करते हुए भगवती ने अपनी सूझ–बूझ का परिचय दिया और देवों को समझाने लगी कि सृष्टिकर्ता ने नल और दमयन्ती का विवाह और संयोग पहले ही करा दिया है। इसका प्रमाण यह है – देवदूत बनकर, अदृश्य बने हुए विदर्भ के राजप्रसाद में, मातृ–पूजा करके जब दमयन्ती लौट रही थी, तो प्रसादमाला भ्रम से ही, घूमते नल के कण्ठ में पड़ गयी थी। आगे चलकर वे दोनों

अनजाने में परस्पर स्पर्श भी कर बैठे थे। इस प्रकार इन दोनों का स्वयंवर भी हो गया और मिलन भी। इसलिए देवगणों का नल और दमयन्ती के संयोग में बाधा डालना उचित नहीं है। देवों को अब उनके विरूद्ध कोई प्रयास नहीं करना चाहिए।[155]

एक स्त्री अपने अधिकारों की रक्षा के लिए हर सम्भव प्रयत्न करती है और बुद्धिमत्ता होते हुए, अपनी तर्क बुद्धि का उपयोग करने से भी नही चूकती। सरस्वती चाहती थी कि दमयन्ती अपने स्वयंवर के अधिकार का उपयोग करे और उसे जिससे अनुराग है (नल), उसे ही वरे। साथ में वो यह चाहती थी कि उसके इस अधिकार का उपयोग बाकी चारों देवों को असंतुष्ट भी न करे। इसलिए उसने एक अन्य भंगिमा से देवों को संतोष देने की चेष्टा की। भगवती ने बताया कि यह भी संभव है कि देवगण नल पर प्रसन्न हैं और उसे यश देने की इच्छा से भूमंडल पर पधारे हैं। नल इतने गुणी हैं कि देवों की उपेक्षा करके भी दमयन्ती ने उन्हें वरा। देव नल पर दो कारणों से प्रसन्न हैं। एक तो वह अपने प्रजाजनों के साथ धर्मानुकूल वर्णाश्रम व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन करते हुए जीवनयापन करते हैं, और दूसरा यह कि उन्होंने देवों का दौत्यकर्म निष्कपट–भाव से सम्पादित कर, अद्‌भुत और उत्तम चरित्र का परिचय दिया है।[156]

भगवती सरस्वती चतुराई से तर्क देने में निपुण थीं। एक स्त्री के चरित्र की ये सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं। भगवती की तर्कसम्मत और चातुर्य से परिपूर्ण वाणी सुनकर देव प्रसन्न हो गये और उन्होंने दमयन्ती को नल का वरण करने की प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर वरमाला पहनाने के निमित्त, भगवती दमयन्ती को नल के निकट ले गयी।[157]

एक नारी पहले अपने माता–पिता के संरक्षण में रहती है। कौमार्यावस्था आने पर वह विवाह करके अपने पति को अपना जीवन–संगी मानकर, उसके साथ एक नए जीवन का आरंभ करती है। पहली बार तो स्त्री अपनी माँ के गर्भ से जन्म लेकर, इस धराभूमि पर प्रवेश करती है। किन्तु उसका दूसरा और वास्तविक जन्म, पति से विवाह

के उपरांत आरम्भ होता है। विवाह के उपरांत ही स्त्री अपने दायित्व और अधिकारों को जानती–समझती है और एक नए जीवन की संरचना करती है।

मानव समाज ने एक स्त्री को जितने भी अधिकार दिए हैं, उनमें सबसे प्रथम और महत्त्वपूर्ण अधिकार है – स्वयंवर का अधिकार। यह अधिकार सबसे महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि अगर एक स्त्री इस अधिकार का उचित रूप से उपयोग कर लेती है, वह एक सुयोग्य वर चुन लेती है, तो इसी से उसके नए जीवन का, अपने पति के साथ, एक नवीन शुभारंभ होता है और वह एक नए जीवन की संरचना करती है और अपने दांपत्य जीवन को निभाते हुए समाज में अपना योगदान देती है। इसलिए यह कहना उचित ही होगा कि स्वयंवर का अधिकार बाकी अधिकारों की नींव है। अगर, इस अधिकार का उपयोग करते हुए एक स्त्री अपने लिए, अपनी पसंद का योग्य वर चुन लेगी, तो वह एक सुखी और संपन्न दांपत्य जीवन का सुख तो भोगेगी ही, साथ ही अपने पति का सानिध्य पाते हुए, अपने बाकी अधिकारों जैसे सम्मान का अधिकार, राजकीय अधिकार, दाय–संपत्ति अधिकार, सांस्कृतिक–सामाजिक अधिकार, वैवहिक अधिकार, कर्मों को करने का अधिकार आदि का भी पूर्ण रूप में उपयोग कर पाएगी।

स्वयंवर के अधिकार का उपयोग करते हुए दमयन्ती ने वरमाला, नल के कण्ठ में डाल दी। यह एक लिखित पत्र–'दस्तावेज' की भाँति है, जिसमें विवाह का निश्चय ज्ञापित होता है। वरमाला इस

बात की द्योतक है कि वर–वधू अब दांपत्य जीवन का प्रारम्भ कर सकते हैं।[158] इसी कारण वैदिक काल से ही वरमाला, स्वयंवर का एक बेहद महत्त्वपूर्ण अंग है

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रहणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।

   यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोअहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु तन्मे।।

   अथर्व–6/122/5

2. ऋग्वेद–8/31/5–8
3. ऋक्संहिता–10/114/3
4. एता अर्षन्तयललाभवन्तीऋर्तावरीरिव संड्क्रोशमानाः।

   एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति।। ऋग्वेद– 4/18/6

5. यजुर्वेद– 10/7
6. द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योहश्च।

   तत्र ब्रह्मवादिनी नामन्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्षचर्येति।। मित्रोदय–संस्कार प्रकाश

7. अथर्ववेद व्रह्मसूत्र– 11/5/18
8. गीतवाद्यपाठ्यनृत्त...कलाज्ञानिन गणिका दासीरंगोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमंडलोदाजीवं कुर्यात्। अर्थशास्त्र– 2/27/41
9. संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।

   नदी चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।। रामायण –5/14/49

10. महाभारत शान्ति पर्व–CCCXXi
11. देवी भागवत पुराण– 5/16/4
12. चतुःषष्टि विशारदाः।। महाभारत– 2/61/9
13. रामायण अरण्य काण्ड –46/2/3
14. रथोभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे। ऋग्वेद– 10/102/2
15. अपवाह्य त्वया देवि संगग्रामान्नष्टचेतसः।

   तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया।। रामायण– 2/9/16

16. वैदिक संहिताओं में नारी–डा. मालती शर्मा, पृष्ठ 94
17. अयो अर्द्धोवा एव आत्मनः यत्पत्नीः। तैतिरीय ब्राह्मण

18. ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चौव पैशाचश्चवाष्टमोअधमः ।। मनुस्मृति– 3/21

19. यज्ञेत तु विततते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।

अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते। मनु स्मृति– 3/28

20. वैदिक संहिताओं में नारी, डा. मालती शर्मा पृष्ठ 38–39
21. प्राचीन भारत की संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 232–233
22. देवी भागवत पुराण में नारी की स्थिति, लज्जावती, पृष्ठ 41
23. ऋग्वेद– 10/85/46
24. उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।

अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः।। ऋग्वेद– 10/159/1

25. उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्यणां शतं पिता।

सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।। मनुस्मृति– 2/145

26. कुलाय हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशन्ति। आपसतम्ब धर्मसूत्र– 2/10/27/3
27. देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।

प्रजेप्सिताधिगन्तव्या संतानस्य परिक्षये।। मनुस्मृति–9/59

28. वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवतसामन्तानामन्यमेनक्षेत्रे

वीजमुत्पादयेत्। अर्थशास्त्र 1/17/52

29. सगोत्रेणान्यगोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजाता क्षेत्रजः पुत्र।

जनमितु रसत्यन्यस्मिन्पुत्रे स एवं द्विपितृको द्विगोत्रो

वा द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति।। अर्थशास्त्र– 3/7/6/7

30. वेत्थ धर्माश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च।विविधास्त्वं श्रृतीर्वेत्थ वेदाङ्गानि च सर्वशः।।

व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं चलक्षये। प्रतिपत्तिं च कुच्छ्रेषु शुकाङ्गिरसयोरिव।।

तयोरूत्पादयापत्यं संतानाय कुलस्य वः।

मन्नियोगान्महाबाहो धर्मं कर्तुमिहार्हसि।। महाभारत–1/103/5/6/10

31. सा तमुवाच भ्राता तवानपत्य एवं सवर्यातो। विचित्रवीर्यः साध्वपत्यं तस्योत्पादयेति।।

    स तथेत्युक्त्वात्रीन्पुत्रानुत्पादयामास। धृतराष्ट्रं पाण्डुं विदुर चेति।। महाभारत– 1/95/54/55

32. महाभारत आदिपर्व 124 (सम्भव पर्व)
33. कन्याकुलभूषणत्वम्। विक्रमांकदेवचरितम् –9/37
34. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र। 15/12/3
35. अथ च इच्छेद में पण्डिता जायेत। बृहदारण्यकोपनिषद– 4/4/28
36. ऋग्वेद– 10/85/46
37. वैदिक संहिताओं में नारी, डा. मालती शर्मा, पृष्ठ 197
38. महाभारत– 9/374/73
39. नास्ति मातृसमो गुरूः। माता गरीयसी यच्च्व तेनैतां मन्यते जनः।। महाभारत– 13/105/15/16
40. नित्यं निवसते लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता। महाभारत– 13/11/14
41. मनुस्मृति– 3/56
42. भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव।।

    ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः। मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्।।

    त्वष्टा वासो व्यदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।

    तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया।। अथर्ववेद 14/1/51–53

43. ब्रह्मचारीचरति वेविषद् विषः स देवानां भवत्येकमंगम्।
    तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुहव न देवः।। अथर्ववेद 5/17/5
44. ये गर्भा अवपद्यन्ते जगद् यच्चापलुप्यते।

    वीरा ये तुह्यन्ते मिथो ब्रह्मजाया हिनस्ति तान्।। अथर्ववेद– 5/17/7

45. दायाद (दा+धञ+आद) जो पैतृक संपत्ति के एक भाग का अधिकारी हो, उत्तराधिकारी।
46. न जामये तान्वो रिक्थमारैक्। ऋग्वेद– 3/31/2
47. (क)यदि मातरो तनयन्त वहिनमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन। ऋग्वेद– 3/31/2
    (ख) सायण भाष्य–तथापि तयोर्मध्येअन्यः पुल्लक्षणः सुकृतोः

    शोभनस्य पिण्डदानादेः कर्मणः कर्त्ता भवति।

अन्यः स्त्रीलक्षण ऋन्धन् वस्त्रालंकारादिना ऋध्यमान एव भवित।

पिण्डदानादिकर्तृत्वात्पुत्रो दायार्हः, दुहिता तथा नेति न दायार्हा सा तु केवलं परस्मै दीयते। निरुक्त– 3/6

48. अभ्रातेव पुंसएति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्। ऋग्वेद–1/124/7
49. (क)अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्तवामिये भगम्। कृधि.... ।। ऋग्वेद– 2/17/7

(ख) सायण भाष्य– हे इन्द्र, अमाजूर्यावज्जीवं गृह एव जीर्यन्तो पित्रोः सचा–मातापितृभ्यां सह भवन्ती तयोः

शुश्रुषणपरापतिमलभमाना सती, समानादात्मनः पित्रोश्च साधारणात्सदसो गृहात् गृह उपस्थायैव यथा

भागं याचति तथा स्तोतअहं भंग भजनीयं धनं त्वामिये त्वां याचे।।

50. द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च रिक्थम्।

पुत्रवतः पुत्राः दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाता।। अर्थशास्त्र–3/5/8–9

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।

तस्यामात्मनितिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। मनुस्मृति– 9/130

51. यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।

तस्यामात्मनितिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।। मनुस्मृति– 9/130

52. पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव च।। मनुस्मृति– 9/185

53. स्वेभ्योअंशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदध्युर्भ्रातरः पृथक।

स्वातस्वादंशाच्चतुर्भागं पतिता स्युरदित्सवः।। मनुस्मृति–9/118

54. असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातभिः पूर्वसंस्कृतैः।

भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम्।। याज्ञवल्क्य स्मृति– 2/124

55. कन्याकानां त्वदत्ताना चतुर्थो भाग इष्यते।। कात्यायन स्मृति, दया विभाग– 858

56. वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनं। परद्विसाहस्त्रा स्थाप्या वृत्तिः। आबन्ध्यानियमः। अर्थशास्त्र– 3/2

57. सौदायिक धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्रयमिष्यते।कात्यायन स्मृति स्त्रीधन– 905

58. अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिक्रमाणि।

भातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम।। मनुस्मृति– 9/194

59.(क) पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
अधिवेदनिकाध्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम।। याज्ञवल्क्य स्मृति–2/143

59.(ख) बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च।
अतीतायाम प्रजसि बान्धवास्दवाप्नुयुः।। याज्ञवल्क्य स्मृति–2/144

60. अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत्।
पत्यौ जीवित वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेद।। मनुस्मृति– 9/195

61. मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ।। मनुस्मृति– 9/131

62. मातुर्दुहितरः शेषमृणात् ताभ्य ऋतेअन्वयः।। याज्ञवल्क्य स्मृति– 2/117

63. ब्रह्मादैवार्षगान्धर्व प्रजापत्येषु यद्वसु।
अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते।। मनुस्मृति– 9/196

64. विद्दितां प्रियया मनःप्रियामथ निचि्श्रत्य गिरं गरीयसीम्।
उपपत्तिमदूजिंताश्रयं नृपमूचे वचनं वकोदरः।। किराता.– 2/1

65. यद्वोचत वीक्ष्य मानिनी परितः स्नेहमयेन चक्षुषा।
अपि वागधिपस्य दुर्वच वचनं तद्विदधीत विस्मयम्।। किराता.– 2/2

66. परिणामसुखे गरीयसि व्यथकेऽस्मिन्वचसि क्षतौजसाम्।
अतिवीर्यवतीव भेषजे बहुरल्पीयसि दृश्यते गुणः।। किराता.– 2/4

67. विधुरं किमतः परं परैरवगीतां गमिते दशामिमाम्।
अवसीदति यत्सुरैरपि त्वयि सम्भावितवृत्ति पौरूषम्।। किराता.– 2/7

68. द्विरदानिव दिग्विभाविताच्श्रतुरस्तोयनिधीनिवायतः।
प्रसहेत रणे तवानुजान् द्विषतां कः शतमन्युतेजसः।। किराता.–2/23

69. जायेदस्तम्। ऋक्सूक्त– 3/53/4
गृहिणी गृहमुच्यते। महाभारत – 12/14/56

70. पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति योवने।
पुत्राश्चस्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। महाभारत– 13/46/14

71. यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता। मनुस्मृति– 3/56

72. यदि जिह्वा सहस्त्रं स्याज्जीवेच्च शरदां शतम्।
अनन्यकर्मास्त्रीदोषाननुक्त्वा निधनं ब्रजेत। महाभारत– 12/14/9

73. निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृतीस्ततस्ततस्त्या किनिग्रन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनीरूदाजद्दार द्रुपदात्मजा गिरः ।। किराता.– प्रथम सर्ग (27)

74. भवाद्दशेषु प्रमदाजनोदितं भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।

तथाऽपि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां निरस्तनारीसमया दुराधयः।। किराता.– प्रथम सर्ग (28)

75. अखण्डमाखण्डलमतुल्यधामभिश्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयाऽऽत्महस्तेन मही मदच्युता मतङ्गजेन स्त्रगिवापवर्जिता।।किराता.– प्रथम सर्ग 29
76. अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभिश्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयाऽऽत्महस्तेन मही मद्च्युता मतङ्गजेन स्त्रगिवापवर्जिता।। किराता.– प्रथम सर्ग 29
77. गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः कइवापहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।। किराता.– प्रथम सर्ग (31)
78. इयं परिभ्रान्तिरगेन्द्रकन्दरे सखीव ते शंसति कार्यगौरवम्।
भवादृशः श्वापददूषितेऽन्यथा चरन्त्यरण्ये किमधीतनीतयः। नवहसांक चरित– 4/59
79. व्रजन्ति ते मूढधिया पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि ध्नन्ति शठास्तथाविधानसंवृताङ्गन्निशिता इवेषवः।। किराता.– प्रथम सर्ग (30)
80. भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते विवतेंमानं नरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः शमीतरूं शुष्कमिवाग्निरूच्छिखः।। किराता.– प्रथम सर्ग (32)
81. अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमषैशून्येन जनस्य जन्तुना न जातह्रार्देन न विद्विषादरः।। किराता.– प्रथम सर्ग (32)
82. परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः पदातिरन्तगिरि रेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं दुनीति नो कश्चिदयं वृकोदरः।। किराता.– प्रथम सर्ग (34)
83. विजित्य यः प्राज्यमयच्छदुत्तरान्कुरूनकृप्यं वसु वासवोपमः।
स वल्कवासांसि तवाधुनाऽऽह्रन् करोति भन्युं न कथं धनञ्जयः।। किराता.– प्रथम सर्ग (35)
84. धनात्तशय्याकठिनीकृताकृतां कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजो।
कथं त्वमेतौ धृतिसंयमौ यमौ विलोकयन्तुत्सहसे न बाधितुम्।। किराता.– प्रथम सर्ग (36)

85. इमामहं वेद न तावकीं धियं विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां रूजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः।। किराता.– प्रथम सर्ग (36)

86. पुराधिरूढः शयनं महाधनं विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमक्गलैः।
तद्भ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं जह्वासि निद्रमशिवै शिवारूतैः।। किराता.– प्रथम सर्ग (38)

87. पुरोपनोतं नृप रामणीयकं द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तद्य ते वन्यफलाशिनः परं परैति काश्यें यशसा समं वपुः।। किराता.– प्रथम सर्ग (39)

88. अनारतं यौ मणिपीठशायिनावरञ्जयद्वाजशिरःस्त्रजां रजः।
निषीद्तस्तौ चरणौ वनेषु ते मृगद्विजालूनशिखेषु बर्ह्विषाम्।। किराता.– प्रथम सर्ग (40)

89. द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः समूल्लमुन्मूलयतीव मे मनः।.
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्।। किराता.– प्रथम सर्ग (41)

90. विहाय शान्ति नृप धाम तत्पुनः प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहा शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।। किराता.– प्रथम सर्ग (42)

91. पुरःसरा धामवतां यशोधनाः सुदुःसहं प्राप्य निकारमीद्दशम्।
भवाद्दशाश्चेदधिकुर्वते रति निराश्रया हन्त हता मनस्विता।। किराता.– प्रथम सर्ग (43)

92. अथ क्षमामेव निरस्तविक्रमश्रिचराय पर्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्म कार्मुकं जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्।। किराता.– प्रथम सर्ग (44)

93. न समयपरिरक्षणं क्षमं ते निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीषा विद्धति सोपधि सन्धिदूषणानि।। किराता.– प्रथम सर्ग (45)

94. तुषारलैखाऽऽकुलितोत्पलाभे पर्यश्रुणी मग्ङलभग्ङभीरूः।
अगूढभावाऽपि विलोकने सा न लोचने मीलयितुं विषेहे।। किराता.– तृतीय सर्ग (36)

95. मग्नां द्विषच्छचनि पंकभूते सम्भावना भूतिमिवोद्धरिष्यन्।
आधिद्विषां मा तपसां प्रसिद्धेरस्मद्विना मा भृशमुन्मनीभूः।। किराता.– तृतीय सर्ग (39)

96. यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा मनुष्यसङ्ख्यामतिवर्तितुं वा।
निरूत्सुकानामभियोगभाजां समुत्सुकेवांकमुपैति सिद्धि।। किराता.– तृतीय सर्ग (40)

97. लोकं विधात्रा विहितज्ञस गोप्तुं क्षत्रस्य मुष्णन्वक्षु जैत्रमोजः।
तेजस्विताया विजयैकवृत्तेर्निघ्नन्प्रियं प्राणमिवाभिमानम्।। किराता.– तृतीय सर्ग (41)

98. त्रीडानतैराप्तजनोपनीतः संशय्य कच्छ्रेण नृपैः प्रपन्नः।
वितानभूतं विततं पृथिल्यां यशाः समूहन्निव दिग्विकीर्णम्।। किराता.– तृतीय सर्ग (42)

99. वीर्यावदानेषु कृतावमर्षस्तन्वन्नभूताभिव सम्प्रतीतिम्।
कुर्वन्प्रयामक्षयमायतीनामर्कत्विपामह्न इवावशेषः।। किराता.– तृतीय सर्ग (43)

100. प्रसह्य योऽस्मासु परैः प्रयुक्तः स्मर्तुं न शक्तः किमुताधिकर्तुम्।
नवीकरिष्यत्युपशुष्यदार्द्रः स त्वद्विना में हृदयं निकारः।। किराता.– तृतीय सर्ग (44)

101. प्राप्तेऽभिमान्नव्यसनाद्सह्यं दन्तीव दन्तव्यसनाद्विकारम्।
द्विषत्प्रतापान्तरितोरूतेजाः शरद्धनाकीर्ण इवादिरह्नः।। किराता.– तृतीय सर्ग (45)

102. सन्नीडमन्दैरिव निष्क्रियत्वान्नात्यर्थमस्त्रैरयभासभानः।
यशःक्षयाद् क्षीणजलार्णवामस्त्वमन्यमाकारभिवाभिपन्नः।। किराता.–3/46

103. दुःशासनामर्षरजोविकीर्णैदेभिर्विनाथैरिव भाग्यनाथैः।
केशैः कदर्थीकृतवीर्यसारः कश्रिचत्स एवासि धनंजयस्त्वम्।। किराता.– 47 तृतीय सर्ग

104. स क्षत्रियस्त्राणसहः सतां यस्तत्कार्मुकं कर्मसु यस्य शक्तिः।
वहन्द्वयों यद्यफलेऽर्थजाते करोत्यसंस्कारहृतामिवोक्तिम्।। किराता.– 48 तृतीय सर्ग

105. आक्षिप्यमाणं रिपुभिः प्रसादान्नागैरिवालूनसटं मृगेन्द्रम्र।
त्वां घूरियं योग्यतयाऽध्रिूढा दीप्त्या दिनश्रीरिव तिग्भरश्मिम्।। किराता.– 50 तृतीय सर्ग

106. करोति योऽशेषजनातिरिक्तां सम्भावनामर्थवतीं क्रियाभिः।
संसत्सु जाते पुरूषाधिकारे न पूरणी तं समुपैति संख्या।। किराता.– 51 तृतीय सर्ग

107. प्रियेषु यैः पार्थ! विनोपपत्तेर्विचिन्त्यमानैः कल्ममेति चेतः।
तव प्रयातस्य जंयाय तेषां क्रियादधानां मधवा विधातम्।। किराता.– 52 तृतीय सर्ग

108. मा गाश्र्चरायैकचरः प्रमादं वसन्नसम्बाधशिवेऽपि देशे।
मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वणि मानसानि।। किराता.– 53 तृतीय सर्ग

109. उदीटितां तामिती याज्ञसेन्या नवीकृतोद्ग्राहितविप्रकाराम्।
आसाघ वाचं स भृशं दिदीपे काष्ठामुदाचीमिव तिग्मरश्मिः।। किराता.– 55 तृतीय सर्ग

110. ततःस भैम्या ववृते वृते नूपैर्विनिःश्वासद्भिः सदसि स्वयंवरः।
चिरागतैस्तर्कितत‌द्विरागितैः स्फुरद्भिरानन्दमहार्णवैर्नवैः।। नैषध.– 12/2

111. चलत्पदस्तल्पदयन्त्रणेग्ङितस्फुटाशयामासयति स्म राजके।
श्रमं गता यानगतावपीयमित्युदोर्य धुर्यः कपटाज्जनीं जनः।। नैषध.– 12/3

112. इति श्रुतिस्वादिततद्गुणस्तुतिः सरस्वतीवाङ्मसपिज्ञभ्रसरत्थया।
शिरस्तिरःकम्पनयैव भीमजा न तं मनोरन्वयमन्वमन्यत।। नैषध.– 12/13

113. न पाण्डयभूमण्डनमेणलोचने! विलोचनेनापि नृपः पिपाससि ?
शशिप्रकाशाननमेनमीक्षितु तरंड्.गयापाड्.गदिशा दृशस्त्विषः।। नैषध.– 12/15

114. शशंस दासीङ्गितवित् विदर्भजामितो ननु स्वामिनि! पश्य कौतुकम्।
यदेष सौधाग्रनटे पटाञ्चलेऽपि काकस्य पदार्पणग्रहः।। नैषध.– 12/21

115. ततस्तदुर्वीन्द्रगुणाद्भुतादिव स्ववक्त्रपद्मेऽङ्गुलिनालदायिनी।
निधीयताभानूनमुद्रणेति सा जगाद वैदग्ध्यमयेगिंतैव ताम्।। नैषध.– 12/31

116. अनन्तरं तामवदन्तृपान्तरं तदध्वदृक्तारतरंगरिंगणा।
तृणीभवत्पुष्पशहं सरस्वती स्वतीव्रतेजःपरिभूतभूतलम्।। नैषध.–12/32

117. स्मिश्रिया सृक्वणि लीयमानया वितीर्णया तद्गुणशर्मणेव सा।
उपाहसत् कीर्त्यमहत्त्वमेव तं गिरां पाटे निषधेन्द्रवेभवम्।। नैषध.– 12/41

118. कृपा नृपाणाभुवरि नवचिन्न ते नतेन हाहा शिरसा रसादृशाम्।
भवन्तु तावत्त्व लोचनरञ्चला निपेयनेपालनृपालपालयः।। नैषध.– 12/43

119. दमस्वसुश्चित्तमवेत्य हासिकाजगाद देवी कियदस्य वक्ष्यसि,
पण त्रभूते जगाति स्थिते गुणैरिहाप्यते संकटवासयातना।। नैषध.– 12/50

120. धराधिराजं विजगाद भारती तत्सम्रनेषद्वलितांगसूचितम्।
अपीयमेनं मिथिलापुरन्दरं निपीय दृष्टिः शिथिलाऽस्तु ते वरम्।।नैषध.–12/61

121. सजामि किं विघ्नमिदन्नृपस्तुतावितीगिंतेः पृच्छति तां सखीजने।
स्मिताय वक्त्रं यदवक्रयद् वधूस्तदेव वैमुख्यमलंक्षि तन्नुपे।। नैषध.– 12/68

122. तदक्षरैः सस्मितविस्मिताननां निपाय तामीक्षणभगिंभिः सभाम्।
इहास्य हास्यं किमभून्न वेति तं विदर्भजा भूपमपि न्यभालयत्।। नैषध.– 12/107

123. नलान्यवीक्षां विदधे दमस्वसुः कनीनिकाऽऽगः रवलु नीलिमाल्यः।
चकार सेवां शुचिरक्ततोचिता मिलन्नपांगः सविधे तु नैषधे।। नैषध.– 12/108

124. उत्कण्टका विलसदुज्ज्वलपत्रराजिरामोदभागनपरागतराऽतिगौरी।
रूद्रक्रधस्तदरिकामधिया नले सा वासार्थितामधृत काञ्यनकेतकीव।।नैषध.– 12/110

125. तन्नालीकनले चलेतरमनाः साभ्यान्मनागप्यभूदप्यग्रे
चतुरःस्थितान्न चतुरा पातुं दृशा नैषधान्।
आनन्दाम्बुनिधौ निमज्ज्य नितरां दूरं गता
तत्तलालंकगरीभवनाज्जनाय ददती पातालकन्याभ्रमम्।। नैषध.–12/111

126. साक्षात्कृताखिलजगज्जनताचरित्रा तत्राधिनाथमधिकृत्य दिवस्तथा सा।
ऊचे यथा स च शचीपतिरभ्यधायि प्राकाशि तस्य न च नैषधकायमाया।। नैषध.– 13/2

127. शक्रः किमेष निषधाधिपतिः स वेति? दोलायमानमनसं परिभाव्य भैमोम्।
निर्दिश्य तत्र पवनस्य सखायमस्या भूपोऽसृजद्भगवती वचसा स्त्रजं सा।। नैषध.– 13/8

128. एतादृशीमथ विलोक्य सरस्वती तां सन्देहचित्रभयचित्रितचित्तवृत्तिम्। देवस्य सुनुमरविन्दविकासिरश्मेरूकद्दिश्य दिक्पतिमुदीरयितुं प्रचक्रै।। नैषध.– 13/14

129. तत्रापि तत्रभवती भृशसंशयालोरालोक्य सा विधिनिषेधनिवृत्तिमस्याः।
पाथःपतिं त्रति धृताभिम्खङ्गुलीकपणिः क्रमोचितमुपाक्रमताभिधातुम्।। नैषध.– 13/20

130. बालां विलोक्य विबुधैरपि मायिभिस्तैरच्छद्मितामियमलीकनलीकृतस्वैः।
आह स्म तां भगवती निषधाधिराजं निर्दिश्य राजयरिषत्परिशेषभाजम्।। नैषध.– 13/26

131. येनामुना बहुविगा़सुरेश्वराध्बराज्याभिषेकविकसन्महसा बभूवे।
आवर्जनं तमनु ते ननु साधु नामग्राहं मया नलमुदीरितमेवमत्र।। नैषध.– 13/28

132. यच्चाण्डमारणविधिव्यसनञ्च तत्त्वबुद्ध्वाऽऽशयाश्रितममुष्य चदक्षिणत्वम्।
सेषा नले सहजरागभरादमुष्मिन् नात्मानमर्पयितुमर्हसि धर्मराजे? नैषध.– 13/29

133. किंते तथा मतिरमुष्ययथाऽऽशयः स्थात्त्वत्पाणिपीडनविनिर्मितयेऽनपाशः।
कान्मानवानवति नो भुवनं चरिष्णुर्नासावमुत्र न रता भवतीति युक्तम्? नैषध.– 13/30

134. श्लोकादिह् प्रथमतो हरिणा द्वितीयाद् धूमध्वजेन शमनेन समं तृतीयात्।
तुर्यान्नलस्य वरूणेन समानभावं सा जानती पुनरवादि तथा विमुग्धा।। नैषध.– 13/31

135. देवानियं निषधराजरूचस्त्यजन्ती रूपादरज्यत नले न विदर्भसुभ्रूः।
जन्मान्तराधिगतकर्मविपाकजन्मेवोन्मीलति क्वचन कस्यचनानुरागः।। नैषध.– 13/38

136. किं वा तनोति मयि नैषध एव काव्यव्यूहं विधाय परिहासमसौ विलासी?
विज्ञानवैभवभृतः किमु तस्य विद्या सा विद्यते न तुरगाशयवेदितेव।। नैषध.– 13/42

137. पूर्वं मया विरहनिःसहयाऽपि दृष्टः सोऽयं प्रियस्तत इतो निषधाधिराजः।
भूयः किमागतवती मम सा दशेयं पश्यामि यद्विलसितेन नलानलीकान्?।। नैषध.– 13/44

138. देव्याः करे वरणमाल्यमथार्पये वा?
यो वैरसेनिरिह तत्र निवेशयेंति।
सेषा मया मखभुजां द्विषती कृता स्यात्
स्वस्मै तृणाय तु विहन्मि न बन्धुरत्नम्।। नैषध.–13/51

139. यः स्यादमीषु परमार्थनलः स माला–
मंगीकरोतु वरणाय ममेति वैताम्।
तं प्रापयामि यदि तत्र विसृज्य लज्जां
कुर्वे कथं जगति श्रृण्वति? ता विडम्बः।। नैषध.–13/52

140. अथाधिगन्तुं निषधेश्वरं सा प्रसादनामाद्रियतामराणाम्।
यतः सुराणां सुरभिनृ णान्तु सा वेधसाऽसृज्यत कामधेनुः।। नैषध.–14/1

141. यत्तान्निजै सा ह्रदि भावनाया बलेन साक्षादकृतारिवलस्थान्।
अभूदभीष्टप्रतिभूः स तस्या वरं हि दृष्टा ददते परं ते।। नैषध.– 14/4

142. सभाजनं तत्र ससजं तेषा सभाजने पश्यति विस्मिते सा।
आमुद्यते यत् सुमनोभिरेवं फलस्य सिद्धौ सुमनोभिरेव।। नैषध.– 14/5

143. भक्त्या तयेव प्रससाद तस्यास्तुष्टं स्वयं देवचतुष्टयं तत्।
स्वेनानलस्य स्फुटतां यियासोः फुत्कृत्यपेक्षा कियती खलु स्यात्।। नैषध.– 14/7

144. प्रसादमासाद्य सुरैः कृतं सा सस्मार सारस्वतसूक्तिसृष्टेः।
देवा हि नान्यद् वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते।। नैषध.– 14/8

145. स भंगिरस्याः खलु वाचि काऽपि यद् भारती मूर्त्तिमती मतीयम्।
श्लिष्टं निगद्यऽऽदृत वासवादीन् विशिष्य मे नैषधमप्यवादीत्।। नैषध.– 14/12

146. त्यागं महेन्द्रादिचतुष्टयस्य किमभ्यनन्दत् क्रमसूचितस्य?।
किं प्रेरयामास नले च तन्मां का सूक्तिरस्या मम कः प्रमोहः?।। नैषध.– 14/15

147. नले विधातुं वरणस्त्रजं तां स्मरः स्म रामां त्वरयत्यथैनाम्।
अपत्रपा तां निषिषेध तेन द्वयानुरोधं तुलितं दधी सा।। नैषध.– 14/23

148. स्त्रजा समालिंगयितुं प्रियं सा रसादवत्तैव बहुप्रयत्नम्।
स्तम्भत्रपाभ्यामभवत्तदीये स्पन्दस्तु मन्दोऽपि न पाणिपद्मे।। नैषध.– 14/24

149. देव्याः श्रुतौ नेति नलार्द्धनाम्नि गृहीत एव त्रपया निपीता।
अथाङ्गुलीरङ्गुलिभिः स्पृशन्ती दूर शिरः सा नमयाञ्चकार।। नैषध.– 14/30

150. भैमी निरीक्ष्याभिमुखी मथीनः स्वाराज्यलक्ष्मीरभृताभ्यसूयाम्।
दृष्ट्वा ततस्तत्परिहारिणी तां व्रीडां विडौजःप्रवणाऽभ्यपादि।। नैषध.– 4/32

151. देवी कथिञ्चित् खलु तामदेवद्रीचीभवन्तीं स्मितसिक्तसृक्का।
आह स्म तां मय्यपि ते भृशं का शङ्का? शशाङ्कादधिकास्यबिम्बे!।। नैषध. –14/37

152. एषामकृत्वा चरणप्रणाममेषामनुज्ञामनवाप्य सम्यक्।
सुपर्ववैरे तव वैरसेनिं वरीतुमीहा कथामौचितीयम्?।। नैषध.– 14/38

153. इतीरिते विश्वसितां पुनस्तामादाय पाणौ दिविषत्सु देवी।
कृत्वा प्रणभ्रां वदति स्म सा तान् भक्तेयमहंत्यधुनाऽनुकभ्याम्।। नैषध.– 14/39

154. युष्मान् वृणीते न बहून् सतीयं शेषावमानाच्च भवत्सु नैकम्।
तद्वः समेतं नृपमंशमेनं वरीतुमन्विच्छति लोकपालाः!।। नैषध.– 14/40

155. भैम्याः स्त्रजः संजनया पथि प्राक् स्वयंवरं संवरयाम्बभूव।
सम्भोगभलिंगनयाऽस्य वेधाः शेषन्तु कं हन्तुमिथद्यतध्वम्।। नैषध.– 14/41

156. वर्णाश्रमाचारपथात् प्रजाभिः स्वाभिः सहैवास्खलते नलाय।
प्रसेदुषी वेदृशवृत्तभंगया दित्सेव कीर्तेर्भुवमानयद् वः?।। नैषध.– 14/42

157. इति श्रुतेऽस्या वचने च हास्यात् कृत्वा सलास्याधरमास्यबिम्बम्।
भ्रूविभ्रमाकूतकृताभ्यनुज्ञेष्वतेषु तां साऽथ नलाय निन्ये।। नैषध.– 14/43

158. अथाभिलिख्येव समर्प्यमाणां राजिं निजस्वीकरणाक्षराणाम्।
दूर्वाङ्कुराढयां नलकण्ठनाले वधूर्मधूकस्त्रेजमुत्ससर्ज।। नैषध.– 14/45

चतुर्थ अध्याय

बालकों एवं अन्य वर्गों के मानवाधिकार

खण्ड (क) : बालकों के मानवाधिकार

1. अस्तित्व रक्षा का अधिकार
2. उत्तम पोषण का अधिकार
3. शिक्षा का अधिकार
4. आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार
5. सम्पत्ति का अधिकार
6. विवाह का अधिकार

खण्ड (ख) : अन्य वर्गों के मानवाधिकार

1. सेवकों के अधिकार
2. कलाकारों के अधिकार
3. प्रजा के अधिकार

बालकों एवं अन्य वर्गों के मानवाधिकार

खण्ड (क) : बालकों के मानवाधिकार

बालक किसी भी देश या समाज का भविष्य होता है। बालकों को यदि उचित संस्कार दिए जाएंगे, उनका अच्छी तरह पालन–पोषण किया जाएगा तभी अच्छे नागरिक प्राप्त हो सकेंगे। किसी भी समाज की उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि उसके बच्चों को कैसी परवरिश, कैसा वातावरण व शिक्षा–दीक्षा तथा गुण–दोष उसके माता–पिता, परिवार व समाज द्वारा दिए जाते हैं। बालकों के अधिकारों का अध्ययन इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुछ अधिकार बालक अपने जन्म के साथ ही लेकर उत्पन्न होता है जबकि कुछ अधिकार उसे परिवार व समाज तथा वहाँ की संस्कृति द्वारा दिए जाते हैं। इनमें कुछ को कानूनी स्वरूप दिया जा चुका है तो कुछ परम्परा के रूप में हैं।

बालक मानव का ही अंश है अतः मानव के अधिकारों के अंतर्गत बालकों के अधिकार भी सम्मिलित है। यद्यपि बालकों के अधिकारों का वर्णन बृहत्त्रयी में नहीं मिलता है फिर भी साहित्य में यत्र–तत्र बालकों के अधिकारों के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है।

1. अस्तित्व रक्षा का अधिकार

समाज में व्यक्तियों के कुछ ऐसे समूह हैं जो प्रकृति द्वारा व सुस्थापित रूढ़ियों के कारण निर्बल होते है बालक भी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते है। फिर भी वे मानव होने के कारण मानव अधिकारों व मूलभूत स्वतन्त्रताओं को धारण करते हैं। बालक माँ के गर्भ से उत्पन्न होता है। अतः एक स्त्री की इस समाज में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वह अनेक रूपों में अपने उत्तरदायित्व निभाती है जैसे पत्नी, माँ, बेटी, बहन आदि। पत्नी के उत्तरदायित्व के उपरांत, एक स्त्री की माँ के रूप में अत्यंत

महत्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक काल से यह मान्यता है कि एक बालक योग्य और यशस्वी तभी बनता है, जब माँ से उसे सुदृढ़ और उच्च संस्कार मिले हों। इसलिए वैदिक काल से माँ को गुरू और पिता से भी श्रेष्ठ माना जाता है। यह मान्यता है कि एक स्त्री जब माँ का रूप लेती है, तो वह बच्चे की प्रथम गुरू होती है। जिस तरह एक स्त्री को समाज में अनेक अधिकार प्राप्त हैं, उसी तरह एक बच्चे को भी वैदिक काल से कई अधिकार मिले हैं।

बच्चों के अधिकार उसे दिए गए षोडश संस्कारों से प्रारंभ होते थे। गर्भाधान से लेकर उपनयन तक एक बच्चे को संस्कारों के रूप में अधिकार दिए जाते थे। जिसको वर्तमानकालिक मानवाधिकारों की भाषा में जन्म सुरक्षा, उचित पोषण,उचित शिक्षा का अधिकार कहा जा सकता है। गर्भाधान की पूरी प्रक्रिया में स्त्री और पुरुष, दोनों का बराबर योगदान था। पति और पत्नी, एक श्रेष्ठ, गुणवान और योग्य सन्तान की प्राप्ति के लिए मंत्रोच्चार के साथ समागम करते थे। एक बच्चा जब इस संसार में प्रवेश करता है, तो उसे पूर्ण अधिकार है कि उसे ऐसे संस्कार मिलें कि वह योग्य और संपन्न हो। गर्माधान के समय मंत्रोच्चार, माता–पिता द्वारा उसे उसके अधिकार देने की पहली प्रक्रिया है।[1] यह बालक के अस्तित्व की रक्षा का अधिकार है, जो उसे इस रूप में माता–पिता से प्राप्त होता था।

पुंसवन संस्कार गर्भाधान के तीसरे माह में संपन्न होता था। इस संस्कार में उन देवताओं की पूजा की जाती थी, जो गर्भ की रक्षा के लिए उत्तरदायी माने जाते थे।

इसके उपरांत सीमांतोन्नयन संस्कार होता था। इसमें गर्भस्थ महिला की समृद्धि और उसके भ्रूण के दीर्घायु होने की कामना की जाती थी।[2] इस संस्कार के संपादन के दिन पत्नी व्रत पर रहती थी और पति प्रजापति और कुछ अन्य देवताओं को आहुतियां देते थे। जातकर्म में माता और बच्चे की दीर्घायु की कामना की जाती थी। इसके द्वारा बच्चा अपने जीवन की रक्षा करने का अधिकार प्राप्त करता था।

बच्चे के जन्म के दसवें दिन, नामकरण संस्कार[3] के दिन, घर को धोकर पवित्र किया जाता था। इसके पश्चात् माँ द्वारा बच्चे के सिर को जल से भिगोकर तथा साफ कपड़े से ढ़ककर, पिता को सौंपा जाता था।

इसके बाद निष्क्रमण संस्कार[4] संपन्न होता था। इसमें शिशु को प्रथम बार घर से निकाला जाता था। इस संस्कार को माता–पिता मिलकर करते थे।

इसके अतिरिक्त, बच्चों के अधिकारों में कई अन्य संस्कार भी सम्मिलित थे, जैसे – अन्नप्राशन संस्कार,[5] चूड़ाकर्म संस्कार,[6] कर्णवेध संस्कार, विद्यारंभ संस्कार, उपनयन संस्कार[7] , केशांत संस्कार, समावर्तन संस्कार और विवाह संस्कार।[8]

जहाँ वैदिक काल से ही बच्चों को गर्भाधान से लेकर उपनयन संस्कार तक संस्कारों के रुप में अधिकार दिये जाते थे वहीं आधुनिक युग में भी संस्कारों को महत्त्व दिया जाता हैं। बच्चों के सभी संस्कार किये जाते हैं। किन्तु जहाँ बालक जन्म के साथ ही कुछ अधिकारों को लेकर उत्पन्न होता है वहीं बदलते परिवेश के चलते समाज द्वारा समय–समय पर बालकों के अधिकारों का उल्लंघन भी किया जाता रहा है। बालकों के अस्तित्व रक्षा के अधिकार का हनन उनकी गर्भ अवस्था से ही किया जाता है। व्यक्ति द्वारा गर्भ में ही लिंग का पता करने पर भ्रूण हत्या जैसा कृत्य किया जाता है तथा बच्चे को गर्भ में ही मार कर उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया जाता है। जबकि संस्कृत ग्रन्थों में भ्रूण हत्या जैसे प्रकरणों कोई उल्लेख नहीं मिलता है। आचार्य मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि बालक की हत्या करने के पश्चात् व्यक्ति कितना भी प्रायश्चित क्यों न कर ले परन्तु उसके साथ को भी संसर्ग नहीं करेगा।[9] वही बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्य इतने विशाल है फिर भी उनमें कहीं भी बालकों पर हुए इस प्रकार के अपराधों से युक्त कृत्यों का वर्णन नहीं मिलता है। अतः विदित होता है कि प्राचीन काल में बच्चों के अस्तित्व रक्षा व भ्रूण की दीर्घायु होने की मंगल कामना की जाती थी जिसके कारण बच्चा आत्म सुरक्षा के अधिकार को प्राप्त करता था।

वर्तमान युग में सरकार द्वारा बालकों के उचित विकास के लिए भ्रूण हत्या पर रोक हेतु अधिनियम 1994 (PNDT) सरकार द्वारा लागू किया गया है एवं बालश्रम भी उन गम्भीर समस्याओं में से एक है जिसके तहद 5–14 वर्ष के बीच के बालकों से जबरन बालश्रम कराया जाता है इनकी रोकथाम हेतु भी सरकार द्वारा अनेक कार्य किये जा रहे है।

अतः सुनिश्चित रुप से आवश्यक है कि बालकों की गर्भावस्था से सुकुमार अवस्था तक बच्चों की अस्तित्व रक्षा की जाए। प्रत्येक प्रक्रम पर बालकों के सर्वोत्तम हितो और कल्याण को अधिक महत्त्व दिया जाए एवं बालकों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित हो। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उनकी निजता व गोपनीयता के अधिकारों का सम्मान हो।

2. उत्तम पोषण का अधिकार

बच्चों को देश का भविष्य कहा जाता है। भावी नागरिक होने के नाते देश का भविष्य बालकों पर टिका है। आज के बालक ही, कल के समाज व देश का निर्माण करते है फिर भी उनके संतुलित विकास के मार्ग में अनेक बाधाएँ व रूकावटें आती रहती है जिनमें शिक्षा, बालश्रम के साथ कुपोषण भी शामिल है। अतः देश का भावी नागरिक होने के कारण उत्तम पोषण की व्यवस्था होनी आवश्यक है जो कि उनका अधिकार है। उत्तम पोषण पाने की व्यवस्था आज से ही नहीं अपितु प्राचीन काल से चली आ रही है।

बालकों को यह अधिकार था कि उसे उसके जन्म के बाद, सातवें महीने में अन्नप्राशन संस्कार मिले। इस संस्कार में बालक को अन्न ग्रहण कराया जाता है। शास्त्रों में अन्न को प्राणियों का प्राण कहा जाता है। भगवद्गीता में कहा गया है कि अन्न से ही प्राणी जीवित रहते हैं। अन्न से ही मन बनता है। इसलिए अन्न का जीवन में सर्वाधिक महत्त्व है। **शुद्ध भोजन पाना शिशु का अधिकार है।** इसी प्रक्रिया को अन्नप्राशन–संस्कार की संज्ञा दी गई।

बच्चे को पूरा अधिकार था कि वो अन्न से शरीर को पोषित करे। इसी कारण, इस अधिकार को संस्कार के रूप में स्वीकार करते हुए, शुद्ध सात्त्विक और पौष्टिक अन्न को ही जीवन में लेने का व्रत करने हेतु, यह संस्कार संपन्न किया जाता था। इसमें बालक को गाय का घी, दही, और शहद तीनों को मिलाकर अन्नप्राशन करने का विधान था।

शास्त्रों में देवों को खाद्य पदार्थ निवेदित करके, अन्न खिलाने का विधान था, जिसमें शुभ मुहूर्त में देवताओं का पूजन करने के पश्चात् माता–पिता चांदी की चम्मच से खीर व शहद आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न शिशु को चटाते थे।

एक बालक को यह अधिकार था कि वह हर रूप से अपना मानसिक विकास करे। बालक के सिर के बाल जब प्रथम बार उतारे जाते हैं, इसे चूड़ा–कर्म या मुण्डन संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार शिशु– पोषण में सम्मिलित किया जाता है। इससे बच्चे का मानसिक विकास, व्यवस्थित रूप से आरम्भ हो जाता है।

मुण्डन का एक विशेष वैज्ञानिक प्रयोजन है। अपनी विचारधारा में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए विचार संस्थान को विशेष रूप से प्रभावित करना पड़ता है। केश, मस्तिष्क पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों को रोकते हैं, इसलिए उन्हें हटाकर यह सुविधा उत्पन्न कर ली जाती है कि सिर के रोम कूपों द्वारा विशेष प्रेरणा मस्तिष्क के अन्तरंग विचार संस्थान तक पहुँचाई जा सके। इसलिए **चूड़ाकर्म संस्कार** द्वारा बालकों को **यह अधिकार दिया** जाता था।

कर्णवेधन द्वारा कानों के बेधने से वहां की जो नस–नाड़ियाँ दबती हैं, उनसे बीमारियों की रक्षा होती है। इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए कर्णवेध संस्कार संपन्न किया जाता था। कर्णवेध संस्कार लड़के और लड़कियों दोनों के लिए किया जाता था। यह संस्कार जन्म के बाद, तीन या पाँच वर्ष की आयु में, किसी शुभ दिन, किसी योग्य पंडित द्वारा किया जाता था।

कर्णवेधन से पहले, किसी मंदिर में या घर पर पूजा और यज्ञ किये जाते थे, बच्चे को पूर्व दिशा की ओर मुख करके सूर्य की रोशनी में बिठाया जाता था। लड़कों का पहले दायाँ कान वेधा जाता था और लड़कियों का पहले बायाँ कान वेधा जाता था। वेधने के पश्चात्, एक पतली तार उस छेद में डाली जाती थी जिससे छेद बंद न हो और उस पर हल्दी और चंदन का लेप लगाया जाता था, जिससे उसमें कोई संक्रमण न पनपे। यह संस्कार बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि यह एक बालक को उसका यह अधिकार दिलाता था कि वह किसी भी प्रकार के संक्रमण से बचे।

अतः कहा जा सकता है कि बालक उत्तम पोषण पाने से ही शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक रुप से मजबूत व स्वस्थ हो सकता है तभी वह मजबूत समाज व देश का निर्माण करेगा। इसके लिए वर्तमान युग में राज्य सरकार द्वारा बालकों को जन्म से ही उत्तम पोषण की व्यवस्था के प्रयास किये जा रहे हैं। बच्चे के जन्म के समय ही माता व शिशु के उत्तम पोषण हेतु उचित राशि व भोजन की व्यवस्था होती है। शिक्षा के साथ–साथ विद्यालय में भी एक समय के भोजन की व्यवस्था दी जा रही है। अतः कहा जा सकता है की उत्तम पोषण का अधिकार जीवन के अधिकार से जुड़ा है।

3.शिक्षा का अधिकार

बालकों के शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक विकास भी आवश्यक है क्योंकि एक मनुष्य पशुओं से भिन्न है, इसलिए उसके पास बुद्धि और ज्ञान है। ज्ञान और बुद्धि में निखार लाने के लिए मनुष्य शिक्षा ग्रहण करता है। **एक बालक को यह अधिकार था कि वो शिक्षा से अपने संस्कार, विचार और सोचने का तरीका बदले और सुसंस्कृत होकर, समाज और राष्ट्र के विकास में सक्रिय रूप से योगदान दे।** उदाहरण के रूप में शिशुपालवधम् महाकाव्य में बालक प्रधुम्न को युद्ध में भाग लेते हुए दर्शाया गया है।[10] नैषध में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि दमयन्ती भी कई गन्धर्व बालिकाओं को संगीत की शिक्षा देती थी।[11] इससे स्पष्ट होता है कि उस समय न केवल बालकों बल्कि बालिकाओंको भी शिक्षा का अधिकार था परन्तु

प्रधानरूप से बालकों को युद्ध, वाणिज्य, कर्मकाण्ड, शास्त्र, वेदादि का शिक्षण, वर्ण व्यवस्था के अनुसार प्रदान किया जाता था। तथा बालिकाओं को कला, संगीत आदि के शिक्षण को प्रधानता थी। इन उल्लेखो के अलावा कोई अन्य बाल प्रकरण बृहत्त्रयी में प्राप्त नहीं होता है।

प्राचीनकाल में कई प्रकार की शिक्षाएं दी जाती थी यथा–आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीत, राजनीति आदि के अतिरिक्त व्यवहारिक ज्ञान भी दिया जाता था। अर्जुन को भी बाल्यावस्था में गुरू द्रोण ने धनुर्वेद की शिक्षा दी थी जिसके कारण ही अर्जुन धनुर्वेद में अत्यधिक निपुण हुए। किरातार्जुनीयम् में अर्जुन ने भगवान शिव जो कि सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करने वाले है ऐसे शिव के साथ युद्ध किया अन्त में शिव ने प्रसन्न हो अर्जुन को पाशुपतास्त्र देकर धनुर्वेद का ज्ञान भी कराया।[12]

अतः कहा जा सकता है कि हमारे शास्त्रों के अनुसार जब बच्चे शिक्षा ग्रहण करने योग्य हो जाते थे, तब विद्यारम्भ संस्कार आयोजित किया जाता था। इस संस्कार में गुरू बच्चे को पहली बार अक्षर से परिचय कराते थे। विद्यारम्भ संस्कार में सबसे पहले गणेशजी, गुरू, देवी सरस्वती और पारिवारिक ईष्ट की पूजा की जाती थी। इन देवी–देवताओं का आशीर्वाद लेने के बाद, गुरू बच्चे को अक्षर का ज्ञान देते थे। इस संस्कार में गुरू पूरब की ओर, और शिष्य पश्चिम की ओर मुख करके बैठते थे।

संस्कार के अंत में गुरू को वस्त्र, मिठाई और दक्षिणा दी जाती थी और गुरू बालक को आशीर्वाद देते थे। विद्यारम्भ संस्कार बालक के जन्म के उपरांत पाँचवें वर्ष में किया जाता था। इस संस्कार के लिए एकादशी, द्वादशी, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्टी और दशमी तिथि अनुकूल मानी गई और सोमवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार को शुभ कहा गया।

शिक्षा के अधिकार से ही बच्चों का विकास होता है। तथा राष्ट्र शक्तिशाली एवं समृद्ध बनता है। शिक्षा ही उत्तरदायी एवं सक्रिय नागरिक बनाने में सहायक है।

अतः वर्तनमान युग में बच्चों के शिक्षा के अधिकार हेतु सरकार द्वारा निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान रखा गया है जिसमें 6 से 14 वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पाने का कानूनी अधिकार मिल गया है तथा निर्धन श्रमिकों के बच्चों के लिए पास के स्कूल में दाखिला करवाने, निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध करवाने, निःशुल्क पुस्तकें तथा आवागमन के साधन उपलब्ध कराने के कानूनी अधिकार मिल गये है।

4. आध्यात्मिक उन्नति का अधिकार

एक बालक को यह अधिकार प्राप्त था कि भौतिक उन्नति के साथ–साथ वह आत्मिक रूप से भी उन्नत हो। इसके लिए भारतीय समाज में उसे उपनयन संस्कार या जनेऊ संस्कार से सुशोभित किया जाता था। इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य था कि एक बालक खुद को गुरू को समर्पित करके खुद को शिक्षित करें और प्रबुद्ध करें, जिससे वो अपनी आत्मा को शुद्ध कर सकें। यह संस्कार सात, तेरह या सत्रह वर्ष की आयु में संपन्न होता था। इस संस्कार में लड़कों को जनेऊ पहनाया जाता था, जो बाएँ कंधे से कमर तक गोलाकार रूप ले जाया जाता था। जनेऊ में तीन धागों का संगम है, जो गायत्री देवी, सावित्री देवी और सरस्वती देवी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनेऊ को इस संस्कार के उपरांत एक वर्ष तक पहना जाता था और 108 बार रोज़, गायत्री मंत्र के उच्चारण का भी इसके साथ विधान था।

इस प्रकार इन संस्कारों द्वारा अन्न पाने का, विद्या का, उपनयन का अधिकार बालकों को प्रारंभ से ही प्राप्त था।

इसके साथ, प्राचीन काल से बालकों को यज्ञ का अधिकार भी प्राप्त था। देवी–देवताओं को संतुष्ट करने के लिए यज्ञ का आयोजन किया जाता था। यज्ञ का वास्तविक तात्पर्य दान करना है। यज्ञ के अधिकार द्वारा बालक अपने पापों से मुक्त होकर स्वयं को शुद्ध करते थे। इनसे उन्हें शक्ति, सेहत, खुशहाली और धन–लाभ प्राप्त होता था। यज्ञ के लिए वेदी बनाकर कुण्ड में आहुतियाँ दी जाती थीं। यज्ञ के लिए अश्वत्थ, पलाश, खदिरा, न्याग्रोथा और शमी के पेड़ों की लकड़ी का ही उपयोग

होता था। साथ ही अग्नि–कुण्ड में शुद्ध घी डाला जाता था, पंडितों द्वारा मंत्रोच्चार करते हुए बालक यज्ञ संपन्न करते थे। बालक को यह अधिकार था कि वह विभिन्न यज्ञों द्वारा अपने ईष्टदेव को प्रसन्न करे या अभीष्ट फल प्राप्त करे। शिवजी की प्रसन्नता के लिए रूद्रयज्ञ, विष्णु जी को प्रसन्न करने के लिए विष्णुयज्ञ, धन–लाभ के लिए लक्ष्मीहोम, आदि यज्ञ किए जाते थे।

5. सम्पत्ति का अधिकार

यज्ञ करने के अधिकार के साथ–साथ, प्राचीन काल से ही हर बालक को संपत्ति–विषयक अधिकार प्राप्त थे। चाहे प्राचीन युग हो या आज का युग, हर बच्चे को यह अधिकार रहा है कि वो अपने माता–पिता की संपत्ति का अधिकार, उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त करे। एक बच्चे को जन्म के उपरांत, संपत्ति के अधिकार के अंतर्गत, यह अधिकार मिलता है कि उसके माता–पिता समग्र रूप से उसका लालन–पालन करें, उसे उच्च शिक्षा प्राप्त करवाएँ और उसे धार्मिक रूप से सशक्त करें। माता–पिता का यह कर्त्तव्य था कि वे उसके स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखें और हर रूप में उसे उन्नत करें। पिता की सारी संपत्ति जैसे घर, दुकान, फैक्ट्री आदि, इस सारी संपत्ति का अधिकारी उनका पुत्र है। आज के युग में पुत्रियों को भी पिता की संपत्ति में, पुत्रों की तरह समान अधिकार प्राप्त हैं, पर पुत्री की सहमति पर, उसकी इच्छा होने पर, पुत्र को पिता की पूर्ण संपत्ति प्राप्त करने का सर्वसम्मत अधिकार प्राप्त है। प्राचीन काल में कई राजा अपने राज्य के उत्तराधिकारी के लिए, अपने पुत्र को उसका अधिकार प्राप्त कराने के लिए अनेक यज्ञ, और यहाँ तक, कई विवाह भी करते थे।

6.विवाह का अधिकार

हर बच्चे को विवाह करने का पूर्ण अधिकार है। चाहे बालक हो या बालिका, उन्हें विवाह करने की पूर्ण स्वतत्रंता है। प्राचीन युग में स्त्रियों को स्वयंवर द्वारा विवाह करने का अधिकार प्राप्त था। प्राचीन समाज में बाल विवाह प्रचलित था, पर आज के युग में लोगों में काफी परिवर्तन आ चुका है। अब लोग यह जान चुके हैं कि कम उम्र

में बच्चों का विवाह करना अमानवीय है। कानून भी अब इसकी इजाज़त नहीं देता। बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए समाज ने कुछ नियम बनाएँ हैं, जिसके अनुसार वर की उम्र कम से कम 21 वर्ष और कन्या की उम्र कम से कम 18 साल होनी चाहिए। 21 साल से कम आयु की लड़की का विवाह कानूनी अपराध है। वर और कन्या दोनों मानसिक रूप से स्वस्थ होने चाहिए। उनके विवाह में दोनों की पूर्ण सहमति होनी चाहिए। पति के नामर्द होने के कारण विवाह पूर्ण न हो, तो पत्नी अदालत से विवाह को शून्य घोषित करने की माँग कर सकती है। विवाह धोखे, दबाव से या छलपूर्वक हुआ हो, तो कन्या की अर्जी पर अदालत, विवाह को शून्य घोषित कर सकती है। एक लड़का और लड़की, किसी भी रस्म से विवाह कर सकते हैं।

इस प्रकार, एक बालक के गर्भाधारण से व्यस्क होकर, विवाह योग्य होने तक, जो भी अधिकार उसे प्राप्त हैं, उनका उपयोग करके वो अपने जीवन को हर प्रकार से उन्नत कर सकता है।

खण्ड (ख) : अन्य वर्गों के मानवाधिकार

प्राचीन काल में हर व्यक्ति चाहे वो स्त्री हो या पुरुष, राजा हो या सेवक दास–दासी हो या किसान, चित्रकार, नट, संगीतकार या फिर किसी अन्य रूप में कार्यरत हो, प्रत्येक व्यक्ति की समाज में अपनी पहचान योग्यता और योगदान था। वैदिक काल के कर्म विभाजन के आधार पर चारो वर्णों के व्यक्तियों को उसके पद और कार्यक्षेत्र के अनुसार अधिकार प्राप्त थे। इन अधिकारों का उपयोग करके व्यक्ति स्वयं को भौतिक और आध्यात्मिक रूप से तो उन्नत करता ही था, साथ–साथ समाज को भी उन्नति के पथ पर अग्रसर करने का अपना दायित्त्व निभाता था।

समाज में सभी वर्ग यथा सेवक, दास, कलाकार, शूद्र, वनेचर, आदि को कुछ अधिकार प्राप्त थे जिससे वे सम्मानपूर्वक समाज में जीवनयापन कर सके।यद्यपि बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्यों का कथानक राज परिवारों के जीवन के आसपास बुना गया है। तथापि समाज के सामान्य वर्ग के अधिकारों का भी इनसे अनुमान लगाया

जा सकता है। राजा व ब्राह्मण समाज में अधिक अधिकार सम्पन्न थे किन्तु जनसामान्य को या दलित वर्ग को भी मनुष्य के रूप मे पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे तथा वे अपने जीवन से सन्तुष्ट थे। यहाँ पर बृहत्त्रयी में वर्णित पात्रों के आधार पर विविध वर्गों के मानवीय अधिकारों का विवेचन किया गया है।

1. **सेवकों के अधिकार**

बृहत्त्रयी में राजा की सेवा में रत रहने वाले सेवकों में उद्धव जी, वनेचर, कलाकार, प्रजाजन इत्यादि पात्रों का चित्रण मिलता है। 'किरातार्जुनीयम्' में महाकवि भारवि ने सेवक के अधिकारों का संकेत किया है। युधिष्ठिर ऐसे सहृदय राजा थे कि उन्होंने अपने सेवक को भी पूर्ण स्वतंत्रता और अधिकार प्रदान किया था कि वो अपनी बात बिना झिझके या डरे, पूर्ण स्वतंत्रता से कहे। अपने राजा द्वारा प्रदान किए गए इस अधिकार और विश्वास के फलस्वरूप, युधिष्ठिर का दास वनेचर भी अपने मालिक का पूर्ण रूप से कल्याण चाहता था और उनसे कभी झूठी–मीठी बात नहीं कहता था।[13]

वनेचर ने युधिष्ठिर द्वारा प्रदत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पूर्ण लाभ उठाया और गुप्त–रीति से दुर्योधन के भेदों को समझा तथा युधिष्ठिर द्वारा प्रदत्त अधिकार के कारण वनेचर ने शब्द और अर्थ के गुणों से पूर्ण वाक्य, युधिष्ठिर से कहे। एक सेवक के हृदय में अपने राजा के प्रति इतना भय विद्यमान होता है कि वो अपनी बात कहने में अक्षमता महसूस करता है, किंतु युधिष्ठिर ने अपने भाईयों की तरह अपने सेवक को भी अपनी बात स्पष्टता और सहजता से कहने का पूर्ण अधिकार दिया था।[14] जिसके कारण वनेचर ने युधिष्ठिर से सत्य वचन कहते हुए क्षमा माँगी और कहा कि केवल सत्य बात मीठी नहीं होती, तो यदि उसकी बात कड़वी भी हो तो वो उसे क्षमा कर दें।[15]

इसी प्रसंग में एक मंत्री के अधिकारों और कर्त्तव्यों का विवरण देते हुए वनेचर ने कहा कि वह मंत्री, योग्य मंत्री नहीं है जो अपने स्वामी को हित की बातों का उपदेश नहीं देता। वह एक खराब सेवक है। ऐसे ही वो स्वामी अच्छा पालक नहीं है,

जो अपने हित–चिन्तक मंत्रियों की बात नहीं सुनता, वो एक दुष्ट स्वामी है। क्योंकि यदि राजा और मंत्री आपस में मेल रखेंगे, तो उन्हें हर प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होगी।[16]

कवि भारवि किरातार्जुनीयम् में युधिष्ठिर द्वारा सेवकों को मूल मानवाधिकार प्रदान करता है जिससे उनमें अपनी बात निर्भयतापूर्वक और विद्वत्तापूर्ण कहने का सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है। किरातार्जुनीयम् में वनेचर के माध्यम से सेवक के अधिकार प्रकट होते हैं। राजा युधिष्ठिर ने वनेचर को गुप्तचर की भांति राजा दुर्योधन की कार्यशैली और प्रशासन की टोह लेने के लिए नियुक्त किया था।

युधिष्ठिर द्वारा प्रदान की गई स्वतंत्रता के कारण वनेचर भी इतना सामर्थ्यवान हो पाया कि वह शत्रुओं की गूढ़ राजनीति और षड्यंत्रों के हर पहलू को देख और समझ सका । इसकी पुष्टि वनेचर के उस भाव से भी होती है जब वो कहता है कि वो यह हृदय से स्वीकार करता है कि वो बहुत सौभाग्यशाली है कि उसे युधिष्ठिर जैसा न्यायप्रिय और बुद्धिमान स्वामी मिला। निश्चित ही उसके प्रज्ञावान होने के पीछे युधिष्ठिर द्वारा प्रदान किए अभिव्यक्ति के अधिकार और स्वतंत्रता ही प्रमुख कारण थे। इसी प्रसंग में वनेचर ने अधिकारों और उत्तरदायित्वों की स्वतंत्रता से अनुपालना के संदर्भ में राजा के सहयोग की प्रशंसा भी की।[17]

किरातार्जुनीयम् में कवि भारवि का एक सेवक और स्वामी के परस्पर संबंधों और उनके अधिकारों का वर्णन उस कालखंड की मानवाधिकार की स्थिति को स्पष्ट करता है।

एक स्वामी का यह कर्त्तव्य था कि वो हर प्रकार से अपने सेवकों को बोलने की, अपने हृदय की बात स्पष्टता से कहने की स्वतंत्रता दे और यहाँ तक कि स्वामी को विवेक के अनुसार राय देने के लिए स्वतंत्र रखे। इस प्रकार एक सेवक को भी यह अधिकार था कि वो स्वतंत्रता से अपना कार्य करे और हर प्रकार से अपने स्वामी की सेवा करे। एक स्वामी का यह भी कर्त्तव्य था कि वो अपने सेवक की कर्त्तव्य–परायणता के अनुसार उन्हें उचित पुरस्कार दे और एक सेवक भी अपने

अधिकारों का उपयोग करते हुए अपने स्वामी से अपनी कार्य–कुशलता के अनुसार पुरस्कार आदि प्राप्त करे या माँग ले।

वनेचर ने एक सेवक होने का दायित्व पूर्ण रूप से निभाया था और दुर्योधन के बारे में, उसके कार्य–कलापों के बारे में और यहाँ तक कि उसके हृदय में क्या भाव थे, उसके बारे में पूर्ण जानकारी युधिष्ठिर को दी।

युधिष्ठिर ने भी एक स्वामी का कर्त्तव्य आदर्श रूप से पूर्ण किया। वनेचर को गुप्तचर के रूप में की गई मेहनत के फलस्वरूप पुरस्कार पाने का पूर्ण अधिकार था। युधिष्ठिर एक सेवक के इस अधिकार का पूर्ण रूप से सम्मान करता था, इसलिए उसने वनेचर को पुरस्कार देने में तनिक भी बिलम्ब नहीं किया।

इस प्रकार किरातार्जुनीयम् में कवि भारवि ने सेवक के अधिकारों का पूर्णरूप से उल्लेख किया है। एक सेवक को यदि उचित रूप से अधिकार प्राप्त होते थे, तो वह उन अधिकारों का पूर्ण उपयोग करके अपने स्वामी का विश्वासपात्र रहता था और अन्ततोगत्वा साम्राज्य को समृद्ध बनाने में अपना सूक्ष्म योगदान देता था।

उधर शिशुपालवधम् में महाकवि श्रीमाघ ने उद्धव के माध्यम से प्रधान सलाहकार सेवक के अधिकारों का विवेचन किया है। यहाँ उद्धव भगवान श्री कृष्ण के मात्र सलाहकार ही नहीं बल्कि परम मित्र, संबंधी तथा सेवक की भूमिका को निभाने वाले थे। **एक सेवक के रूप मे उद्धव को यह पूर्ण अधिकार था कि वो राजा को उचित सलाह प्रदान करे।** सेवक अधिकार रखता था कि वो राज्य के विकास और सुरक्षा के लिए अपने स्वामी को यथा तथ्य उपयोगी सलाह और मंत्रणा दे। कवि श्रीमाघ के शिशुपालवधम् में कृष्ण के परम मित्र, संबंधी तथा सलाहकार भूमिका निभाने वाले उद्धव का वर्णन विशेष ध्यातव्य है। श्री कृष्ण ने उद्धव को अतिशय सामीप्य सूचक 'अंगः' शब्द से सम्बोधित कर उनकी बातों को सुनना तथा तदनुसार उचित कार्य करने में ही अपनी सम्मति होना सूचित किया है।[18] राज्य को कुशलतापूर्वक चलाने के लिए बुद्धिमत्ता और कूटनीतिज्ञता अति आवश्यक है। सेवक के रूप मे उद्धव भी बुद्धि और कूटनीति के स्वामी थे। इसी का उपयोग करते हुए वे श्री कृष्ण को प्रेरित करते

हुए कहते है कि जिस प्रकार कोयल के बच्चों को पहले कौवे पालते है, किन्तु जब कोयल बड़ी हो जाती है तब वह कौवों का साथ छोडकर अपने पक्ष (कोयलों) मेंमिल जाती है,उसी प्रकार इस समय आपके पक्ष के जो राजा शिशुपाल के साथ रहकर समृद्धिवान हो रहे हैं, वे युद्धारम्भ हो जाने पर तत्काल उसको छोडकर आपका साथ देंगे।[19]

सेवक अपनी बुद्धिमता से राज्य की कीर्ति कों चहुं दिशाओं में विस्तृत करने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। अतः उद्धव जी सेवक के रूप मे श्री कृष्ण को उचित परामर्श देने के अधिकार का प्रयोग करते है।

राज्य का कार्यभार राजा के पास होता है लेकिन राज्य को सम्यक प्रकार से चलाने व साम्राज्य का विस्तार करने के अच्छे सेवकों का होना अति आवश्यक है।

अतः सेवक का अधिकार है कि आपत्ति आने पर हमेशा राज्य की सुरक्षा हेतु जागरूक रहे और राजा या स्वामी के अभाव में कार्यों का उचित निर्देशन तथा क्रियान्वन कर सके।

अनेक स्थलों पर उद्धव जी द्वारा श्री कृष्ण को नीति का उपदेश प्रदान किया गया है। वह सिद्ध करता है कि सेवक स्वामी के सम्मुख उचित सलाह या परामर्श देने के लिए स्वतंत्र था।

सेवक यह अधिकार रखता है कि उसे उसके अच्छे कार्य हेतु प्रेरित कर पुरस्कृत किया जाये ।

राजनीति मे नीति शास्त्रानुकूल भृत्यादि वर्ग को यथोचित जीविका तथा कार्य होने पर सेवकों को उचित भूमि, सोना, चाँदी, घोडा आदि देने की व्यवस्थता थी।[20]

शिशुपालवधम् महाकाव्य का प्रतिनायक शिशुपाल स्वयं भी अपने अधीनस्थ सेवको को अश्व, गज,स्वर्ण आदि द्वारा पुरस्कृत किया करते थे।[21]

शिशुपालवधम् के ये उदाहरण इस बात का स्पष्ट संकेत देते है कि वेतन और पारितोषिक सेवकों का मूल अधिकार था । नीति निपुण राजा या स्वामी सेवकों

को इससे कभी भी वंचित नहीं करते थे। परन्तु कुछ स्थलों पर ऐसे भी संकेत भी मिलते है जहां सेवक पक्ष और विपक्ष दोनो से वेतन लेकर दोनो पक्षों के लिए समान कार्य करते थे। ऐसे सेवकों के प्रति राजा को सावधान रहने की आवश्यकता रहती थी।

आजीविका हेतु वेतन के अधिकार का संकेत करते हुए उद्धव जी श्री कृष्ण से कहते है कि आप ऐसे गुप्तचरों को शत्रुओं के राज्य मे नियुक्त करें जिनके दोषों को दूसरा नहीं जानता तथा जो दूसरों के दोषो को स्वयं जानते है।

ऐसे दोनो और से वेतन लेने वाले गुप्तचरों द्वारा कपट–लेखादियो को प्रकट कर शत्रुओं के समुदाय में रहने वाले मन्त्री, सेनापति आदि का भेदन करना चाहिए।[22]

नैषधीयचरितम् में अनेकत्र सेवकों, दूतों का वर्णन मिलता हैं। जिससे पता चलता है कि सेवक–सेविकाए केवल सेवा के लिए ही नहीं होते थे प्रत्युत यथावसर अभिन्नमित्र का भी कार्य सम्पादन करते थे। यथा नल–दमयन्ती स्वयंवर प्रसंग।[23]राजाओं के सेवक भी बहुमूल्य रत्नजड़ित आभूषण एवं परिधान धारण करते थे। जिससे उनका आर्थिक वैभव व्यक्त होता था,साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि सेवकों को भी सम्पत्ति रखने का अधिकार था।[24]

2. कलाकारों के अधिकार

वात्स्यायन मुनि द्वारा 64 कलाओं का उल्लेख किया गया है–गीत, वाद्य, नृत्य,आलेख्य,विशेषेकच्छेद्य, तण्डुलकुसुमबलिविहार पुष्पास्तरण, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचन, उदकवाद्य, उदकाधात, चित्रयोग, मात्यग्रथनविकल्प, शेखरकापीडयोजन, नेपथ्यप्रयोग, कर्णपत्रभड.ग, गन्धयुक्ति, भूषणयोजन, ऐन्द्रजाल, कौचुमारयोग, हस्तलाधव, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजन, सूचीवानकर्म, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरूवाद्य, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोग, पुस्तकवाचन, नाटकाख्यायिकादर्शन, काव्यसमस्यापूरण, पट्टिकावानवेत्रविकल्प, तक्षककर्म तक्षक, वास्तुविधा, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकरज्ञान, वृक्षायुर्वेदयोग,

मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि, शुकसारिकाप्रलाप, संवाहन, अक्षरमुष्टिकाकथन, म्लेच्छितविकल्प, देशभाषाविज्ञान, पुष्पकटिकानिमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठय, मानसीकाव्यक्रिया,अभिधानकोश, छन्दोज्ञान, क्रियाकल्प, छलितयोग, वस्त्रगोपन, द्यूतविशेष, आाकर्षक्रीडा, बालक्रीडनक, वैनयिकीविधा, वैजयिकीविद्या व्यायामिक विधा।[25]

कला भारतीय संस्कृति का वह महनीय अंग है जिससे भारत को विश्व संस्कृतियों में सर्वोपरि स्थान प्राप्त है।

बृहत्त्रयी में विविध कलाकारों का वर्णन प्राप्त होता है। जिनमें नट, नर्तक, नर्तकियां, वादक, चित्रकार इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

राज परिवारों में दैनिक उत्तरदायित्त्वों के लिए संगीतज्ञो की नियुक्ति की जाती थी तथा वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का उत्साहपूर्वक निर्वाह करते थे इस बात का संकेत हमें किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी के इस वचन से मिलता है कि जब महाराज युद्धिष्ठर सिंहासन पर आसीन थे तब प्राप्तकालीन बन्दी–भाटमागध आदि जनो के स्त्रोतपाठ–गीत गान, सुस्वर बाजे आदि मांगलिक शब्दों से वह जगते थे।[26] यही नहीं युद्ध आदि प्रंसगो में भी संगीतज्ञ राजा द्वारा प्रदत्त अधिकारो का प्रयोग करते हुए तूर्य, भेरी, पणव आदि वाद्ययंत्रो का प्रयोग करते थे ताकि सैनिको में युद्ध का उत्साह बढे। उदाहरण के रूप में किरातार्जुनीयम् में किरात रूप शिव और अर्जुन के प्रसंग में उत्साहनवर्धन हेतु वादक द्वारा विविध वाद्यों के वादन का उल्लेख है–

मेघ धीरे–धीरे पृथ्वी को सेंचन करने लगे, अन्तरिक्ष से विचित्र मन्दारपुष्प गिरने लगे, ताडन किए बिना भेरी की आवाज ने निर्मल कान्ति वाले समूचे आकाश को व्याप्त कर डाला।[27]

वर्तमान युग में कलाओं का अध्ययन व्यावसायिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। परन्तु प्राचीनकाल में कलाएं आध्यात्मिक तथा व्यावसायिक दोनों ही रूप में प्रचलित

थी। उदा. शिशुपालवधम् में नारद जी की संगीत प्रतिभा आध्यात्म के लिए थी वही राजसी वर्णन, तथा लोक जीवन में कलाए व्यवसायिक, मनोरंजन रूप में प्राप्त थी।[28]

संगीतज्ञो का उद्देश्य मात्र राज परिवारो तक ही सीमित नहीं था बल्कि सामान्य जनता के लिए भी वे अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते थे जैसे कि शिशुपालवघम् महाकाव्य में प्रातःकालीन एवं संध्याकालीन बेलाओ में काल ज्ञान करवाने के लिए तूर्य मृदंग आदि का वादन करते थे।[29]

युद्ध के क्षेत्र में भी शंखनाद का बहुत महत्त्व है। जिसके बजाए बिना युद्ध आरम्भ नहीं किया जाता । यहाँ शिशुपालवधम् में जब शिशुपाल यादव सेनाओं का संहार करता है। जिससे सम्पूर्ण यादव सेना संत्रस्त हो जाती है। तब भगवान श्री कृष्ण का पाँच जन्य (शंख) बोल उठता है। श्री कृष्ण के युद्धभूमि में आते ही शंखध्वनि से गगन कंपित हो उठता है।[30]

कलाकारों की कला में संगीत कला भी चित्रकला की ही भांति पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी। स्वरों मूर्च्छनाओं की सूक्ष्मताओं पर विशेष ध्यान रहता था। राजकुमारियों को वीणा आदि वाद्य तथा गान की शिक्षा देने का उचित प्रबन्ध किया जाता था।

दमयन्ती के कमल मुख का कंठनाल इतने माधुर्य से पूर्ण था उसे प्रवहणशील स्वर के संमुख गंधर्वरमणियों के कंठस्वर और उनकी बजायी वीणा के स्वर फीके थे यद्यपि सहज गानप्रिय गंधर्वबंधुओं ने नारद से वीणा–बादन सीखा था जो इस गान विद्या के भी अद्वितीय आचार्य माने जाते है। ऐसी गंधर्ववधुएँ भी गान और वादन में दमयन्ती से कुछ सीखा ही करती थी।[31]

राजकुमारी दमयन्ती भी संगीत की शिक्षा देती थी वह उच्चकोटि की कलाविद थी तथा गन्धर्वराजकुमारियाँ भी इसकी शिष्यायें थी।[32]

पुत्तलिका नृत्य प्रचलन में था जिसमें दीवारों पर अदृश्य रूप से स्थापित विस्मयोत्पादक रम्य कथा–गोष्ठी नृत्य, वाद्यादि द्वारा कुतूहल जगता था और डोरी

–यन्त्र के सहारे विशिष्ठ व्यापार करती आश्चर्यजनक अनेक कठपुतलियों से युक्त था।[33]

गाने के व्यवसाय वाली सुन्दरियां (किन्नरियां) उच्चकोटि के गीत गाती थी।[34] उक्त वर्णनों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि संगीतज्ञो की आजीविका का प्रधान साधन संगीत था लेकिन उन्हें समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। विविध राजकीय कार्यक्रमो तथा विवाह आदि मांगलिक कार्यो में उनकी अनिवार्य उपस्थिति होती थी। विवाहोत्सव में उस विदर्भपुरी में कांस्य तालादि (मंजीरा,करताल, झाल आदि) धन वाद्य पर्याप्त शब्द करते बजनें लगे, वीणादि "तत" वाद्य निरन्तर झंकारने लगे, छिद्र वाले बांसुरी आदि "सुषिर" वाद्य उच्च स्वर में बजाये गये और मुरज, ढोलक, मृदंग आदि आनद्व वाद्य बहुत अधिक मात्रा में बजाये गये[35] तथा इसी प्रसंग में कलाकार अपनी कला से जनता का उच्च स्तरीय मनोरंजन करते थे वीणा वादकों के स्वर को सुनकर सम्पूर्ण जनता भी बेसुद हो जाती थी[36]

कलाकारों को अपनी कला के प्रदर्शन का, प्रशंसा तथा पुरस्कार प्राप्त करने का अधिकार था,साथ ही श्रेष्ठ कलाविदों को राजाश्रय पाने का भीअधिकार था। राजा कलाओं का संरक्षण करता था। श्रेष्ठ कलाकार अपनी कला को आजीविका के रूप में अपना सकता था।

3. प्रजा के अधिकार

प्राचीन काल से मानव समाज की संरचना इस प्रकार समुचित रूप से की गई थी कि प्रत्येक व्यक्ति को एक सुखी और संपन्न जीवन जीने का उचित अवसर प्राप्त हो सके। इसके लिए समाज को चार वर्णों में बाँटा गया – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। हर वर्ण को उनके लिए कुछ विशिष्ट अधिकार दिए गए, जिससे कोई किसी का शोषण न कर सके और भयमुक्त होकर जीवनयापन कर सके।

दुर्योधन के राज्य में आदर पाने का अधिकारी केवल ब्राह्मण ही नहीं बल्कि सेवक भी आदर और मित्रता का अधिकारी था। दुर्योधन अहंकार से रहित होकर अपने सेवकों के साथ इस प्रकार व्यवहार कर रहा था जैसे वो उसके अनुरक्त मित्र हों।

मित्रों से वो भाई के समान व्यवहार कर रहा था और भाईयों से वो आदर–सहित अध्यक्ष के रूप में व्यवहार कर रहा था।[37]

दुर्योधन प्रजा के सभी वर्गों के साथ सद्भावनापूर्ण और मर्यादित व्यवहार करता था। प्रजा के साथ दुर्योधन का ऐसा व्यवहार यथोचित और न्यायप्रिय था जो कि एक राजा के लिए अति शोभनीय माना जाता है।

दुर्योधन जब किसी को कोई कोमल बात कहता था, तो वो कोमलता से केवल कहता नहीं था, साथ में उसे कोई भेंट आदि भी देता था। जब वह किसी को हृदय खोल कर देता था, तो उसका पूर्ण रूप से आदर–सत्कार करके देता था। यदि वह किसी का विशेष सत्कार करता था, तो वह पहले उसकी योग्यता को परखता था, उसके गुणों की परीक्षा लेता था, फिर उसका सत्कार करता था। [38]

अतः राजा से उत्तम व्यवहार प्राप्त करना तथा निष्पक्ष न्याय पाना प्रजा का अधिकार है। दुर्योधन अपने गुरू द्वारा बताए गए उपदेशों का पूर्णतया पालन करते हुए यह नहीं देखता कि अन्यायी दुश्मन है या उसका कोई परिजन या पुत्र, सबको समदृष्टि से देखता है और उचित दण्ड देता है।[39]

प्रजा वर्ग की सुरक्षा के लिए उस समय समाज के विविध वर्ग राजा को कर भी प्रदान करते थे। उदाहरण के लिए कृषक दुर्योधन को फसल का कुछ अंश कर के रूप में देते थे। तथा इसके प्रतिफल के रूप में राजा प्रजा को सुरक्षा प्रदान करता था। दुर्योधन ने बहुत दिनों तक प्रजा के हित के लिए उपाय किए, किसानों के अनाज से जो धन प्राप्त हुआ था, उसे प्राप्त करके वो शोभायमान हो रहा था।[40]

दुर्योधन प्रजाजनों पर दयाभाव रखते हुए सम्पूर्ण प्रजा की हर प्रकार से रक्षा कर रहा था, अतः बिना किसी उपद्रव केपूरा साम्राज्य उन्नति कर रहा था। इस कारण दुर्योधन कुबेर के समान धनाढ्य हो रहा था। दुर्योधन के गुणों से सुसज्जित पूरी पृथ्वी इस प्रकार भर गई थी कि वो धनरूपी दूध दे रही थी। इस कारण न केवल राजा बल्कि प्रजा भी उन्नति करने लगी। राजा से सुरक्षा प्राप्त करना भी प्रजा का अधिकार था।

श्रीहर्ष के काल तक श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधृत वर्ण–व्यवस्था भग्नप्राय हो चुकी थी। आर्यो ने जिस स्वस्थ वर्ण–विभाजन को जन्म दिया था। समाज में अब उसका रूप विकृत हो चला था। यद्यपि कवि वर्णचतुष्ट्य की ओर इंगित करता है[41] किन्तु समाज में अनेक जातियों एवं उपजातियों का उद्भव हो चुका था। नैषध काव्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, एवं शूद्र के अतिरिक्त नैषध में कहार, नाई, नटी, चाण्डाल तथा कायस्थ आदि जातियों का भी नामोल्लेख हुआ है। ब्राह्मण समाज के मूर्धन्य पुरोधा होने के कारण जन–गण–मन में उनके प्रति गहरी आस्था थी। उनके लिए "द्विजपति"[42] एवं "द्विजराज"[43] जैसे सम्मान सूचक श्ब्दों का प्रयोग किया जाता था।

तत्कालीन समाज में सामान्य ब्राह्मण भी राजा द्वारा सम्मान के पात्र थे, फिर जो तपोधनी थे, वे पूजा एवं श्रद्धा के पात्र क्यों न होते ? तपः पूत महर्षि नारद पर्वत मुनि के साथ जब इन्द्र लोक को प्रस्थान करते हैं तो मार्ग में (जड) आकाश गंगा के द्वारा उनका आतिथ्य किया गया [44]

अन्य स्थल पर दिखाया गया है कि महाराज नल ब्राह्मणों का पूजन देवताओं के पूजन के समान पत्र, पुष्प एवं फलो के द्वारा संपादित करते थे।[45]

यद्यपि समाज में ब्राह्मणों के लिये मदिरापान करना गर्हित समझा जाता था[46] किन्तु सौत्रामणि इष्टि (इन्द्र सम्बन्धी यज्ञ) के समय वह मदिरापान कर सकता था ।[47]

ब्राह्मण श्रेष्ठ की हत्या की गणना पंचपातकों में थी, किन्तु पतित ब्राह्मण का वध करना पाप न था।[48]

तत्कालीन समाज में क्षत्रियों वीरों को अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता था।क्षत्रियों काद्वितीय स्थान था सामाजिक व्यवस्था, राज्य प्रशासन एवं रक्षा का भार क्षत्रियों की भुजा पर ही था। श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य में क्षात्र तेज पर सर्वाधिक बल दिया है। यथा–महाकाव्य के नायक राजा नल ने तो 16 वर्ष की अल्पायु में ही

अखिल विश्व का विजेता बनकर अपने राजकोष को अक्षय कर लिया था।[49]अस्त्र शस्त्र विद्या में प्रवीण क्षत्रिय नरेश दूसरों को भी प्रशिक्षण देते थे[50] युंद्ध में चतुरंगिणी सेना का अत्यधिक महत्त्व था।[51]

राजा नल का राज्य वैभव से सर्वत्र बिखरा था। उनके राज्य की अर्थ व्यवस्था बहुत सुदृढ. थी। कुण्डिनपुरी को लोकत्रय के सारभूत पदार्थो को धारण करने वाली वैभव सम्पन्ना नगरी के रूप में चित्रित किया है।[52]

विशेष परिस्थितियों के लिए राजकोष की व्यवस्थता होती थी। महाराज नल के राज्य में ईतियाँ एवं भीतियाँ समाप्त थी। अतः प्रजा सुखी सम्पन्न एवं सुरक्षित थी।[53]

पराजित शत्रुओ के साथ अत्यधिक निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया जाता था किन्तु यह हृदयहीन व्यवहार उद्धत शत्रु के साथ ही किया जाता था। इसके विपरीत शरणागत शत्रु की रक्षा की जाती थी।[54]

तत्कालीन समाज में क्षत्रिय वीरों को अत्यधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता था। युद्ध स्थल पर वीरगति को प्राप्त योद्धा को स्वर्ग उपलब्ध होता है ऐसा लोक विश्वास था। [55]

एक अन्य मतानुसार युद्ध में मृत्यु का वरण करने वाले वीर सूर्य मण्डल का भेदन कर संसार सागर से तीर्ण हो जाते है।[56]

क्षत्रिय वीर के लिए युद्ध स्थल से विमुख होना अत्यधिक अकीर्तिकर समझ जाता था[57]

आचार्य मनु ने परम्परागत कर्म बतलाते हुए कहा है [58]

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्यनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियज्य समासतः।।

अर्थात प्रजा रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन, तथा विषयो में अनासक्ति ये क्षत्रियो के प्रमुख कर्म है। महाकाव्य के क्षत्रिय नायक (राजा नल) में भी उपर्युक्त समस्त गुणों का समावेश था। लोकहित चिन्तन क्षत्रियों का प्रथम आदर्श था। नैषधचरित महाकाव्य

के 17वें सर्ग में राजा नल ने सुखी एवं सम्पन्न प्रजा का चित्रण किया गया है। जिससे ज्ञात होता है कि प्रजा के अधिकारों का किसी भी प्रकार से दमन नहीं किया गया था। पुण्य आत्मा राजा नल के राज्य में लोकभय की बात तो दूर किसी प्रकार की ईतियां, भीतियां तक नही थी।[59]

राजा नल के राज्य मे हिंसा तथा कलह के कहीं भी दर्शन नहीं होते थें।[60] अर्थात सम्पूर्ण प्रजा सुखमय जीवन जीने का अधिकार रखती थी। राजा नल स्वयं अपनी प्रजाओं सहित वर्णाश्रम मार्ग पर गमन करने वाले थे।[61]

इससे ज्ञात होता है कि प्रजा वर्ग अपने अपने वर्णाश्रमों का नियमित पालन करते थे तथा स्मृतियों द्वारा दिये अधिकारों और कर्त्तव्यों का भी पालन करते थे।

प्रजा को जीवन के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ प्रजा का मूल अधिकार थी तथा राजा नल यागादि कार्यो से देवो को तथा तड़ाग, वाटिकादि के निर्माण से प्रजा को सन्तुष्ट करते हुए संसारिक सुखो के भागी बनते थे।[62]

महाराज नल की दण्ड व्यवस्था अत्यधिक कठोर थी । अतः भयवशात् शत्रु अथवा मित्र कोई भी अपराध करने का दुस्साहस नहीं करता था लेकिन अपराध करने वाले व्यक्ति को दंडित किया जाता था। फलस्वरूप दण्डभयवशात् कोई व्यक्ति पापकर्म में प्रवृत्त नहीं होता था तथा प्रजाजनों के कष्टों को मिटाता था।[63]

किं वहुना, राजा नल ने पुण्य को चारों चरणो (तप, दान, यज्ञ, ज्ञान रूप) से स्थिर कर दिया था। तथा उनके शासन काल में धर्म विरोधी अधर्म भी तपस्वी बन गया था[64] कृपण व्यक्ति के मरणोपरांत उसकी सम्पत्ति का राजकीय कोष में अधिग्रहन कर लिया जाता था।[65]

विरोधी राजाओं की सम्पत्ति को लूटकर राजकीय कोष में एकत्रित कर लिया जाता था। इस धन से कोषागार अक्षय हो जाता था।[66] समाज के आर्थिक विकास का भार वैश्यो के कन्धों पर निर्भर था। यद्यपि महाकाव्य में वैश्य जाति का विशेष वर्णन उपलब्ध नहीं है किन्तु "वणिक" शब्द का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।[67]

श्रीहर्ष ने अपने काव्य के माध्यम से व्यापार एवं वाणिज्य के जो संकेत दिये हैं उनसे वैश्यों की वैभव सम्पन्नता का अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है कि

वैश्य वर्ग को पर्याप्त व्यापारिक स्वतन्त्रता थी–उदा. के लिए कुण्डिनपुरी के आपन का दृश्य। कुण्डिनपुरी का बाजार रूपी समुद्र सर्वथा गरजता था। वह समुद्र शंखो तथा मणियों से भरपूर था, कौडियों की गणना में व्यग्र विक्रेताओं के हाथ मानों उस सागर के केकडे थे तथा श्वेत कर्पूर राशि ही उसकी बालुका थी।[68]

बाजार की जिन वीथियो में कुंकुमादि लेप सामग्रियों का विक्रय होता था, वे ऐसी प्रतीत होती थी मानो अस्तंगत सूर्य की रक्ताभ किरणें निराश्रित होकर भूमि पर गिर गइ हो[69] वणिकों की दुकानों में संसार की समस्त वस्तुए वैसे ही देखी जा सकती थी जैसे कभी मार्कण्ड मुनि ने भगवान विष्णु के उदर में अखिलविश्व का दर्शन किया था।[70]

श्री हर्ष ने दमयन्ती के नेत्र सौन्दर्य का वर्णन करते समय मृगियों द्वारा सौन्दर्य ऋण ब्याज सहित प्रत्यावर्तित करने की बात कहीं है।[71]

इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समाज में उत्तमर्ण एवं अधमर्ण रहे होंगे तथा बहुत सम्भव है कि ऋण एवं ब्याज का आदान–प्रदान वणिक् वर्ग ही करता था। वर्णत्रय की सेवा करना ही शूद्रो का धर्म बताया है।[72]

नैषध में चाण्डाल के लिए "जनगंम्" पद प्रयुक्त हुआ है समाज में इनकी कोई प्रतिष्ठा न थी । अपवित्र होने के कारण द्विज उन्हें देखना भी नहीं चाहते थे।[73]

मालिन्यप्रियता के कारण उच्च वर्ग के लिए ये सर्वथा अस्पृश्य थे।[74]

धनुष के लिए बाण बनाना इनका प्रमुख व्यवसाय था[75] परन्तु मदिरापान के लिए पूर्णतः स्वतंत्र थे।[76]

नर्तकी के समान भण्ड भी दलित वर्गीय व्यक्ति थे। ये अपनी अश्लील चेष्टाओं द्वारा समाज का सस्ता मनोरंजन करते थे । ये प्रायः नगर के बाहर ही रहते थे परन्तु सामाजिक विसंगतियों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए इन्हें दण्डित नहीं किया जाता था।

बन्दी चारण तथा वैतालिकों का प्रमुख कार्य शासकों का गुणगान करना था। किन्तु परस्पर इनके कार्यो में अत्यन्त सूक्ष्म भेद भी दिखायी पड़ता है। बन्दीजन राजाओं की विरूदावली गायन किया करते थे।[77]

इनके प्रभावी गायन से सन्तुष्ट होकर राजा लोग धन आदि के द्वारा इन्हें परितुष्ट करते थे। इनकी स्त्रियाँ राजाओं को उनके दैनिक कार्यो के लिए प्रेरित करती हुई समय की सूचना दिया करती थी।[78]

वैतालिकों द्वारा किये गये प्रभात वर्णन से सन्तुष्ट महादेवी दमयन्ती द्वारा चारणों को पर्याप्त आभूषण पारितोषिक रूप में दिया गया। जो कि उनका अधिकार था।[79]

नरेशो द्वारा दिए गये धन से ही ये अपनी जीविका चलाते थे। दमयन्ती का गुण कीर्तन करने वाले बन्दिजनों के लिए राजा नल ने इतने अधिक धन की वृष्टि की,[80] कि उन्होंने अधिक बोझ हो जाने के कारण श्रेष्ठ रत्नों को भूमि पर ही पड़ा छोड़ दिया, जिन्हें उत्सुक लोगों ने बहुत देर तक ऊँञ्छ किया।[81.]

इसके अतिरिक्त चाण्ड़ाल,[82] लुब्धक[83], किरात[84], धीवर,[85] बन्दीचारण वैतालिक,[86] वनपाल,[87] सारथि,[88] जुलाहा,[89] कुम्भकार,[90] नापित,[91] बढई (वार्द्धकि),[92] रजक[93] स्वर्णकार,[94] नर्तकी,[95] भण्ड,[96] नट,[97] ऐन्द्राजालिक,[98] शिल्पी,[99] चित्रकार[100] आदि जातियों का भी उल्लेख मिलता है ।

समाज में इनके अधिकारों के सन्दर्भ में कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता है उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते है। कि प्रजा में शूद्र वर्ग प्रायः उपेक्षित था परन्तु उसके जीवन के अधिकारों का हनन नहीं किया गया था। और वे अपने जीवन से सन्तुष्ट थे। यही नहीं शूद्र वर्ग के कला सम्पन्न लोगों को समाज में आदर भी प्राप्त था।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
   कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।। मनुस्मृति– 2/26
2. स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
   महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं कियते तनुः।। मनुस्मृति– 2/28
3. नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वास्य कारयेत्।
   पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते।। मनुस्मृति– 2/30
4. चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।
   षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मगंलं कुले।। मनुस्मृति– 2/34
5. चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।
   षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मगंलं कुले।। मनुस्मृति– 2/34
6. चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
   प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्।। मनुस्मृति– 2/35
7. गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
   गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।। मनुस्मृति–2/36
8. वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
   पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।। मनुस्मृति–2/67
9. बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मता।
   शरणागतहन्तॄंश्च स्त्रीहन्तॄंश्च न संवसेत्।। मनुस्मृति–11/190
10. समं समन्ततो राज्ञामापतन्तीरनीकिनीः।
    कार्ष्णिःप्रत्यग्रहीदेकःसरस्वानिव निम्नगाः।। शिशुपाल– 19/10
11. शिष्याःकलाविधिषु भीमभुवो वयस्या वीणामृदुक्वणनकर्मणि याः प्रवीणा।
    आसीनमेनमुपवीणयितुं ययुस्ता गन्धर्वराजतनुजामनुजाधिराजम्।।नैषध.–21/110
12. इति निगदितवन्तं सूनुमुञ्चैर्मघोनःप्रणतशिरसमीशःसादरं सान्त्वयित्वा।
    ज्वलदनलपरीतं रौद्रमस्त्रं दधानं धनुरूपपदमस्मै वेदमभ्यादिदेश।। किराता.–18/44

13. कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।

न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।। किराता. –1/2

14. द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
स सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं विनिश्रिच्तार्थामिति वाचमाददे।। किराता.– 1/3

15. क्रियासु युक्तैर्नृप! चारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।। किराता. 1/4

16. स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हिंतान्न यः संश्रृणुते स किंप्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।। किराता. 1/5

17. निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवाः क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया निगूढ़तत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्।। किराता.– 1/6

18. मम तावन्मतमिदं श्रूयतामड.ग वामपि।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि।। शिशुपालवधम्– 2/12

19. य इहात्मविदो विपक्षमध्ये सहसम्वृद्धियुजोऽपि भूभुजः स्युः।
बलिपुष्टकुलादिवान्यपुष्टैः पृथगस्मादचिरेण भाविता तैः।। शिशुपालवधम्– 2/116

20. अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृतिः सन्निबन्धना।
शब्दविघेव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।। शिशुपालवघम् –2/112

21. सम्पादितफलस्तेन सपक्षः परभेदन ।
कार्मुकेणेव गुणिना बाणः संघानमेष्यति।। शिशुपालवधम्– 2/97

22. अज्ञातदोषैर्दोषज्ञैरूद्दूष्योभयवेतनैः।
भेद्याःशत्रोरभिव्यक्त शासनैः सामवायिंकाः।। शिशुपालवधम–् 2/113

23. अथावदद्भीमसुतेङ्गितात् सखी जनैरकीर्त्तिर्यदि वाऽस्य नेष्यते।
मयाऽपि सा तत् खलु नेष्यते परं सभाश्रवःपूरतमालवल्लिताम्।। नैषध.–12/105

24. विलासवैदग्ध्यविभूषणश्रीस्तेषां तथाऽभूत् परिचारकेऽपि।
अज्ञासिषुःस्त्रीशिशुबालिशास्तं यथागतंनायकमेव कञ्चित्।। नैषध.– 10/32

25. गीतमः वाद्यम्,नृत्यम्, आलेख्यम्, विशेषेकच्छेद्यम्, तण्डुलकुसुमबलिविकाराः पुष्पास्तरणम्, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचनम्, उदकवाद्यम्, उदकाघातः, चित्राश्च, योगाः, मात्यग्रथनविकल्पाः, शोखरकापीडयोजनम्,

नेपथ्यप्रयोगाः, कर्णपत्रभङ्गाः, गन्धयुक्तिः, भूषणयोजनम्, ऐन्द्रजालाः कौचुमाराश्च, योगाः, हस्तलाधवम्, विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनम्, सूचीवानकर्माणि, सूत्रक्रीडा, वीणाडमरूवाद्यानि, प्रहेलिका, प्रतिमाला, दुर्वाचकयोगाः, पुस्तकवाचनम्, नाटकाख्यायिकादर्शनम्, काव्यसमस्यापूरणम, पट्टिकावानवेत्रविकल्पाः, तक्षककर्माणि, तक्षणम्, वास्तुविधा, रूप्यपरीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकरज्ञानम्, वृक्षायुर्वेदयोगाः, मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि, शुकसारिकाप्रलायनम्, उत्सादने–संवाहने–केशमर्दने च कौशलम्, अक्षरमुष्टिकाकथनम्, म्लेच्छितविकल्पा, देशभाषाज्ञानम्, पुष्पकटिकानिमित्तज्ञानम्, यन्त्रमातृका, धारणमातृका, सम्पाठयम्, मानसीकाव्यक्रिया,अभिधानकोशः, छन्दोज्ञानम्, क्रियाकल्पः, छलितकयोगाः, वस्त्रगोपनानि, द्यूतविशेषः, आकर्षक्रीडा, बालक्रीडनकानि, वैनयिकीनाम, वैजयिकीनाम, ब्यायामिकीनांच विद्यानां ज्ञानम् इति चतुः षयिटरङ्गविद्याः कामसूत्रस्यावयविन्यः। कामसूत्र–1/3/15

26. पुराधिरूढः शयनं महाधनं विबोध्यसे यः

स्तुतिगीतिमङ्गलैः।। किराता.– 1/38

27. सिषिचुरवनिमम्बुवाहाः शनैः सुरकुसुममियाय चित्रं दिवः।

विमलरूचिभृशं नभो दुन्दुभैर्ध्वनिरखिलमनाहतस्यानशे ।। किराता.–18/17

28. रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः पृथग्विभिन्नश्रतिमण्डलैः स्वरैः ।

स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः।। शिशुपालवधम्– 1/10

29. रतिरभसविलासाभ्यासतान्तं न यावन्नयनयुगममीलत्तावदेवाहतोऽसौ।

राजनिविरतिशंसी कामिनीनां भविष्यद्विरहविहितनिद्राभङ्गमुच्चैर्मृदङ्ग।। शिशुपालवधम् –11/2

30. विदलत्पुष्कराकीर्णाः पतच्छङ्खकुलाकुलाः।

तरत्पत्ररथा नद्यः प्रासर्पन्रक्तवारिजाः।। शिशुपालवधम्– 19/77

31. भैमीमुपावीणयदेत्य यत्र कलिप्रियस्य प्रियशिष्यवर्गः।

गन्धर्ववध्वः स्वरमध्वरीणतत्कण्ठनालैकधुरीणवीणः ।। नैषध.– 6/65

32. शिष्याःकलाविधिषु भीमभुवो वयस्या वीणामृदुक्वणनकर्मणि याः प्रवीणाः।

आसीनमेनमुवीणयितुं ययुंस्ता गन्धर्वराजतनुजा मनुजाधिराजम्।। नैषध.– 21/110

33. भितिगर्भगृहगोपितैर्जनैर्यः कृताद्भुतकथादिकौतुकः

सूत्रयन्त्रजविशिष्टचेष्टयाऽऽश्चर्यस्त्रिजबहुशालभञ्जिकः।। नैषध.–18/13

34. कृष्णासारमृगश्रृङ्गभङ्गुराः स्वादुरूज्ज्वलरसैकसारणिः।

ननिशं त्रुटति यत्पुरः पुरा किन्नराविकटगीतिझङ्कृतिः।। नैषध.—18/18

35. तदा निसस्वानतमां घनं घनं ननाद तस्मिन्नितरां ततं ततम्।
अवापुरूच्चैःसुषिराणि राणितामानमानद्धमियत्तयाऽध्वनीत्।। नैषध.— 15/16

36. शशाक निह्नोतुमनेन तत्प्रियामयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम्।
समाज एवालपितासु वैणिकैर्मूमूर्च्छ यत्पञ्चममूर्च्छनासु च।। नैषध.—1/52

37. सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
न सन्ततं दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।। किराता.—1/10

38. निरत्ययं साम न दानवर्जितं न भूरि दानं विरहस्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया।।किराता.— 1/12

39. वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।। किराता.— 1/13

40. सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलैरकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृकाश्रिचराय तस्मिन् कुरवश्रचकासति।। किराता.— 1/17

41. स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी बिभर्तु या ?।
स्वरभेदमुपैतु या कथं कलितानल्पमुखारवा न वा ? ।। नैषध.— 2/98

42. (प्रक्षिप्त है)।। नैषध.— 4/1

43. (क) वद विधुन्तुदमालि! मदीरितैस्त्यजसि किं द्विजराजधिया रिपुम्।
किमु दिवं पुनरेति यदीदृशःपतित एष निषेव्य हि वारूणीम्।। नैषध.— 4/70

43 (ख) .पर्यभूद्दिनमणिर्द्विराजं यत्करैरहह तेन सदा तम्।
पर्यभूत् खलु करैर्द्विजराजः कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते ?।। नैषध.— 5/6

44. विष्टरं तटकुशालिभिरद्भिः पाद्यमर्ध्यमथ कच्छरूहाभिः।
पद्मवृन्दमधुभिर्मधुपर्कं स्वर्गसिन्धुरदितातिथयेऽस्मै।। नैषध.— 5/7

45. दलपुष्पफलैर्देवद्विजपूजाभिसन्धिना ।
स नलेनार्जितान् प्राप तत्र नाकमितुं द्रुमान्।। नैषध.— 17/207

46. विप्रे धयत्युदधिमे कतमं त्रसत्सु यस्तेषु पञ्चसु बिभाय न शीधुसिन्धुः।
तस्मिन्ननेन च निजालिजनेन च त्वं सार्द्ध विधेहि मधुरा मधुपानकेलीः।।नैषध. —11/68

47. आनन्दन्मदिरादानं विन्दन्नेष द्विजन्मन।
दृष्ट्वा सौत्रामणीमिष्टिं तं कुर्वन्तमदूयतः।। नैषध.– 17/179

48. वद विधुन्तुदमालि !मदीरितैस्त्यजसि किं द्विजराजधिया रिपुम् ।
किमु दिवं पुनरेति यदीदृशः पतित एष निषेव्य हि वारूणीम् ।। नैषध.– 4/70

49. जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम्।
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथालिङ्गदथास्य यौवनम् ।। नैषध.– 1/19

50. तानसौ कुशलसूनृसेकैस्तर्पितानथ पितेव विसृज्य ।
अस्त्रशस्त्रखुरलीषु विनिन्ये शैष्यकोपनमितानमितौजाः ।। नैषध.– 21/5

51. निस्त्रिंशत्रुटितारिवारणघटाकुम्भास्थिकूटावट
स्थानस्थायुकमौक्तिकोत्करकिरः कैरस्य नायं करः।
उन्नीतश्चतुरङ्गसैन्यसमरत्वङ्गत्तुरङ्गक्षुरक्षुण्णासु
क्षितिषु क्षिपन्निव यशः क्षोणीजबीजव्रजम् ।। नैषध.– 12/66

52. क्षितिगर्भधराम्बरालयैस्तमध्योपरिपूरिणां पृथक्।
जगतां खलु याऽखिलाद्भुताऽजनि सारेर्निजचिह्नधारिभिः।। नैषध.– 2/81

53. निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरितिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।
न तत्यजुर्नू नमनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः।। नैषध.– 1/11

54. न पाहि पाहीति यदब्रवीरमुं मदोष्ठ! तेनैवमभूदिति क्रुधा।
रणक्षितावस्य विरोधिमूर्द्धभिर्विदश्य दन्तैर्निजमोष्ठमास्यते।। नैषध.– 12/63

55. द्वेष्याकीर्तिकलिन्दशैलसुतया नद्याऽस्य यद्दोर्द्वयी
कीर्त्तिश्रेणिमयी समागममगात् गङ्गा रणप्राङ्गणे।
तत्तस्मिन् विनिमज्ज्य बाहुजभटैरारम्भि रम्भापरी
रम्भानन्दनिकेतनन्दनवनक्रीडादराडम्बरः।। नैषध.– 12/12

56. अकर्णधाराशुगसम्भृताङ्गतां गतैररित्रेण विनाऽस्य वैरिभिः।
विधाय यावत्तरणेभिदामहो! निमज्ज्य तीर्णः समरे भवार्णवः।। नैषध.– 12/71

57. भूमीभृतःसमिति जिष्णुमपव्यपायं जानीहि न त्वमघमवन्तममुं कथञ्चित्।
गुप्तं घटप्रतिभटस्तनि! बाहुनेत्रं नालोकसेऽतिशयमद्भुतमेतदीसम्।। नैषध.– 13/5

58. मनुस्मृति– 1/89

59. निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरितिभावं गमितेऽतिवृष्टयः।
न तत्यजुर्नू नमनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः।। नैषध.– 1/11

60. क्वापि नापश्यदन्विष्यन् हिंसानात्मप्रियामसौ ।
स्वमित्रं तत्र न प्रापदपि मूर्खमुखे कलिम् ।। नैषध.–17/174

61. वर्णाश्रमाचारपथात् प्रजाभिः स्वाभिः सहैवास्खलते नलाय।
प्रसेदुषो वेदृशवृत्तभङ्गयादित्सैव, कीर्त्तेर्भुवमानयद् वः।। नैषध.– 14/42

62. इष्टेन पूर्तेन नलस्य वश्यास्स्वर्भोगमत्रापि सृजन्त्यमर्त्याः।
महीरूहो दोहदसेकशक्तेराकालिकं कोरकमुद्गिरन्ति।। नैषध.– 3/21

63. दण्डं बिभर्त्त्ययमहो ! जगतस्ततः स्यात् कम्पाकुलस्य सकलस्य न पङ्कपात।
स्वर्वैद्ययोरपि मदव्ययदायिनीभिरेतस्य रूग्भिरमरः खलु कश्चिदस्ति ?।। नैषध.– 13/15

64. पदैश्चतुर्भिस्सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे ?।
भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन् दघावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम्।। नैषध.– 1/7

65. मा धनानि कृपणःखलु जीवन् तृष्णयार्पयतु जातु परस्मै ।
तत्र नेष कुरूते मम चित्र यत्तु नार्पयति तानि मृतोऽपि।। नैषध.– 5/89

66. जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं प्रणीतवान् शैशवशेषवानयम् ।
सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथालिङ्गदथास्य यौवनम्।। नैषध.–1/19

67. काभिर्न तत्राभिनवस्मराज्ञाविश्रवासनिक्षेपवणिक् क्रियेऽहम् ?।
जिह्वेति यन्नेव कुतोऽपि तिर्यक्कश्चित्तिरश्चस्त्रपते न तेन।। नैषध.– 3/43

68. बहुकम्बुमणिर्वराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्करः ।
हिमबालुकयाऽच्छबालुकः पटु दध्वान यदापणार्णवः ।। नैषध.– 2/88

69. रूचयोऽस्तमितस्य भास्वतः स्खलिता यत्र निरालयाः खलु।
अनुसायमभुर्विलेपनापणकश्मीरजपण्यवीथयः ।। नैषध.– 2/90

70. विततं वणिजापणेऽखिलं पणितुं यत्र जनेन वीक्ष्यते।
मुनिनेव मृकण्डुसूनुना जगतीवस्तु पुरोदरे हरेः।। नैषध.– 2/91

71. ऋणीकृता किं हरिणीभिरासीदस्याः सकाशान्नयनद्वयश्रीः।

भूयोगुणेयं सकला बलाद्यत्ताभ्योऽनयाऽलभ्यत बिभ्यताभ्यः।। नैषध.– 7/33

72. एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शृश्रूषामनसूयया।। मनुस्मृति– 1/91

73. विमुखान् दृष्टुमप्येनं जनङ्गममिव द्विजान।

एष मत्तः सहेलं तानुपेत्य समभाषत।। नैषध.–17/111

74. म्लानिस्पृशःस्पर्शनिषेधभूमेः सेयं त्रिशङ्कोरिव संपदस्य।

न किंचिदन्यत्प्रति कौशिकीये द्दशौ विहाय प्रियमातनोति।। नैषध.– 22/36

75. तवास्मि मां धातुमप्युपेक्षसे मृषामरं हामरगौरवात् स्मरन्।

अवेहि चण्डालमनङ्गमङ्ग!तं स्वकाण्डकारस्य मघोःसखा हि सः।। नैषध.– 9/151

76. चण्डालस्ते बिषमविशिखः स्पृश्यते

दृश्यते स ख्यातोऽनङ्गस्त्वयि निजभिया किन्त्रु कृत्ताङ्गुलीकः।

कृत्वा मित्रं मधुमधिवनस्थानमन्तश्चरित्वा संख्याः

प्राणान् हरति हरितस्त्वद्यशस्तज्जुषन्ताम्।। नैषध.–9/156

77. उपासनामेत्य पितुस्स्म रज्यते दिने सावसरेषु वन्दिनाम्।

पठत्सु तेषु प्रति भूपतीनलं विनिद्ररोमाजनि श्रृण्वती नलम्।। नैषध.– 1/34

78. अकथयदथ बन्दिसुन्दरी द्वाःसविधमुपेत्य नलाय मध्यमह्नः।

जय नृप! दिनयौवनोष्मतप्ता प्लवनजलानि पिपासति क्षितिस्ते।। नैषध.– 20/157

79. प्रातर्वर्णनयाऽनया निजवपुर्भूषाप्रसादानदाद्

देवी वः परितोषितेति निहितामान्तःपुरीभिः पुरः।

सूता मण्डनमण्डलीं परिदधुर्माणिक्यरोचिर्मय

क्रोधावेगसरागलोचनरूचा दारिद्र्यविद्राविणीम्।। नैषध.–19/65

80. अथोपकार्यां निषधावनीपतिर्निजामयासीद्वरणस्त्रजाऽन्वितः।

वसूनि वर्षन् सुबहूनि वन्दिनां विशिष्य भैमीगुणकीर्त्तनाकृताम् ।। नैषध.– 15/1

81. तथा पथि त्यागमयं वितीर्णवान् यथाऽतिभाराधिगमेन मागधैः।

तृणीकृतं रत्ननिकायमुच्चकैश्चिकाय लोकश्चिरमुञ्छमुत्सुकः।। नैषध.– 15/2

82. चण्डालस्ते बिषमबिशिखःस्पृश्यते दृश्यते स

ख्यातोऽनङ्गस्त्वयि निजभिया किन्नु कृत्ताङ्गुलीकः।

कृत्वा मित्रं मधुमधिवनस्थानमन्तश्चरित्वा सख्याः

प्राणान् हरति हरितस्त्वद्यशस्तज्जुषन्ताम्।। नैषध.– 9/156

83. बन्धाय दिव्ये न तिरश्चि कश्चित्पाशादिरासादितपौरूषस्स्यात्।

एकं विना माद्दशि तन्नरस्य स्वर्भोगभाग्यं विरलोदयस्य।। नैषध.–3/20

84. इतस्त्रसद्विद्रुतभूभृदुज्झिता प्रियाऽथ दृष्टा वनमानवीजनैः।

शशंस पृष्टाऽद्भूतमात्मदेशजं शशित्विषः शीतलशीलतां किल ।। नैषध.– 12/26

85. अह्नि भानुभुवि दासदारिकां यच्चरः परिचरन्तमुज्जगौ।

कालदेशविषयासहस्मरादुत्सुकं शुकपितामहं शुकः।। नैषध.– 18/24

86. नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान् मिषेण दूतद्विजवन्दिचारणाः।

निपीय तत्कीर्तिकथामथानया चिराय तस्थे विमनायमानया।। नैषध.– 1/37

87. ततः प्रसूने च फले च मंजुले स सम्मुखीनाङ्गुलिना जनाधिपः।

निवेद्यतानं वनपालपाणिना व्यलोकयत् काननरामणीयकम्।। नैषध.– 1/76

88. उवास वैदर्भगृहेषु पञ्चषाः निशाःकृशाङ्गीं परिणीय तां नलः।

अथ प्रतस्थे निषधान् सहानया रथेन बार्ष्णेयगृहीतरश्मिना।। नैषध.– 16/112

89. व्यासस्यैव गिरा तस्मिन् श्रद्धेत्यद्धा स्थ तान्त्रिकाः।
मत्स्यस्याप्युपदेश्यान् वः को मत्स्यानपि भाषताम्।। नैषध.– 17/63

90. तरूणतातपनद्युतिनिर्मितद्रढिम तत्कुचकुम्भयुगं तथा।
अनलसङ्गतितापमुपैतु नो कुसुमचापकुलालविलासजम्।। नैषध.– 4/7

91. दिनमिव दिवाकीर्त्तिस्तीक्ष्णैः क्षुरैःसवितुः
करैस्तिमिरकबरीलूनींकृत्वा निशां निरदीधरत्।
स्फुरति परितः केशस्तोमैस्ततःपतयालुभिध्रु
र्वमधवलंतत्तच्छायच्छलादवनीतलम्।। नैषध.– 19/55

92. नय नयनयोद्रकि् पेयत्वं प्रविष्टवतीरमू भवनवलभीजालान्नला इवार्ककराङ्गुलीः।
भ्रमदगुणक्रान्ता भ्रान्ति भ्रमन्त्य इवाशुद्ध याः पुनरपि धृताः कुन्दे किं वा न वर्द्धकिना दिवः?।। नैषध.– 19/54

93. अभिर्मृगेन्द्रोदरि!कौमुदीभिःक्षीरस्य धाराभिरिव क्षणेन ।
अक्षालि नीली रूचिरम्बरस्था तमोमयीयं रजनीरजक्या।। नैषध.– 22/111

94. येषु येषु सरसा दमयन्ती भूषणेषु यदि वापि गुणेषु।
तत्र तत्र कलयापि विशेषोयः स हि क्षितिभृतां पुरूषार्थः।। नैषध.– 5/32

94. कपोलपालीजनितानुबिम्बयोः समागमात् कुण्डलमण्डलद्वयी।
नलस्य तत्कालमवाप चित्तभूरथस्फुरच्चक्रचतुष्कचारूताम्।। नैषध.– 15/65

95. अमुष्य विधा रसनाग्रनर्तकी त्रयीव नीताङ्गगुणेन विस्तरम्।
अगाहताष्टादशतां जिगीषया नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् ।। नैषध.– 1/5

96. अहो!नापत्रपाकं ते जातरूपमिदं मुखम् ।
नातितापाजंनेऽपि स्यादितो दुर्वर्णनिर्गमः।।नैषध.– 20/140

97. एतेनोत्कृत्तकण्ठप्रतिसुभटनटारब्धनाट्याद्भुतानां कष्टं
द्रष्टैव नाभूत् भुवि समरसमालोकिलोकास्पदेऽपि।

अश्वैरस्वैरवेगैःकृतखुरखुरलीमङ्क्षुसङ्क्षुभ्यमाण

क्षमापृष्ठोत्तिष्ठदन्धङ्करणधुरारेणुधारान्धकारात्।।नैषध.– 12/100

98. विलोकके नायकमेलकेऽस्मिन् रूपान्यथाकौतुकदर्शिभिस्तैः।

बाधा बतेन्द्रादिभिरिन्द्रजालविद्याविदां वृत्तिवधाद् व्यधायि ।। नैषध.– 14/67

99. कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः।

वियोक्ष्यसे वल्लभयेति निर्गता निपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराक्षरा।। नैषध.– 1/138

100. प्रियं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्रियौ लिखाधिलीलागृहभित्ति कावपि।

इति स्म सा कारूतरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते।। नैषध.– 1/38

पंचम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

मानवाधिकार शब्द से आशय मानव के अधिकारों से है। मानवाधिकार सृष्टि के प्रारम्भ से ही उत्पन्न हुए है। मानवाधिकारों का सीधा सम्बन्ध मानवीय सुखों से है और सुख की अवधारणा को तभी से मानना श्रेयस्कर होगा जब से मानव जाति, समाज एवं राज्य का उदय हुआ है। अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियाँ है जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।

मानवाधिकार यद्यपि अध्ययन हेतु अपेक्षाकृत नवीन विषय है किन्तु मानवाधिकार मानव के जन्म से ही प्रारम्भ होते हैं। प्राचीन संस्कृत साहित्य में मानव अधिकारों का उल्लेख मिलता है यथा – वेद, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत् गीता तथा जैन, बौद्ध एवं सिख धर्म ग्रन्थों में मानव अधिकारों की अवधारणा विद्यमान है।

वर्तमान संदर्भ में मानव अधिकारों का मुद्दा सभी जगह सर्वाधिक चर्चा का विषय है। न केवल सभ्य नागरिकों के लिए मानव अधिकारों के संरक्षण की बात की जाती है बल्कि ऐसे पथ भ्रष्ट लोगों के लिए भी मानवाधिकार सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाते है जिनकी वजह से राज्य, समाज एवं नागरिको को क्षति पहुँचती है।

अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक समाज मानव अधिकारों के संदर्भ में पूर्णरूप से जाग्रत है। समाज के सभी वर्ग, चाहे वो महिला हो, बालक हो, वृद्धजन हों या समाज के दूसरे अन्य कमजोर वर्ग हो सभी को मानवाधिकारों से लाभान्वित करने का प्रयास निरन्तर किया जा रहा है।

महाकाव्य मूलतः किसी भी संस्कृति–सभ्यता के जीवन–दर्शन का प्रमाणिक दस्तावेज हैं। परन्तु इसके साथ ही, वे किसी काल विशेष में जन–मानस के अधिकारों और कर्तव्य की जीवंत दृश्यावली भी हैं। मानवाधिकार वस्तुतः मूल अधिकारों का ही

सुनियोजित एवं विस्तृत रूप है। अतएव बृहत्त्रयी में मानवाधिकार के विश्लेषण से पूर्व, वैदिक काल में इनके प्रस्थान बिंदु का अवलोकन करना भी अत्यंत आवश्यक था। इसी विचार के आलोक में, वैदिक काल में मानव के रूप में स्त्री अधिकारों को लेकर जब अवलोकन किया गया, तो भारतीय सभ्यता की उच्च परंपरा के शिखर प्रकट होने लगे। इसमें उल्लेखनीय यह है कि वैदिक काल में पितृसत्तात्मक समाज होने के बावजूद स्त्री के अधिकार अविश्वसनीय रूप से पुरूषों के समानान्तर देखे जाते हैं, परन्तु ज्यों–ज्यों कालक्रम आगे बढ़ता है, स्त्री के पद और गरिमा का हास स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है। "बृहत्त्रयी में मानवाधिकार" विषय पर शोध के उपरांत, इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि भारतीय समाज में स्त्री के अधिकार क्रमशः कम होते चले गए हैं।

भारतीय समाज में एक स्त्री, विषम और दुखद परिस्थितियों में भी किस प्रकार अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए अपनी गरिमा की रक्षा करती है, इसका जीवंत उदाहरण किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि ने द्रौपदी के चरित्र द्वारा स्पष्ट किया है। अथाह अपमान और असहनीय दुःख की अवस्था से गुजरने के पश्चात् भी द्रौपदी ने अडिग साहस और दृढ़ता का परिचय दिया था। उसने अपने मूल मानवाधिकार – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का पूर्ण–रूपेण उपयोग पग–पग पर किया। यही नहीं, युधिष्ठिर और अर्जुन को क्षत्रियों के मूल अधिकार – आत्मगौरव की रक्षा और युद्ध करके सत्ता प्राप्त करने के अधिकारों के लिए उत्तेजित किया। द्रौपदी की यह पूर्ण संचेतना थी कि उसे अपना पक्ष स्पष्टता से रखने का पूरा अधिकार है। इसलिए उसने विधिसम्मत– साम, दाम, दण्ड, भेद–अपनाकर युधिष्ठिर को दुर्योधन से युद्ध करके, अपना सम्मान और शासन करने का वैध अधिकार पाने के लिए उत्प्रेरित किया। द्रौपदी की विशेषता यह थी कि अपनी बात कहते हुए उसने अपनी मर्यादा का कभी उल्लंघन नहीं किया और नारी के मूलाधिकारों और गरिमा की हर प्रकार से रक्षा की।

एक स्त्री विवाह और युद्ध, दोनों ही विपरीत भावभूमि में किस प्रकार स्वयं को प्रस्तुत करती है, बृहत्त्रयी इसका साक्षात प्रमाण है। युद्धक्षेत्र में द्रौपदी का योगदान

अतुलनीय है। पाँच शूरवीर पांडवों की पत्नी और महारथी राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी स्त्री अधिकार की वह ज्वाला है जो कालक्रम की विद्रूपता से भी प्रभावित हुए बगैर सदा जाज्वल्यमान रहेगी। इसी प्रकार, दमयंती का चरित्र है जो विवाह सरीखी कोमल अनुभूति और मर्यादा को स्त्री सुलभ गरिमा से इस प्रकार संपन्न करती है कि देवता और पराक्रमी राजाओं के भी भाव–वैभव फीके पड़ जाते है। सत्य तो यही है कि किसी भी स्त्री के जीवन में विवाह एक ऐसा पड़ाव है, जो उसके जीवन की दिशा और दशा, दोनों बदल सकता है। अतएव स्त्री को अपने जीवनसाथी के चयन का अधिकार मिलना वास्तव में, उसकी प्रभुसत्ता को स्थापित करता है। नैषधीयचरितम् में कवि श्रीहर्ष स्त्री के इस अधिकार की सामाजिक स्थिति को सुंदर और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। बृहत्त्रयी के इस अमूल्य ग्रंथ में मूलतः स्त्री के स्वयंवर के अधिकार का ही प्रमुखता से वर्णन है और यह अद्वितीय बन पड़ा है। यह अनिंद्य सुंदरी दमयंती और कामदेव सदृश नल के स्वयंवर का चित्रण है। दमयंती को वरने के लिए अत्यंत आकर्षक–सौंदर्य के स्वामी, कला–कुशल, नीतिनिष्णात, महापराक्रमी और चक्रधारी अनेक सम्राट और यहां तक कि कतिपय गणमान्य देवता भी सम्मिलित हुए थे। किंतु दमयंती ने स्वयंवर द्वारा स्वेच्छा से वर चुनने के अपने अधिकार का पूर्ण प्रयोग किया। इस अधिकार का लाभ लेते हुए दमयंती ने राजा नल को अपना वर चुना क्योंकि उनसे उसका हृदय जुड़ा था। दमयंती के समक्ष अनेक यशस्वी और रूपवान सम्राट उपस्थित थे, जो उसके मोहपाश में बंधने को लालायित थे। वे अपने संपूर्ण ऐश्वर्य जगत को छोड़कर भी दमयंती के रूप–लावण्य में शेष जीवन बिताने का उपक्रम कर सकते थे। परंतु दमयंती ने उन चक्रवर्ती राजाओं की धन–संपदा, यश और बाहुबल को अपने हृदय के संसार के आगे मिट्टी माना। स्वयंवर के लिए हाथ में वरमाला लिए जब दमयंती इन राजाओं के पास से गुजरी, तो उसने उनकी ओर तनिक भी दृष्टिपात न करके, उनके उत्साह के शिखर ध्वस्त कर दिए और नल के गले में वरमाला पहना दी।

इस प्रकार, एक ओर द्रौपदी ने बृहत्त्रयी में जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उपयोग करते हुए युधिष्ठिर को प्रोत्साहित किया और अन्ततः सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों को बदला। वहीं दूसरी ओर, दमयंती ने स्वयंवर के अधिकार द्वारा अपने हृदय के स्वामी नल को अपना जीवनसाथी बनाया और समाज में भोग–ऐश्वर्य के स्थान पर हृदय की महत्ता को स्थापित किया। दोनों स्त्री पात्रों के द्वारा महाकवि भारवि और कवि श्रीहर्ष ने स्त्री के इन दो सबसे महत्वपूर्ण अधिकारों को तो उजागर किया ही है, साथ ही समाज के समक्ष नए जीवनमूल्यों को स्थापित करने में उनकी प्रभावशाली भूमिका पर भी प्रकाश डाला है।

बृहत्त्रयी में निहित स्त्री अधिकारों के माध्यम से कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में स्त्री को विषम और दुःखद परिस्थितियों में भी अपने अधिकारों का प्रयोग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। चाहे वह आत्मगौरव की रक्षा हो, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता हो या जीवन साथी के चयन की स्वतन्त्रता। स्त्री मर्यादा का उल्लंघन न करते हुए मूलाधिकारों और गरिमा की हर प्रकार से रक्षा करती थी।

स्त्री के अधिकारों के अतिरिक्त, समाज में बालको एवं अन्य वर्गों के अधिकारों पर भी प्रकाश डाला गया है। वैदिक काल में यत्र–तत्र बालकों संबंधी विचार या प्रसंगों से उनके अधिकारों का भी ज्ञान होता है। तत्कालीन समाज की अवधारणा थी कि एक बालक को जन्म से ही उच्च अधिकार प्राप्त होंगे, तो वह समाज का उच्च नागरिक बनेगा। उच्च नागरिक ही एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण कर सकते हैं। माँ के गर्भ से लेकर, विवाह योग्य होने तक और अंततः स्वयं पिता बनने तक की उसकी पूरी यात्रा में उसके अधिकारों की झलक मिलती है।

बच्चों के अधिकार उन्हें दिए जाने वाले षोडश संस्कारों से सम्बन्धित थे। एक बच्चा जब इस संसार में प्रवेश करता है, तो उसे पूर्ण अधिकार है कि उसे ऐसे संस्कार मिलें कि वह योग्य और संपन्न हो। गर्माधान के समय मंत्रोच्चार, माता–पिता द्वारा उसे उसके अधिकार देने की पहली प्रक्रिया है। यह बालक के अस्तित्व की रक्षा का अधिकार है, गर्भाधान से लेकर उपनयन तक के संस्कार बालक के मूल अधिकारों के

लिए ही रचे गए है। जिनको वर्तमानकालिक मानवाधिकारों की भाषा में जन्म सुरक्षा, उचित पोषण, उचित शिक्षा का अधिकार कहा जा सकता है। आचार्य मनु ने तो यहा तक कहा है कि बालक की हत्या करने के पश्चात व्यक्ति कितना भी प्रायश्चित क्यों न कर ले परन्तु उसके साथ कोई भी संसर्ग नहीं करेगा।

बृहत्त्रयी के तीनों महाकाव्य इतने विशाल है फिर भी उनमें कहीं भी बालकों के अधिकारों का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं मिलता है। परोक्ष रूप से जो समझा जा सकता है उसके अनुसार एक बालक को यह अधिकार था कि वो शिक्षा से अपने संस्कार, विचार और सोचने का तरीका बदले और सुसंस्कृत होकर, समाज और राष्ट्र के विकास में सक्रिय रूप से योगदान दे। उदाहरण के रूप में शिशुपालवधम् महाकाव्य में बालक प्रधुम्न को युद्ध में भाग लेते हुए दर्शाया गया है। बृहत्त्रयी में यद्यपि बाल अधिकारों की स्पष्ट विवेचना नहीं मिलती परन्तु नैषध मेंयह उल्लेख मिलता है कि दमयन्ती भी कई गन्धर्व बालिकाओं को संगीत की शिक्षा देती थी। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय न केवल बालकों बल्कि बालिकाओं को भी शिक्षा का अधिकार था परन्तु प्रधानरूप से बालकों को युद्ध, वाणिज्य, कर्मकाण्ड, शास्त्र, वेदादि का शिक्षण वर्ण व्यवस्था के अनुसार प्रदान किया जाता था। तथा बालिकाओं को कला, संगीत आदि के शिक्षण को प्रधानता थी। समाज में एक उच्च नागरिक बनने के लिए लौकिक ज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक ज्ञान में उन्नत होने की भी अति आवश्यकता है। इसके लिए बालक उपनयन संस्कार का लाभ प्राप्त करने के लिए अधिकृत थे। यज्ञ के अधिकार द्वारा कर्मकाण्ड के रूप में भी बालक स्वयं को उन्नत करने के लिए अधिकृत थे।

एक बालक के व्यस्क होने तक माता–पिता उसकी सेवा–सुश्रुषा करते थे, उसे हर रूप से उन्नत करने के लिए, समाज द्वारा उसे दिए गए अधिकारों को पूर्ण रूप से प्राप्त कराने में सहायता करते थे। इसके अतिरिक्त, हर बालक को यह अधिकार प्राप्त था कि वो अपने पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी हो। पूर्ण रूप से व्यस्क होने के उपरांत बालक को विवाह करने का अधिकार भी प्राप्त था। फिर चाहे वो विवाह माता–पिता द्वारा चयन किए गए लड़के या लड़की से हो या वो स्वेच्छा से अपने जीवनसाथी का चयन करे, यह उसके अधिकार–क्षेत्र में आता था।

संक्षेप में कह सकते है कि बालकों को प्राचीन काल से ही संस्कारों के रूप में गर्भावस्था से लेकर वयस्क होने तक कई अधिकार प्राप्त थे। यथा – अस्तित्व की रक्षा का अधिकार, उचित पोषण, विद्या अर्जन का अधिकार, यज्ञ करने का अधिकार, पिता की सम्पत्ति का अधिकारी होना एवं वयस्क होने पर स्वेच्छा से जीवन साथी का चयन करना आदि। अतः आवश्यक है कि बालको के उचित विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उनकी निजता और गोपनीयता का सभी प्रकार से सम्मान किया जाए। इन सभी अधिकारों को प्राप्त करने पर ही बालक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है क्योंकि देश का भविष्य बालकों पर ही टिका है। आधुनिक युग में बालकों के अधिकारों की रक्षा हेतु सरकार प्रयासरत है।

बृहत्त्रयी में अन्य वर्गों के अधिकार में मुख्य रूप से सेवक, दास, कलाकार, प्रजाजन, वनेचर, शूद्रों के सन्दर्भ में विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। बृहत्त्रयी में वर्णित उपरोक्त पात्रों के आधार पर विविध वर्गों के मानवीय अधिकारों का विवेचन किया गया है।

राजा की सेवा में रत रहने वाले सेवकों मे उद्धव जी, वनेचर, कलाकार, प्रजाजन इत्यादि पात्रों का चित्रण मिलता है। एक सेवक का कर्त्तव्य था कि किसी काम का भार सिर पर लेने के पश्चात वो अपने स्वामी से केवल सत्य कहे। सत्यभाषण हेतु उसे अभय प्राप्ति का अधिकार था। वनेचर ने अपने इस अधिकार का सदुपयोग किया।

उधर शिशुपालवधम् में महाकवि श्रीमाघ ने उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण को परामर्श देने के प्रसंग द्वारा सेवक के अधिकारो का विवेचन किया है। एक परामर्शदाता के रूप में उद्धव को यह पूर्ण अधिकार था कि वो राजा को उचित सलाह प्रदान करे।

राजनीति मे नीति शास्त्रानुकूल भृत्यादि वर्ग को जीविका प्राप्त करने का अधिकार है। कार्य सिद्धि होने पर सेवको को उचित भूमि, सोना, चाँदी, घोडा आदि देने की व्यवस्था भी थी।

शिशुपालवधम् महाकाव्य का प्रतिनायक शिशुपाल स्वयं भी अपने अधीनस्थ सेवको को अश्व, गज, स्वर्ण आदि द्वारा पुरुस्कृत किया करते थे।

शिशुपालवधम् के ये उदाहरण इस बात का स्पष्ट संकेत देते है कि वेतन और पारितोषिक सेवको का मूल अधिकार था। सेवकों को आजीविका का भी पूर्ण अधिकार था। उद्धव जी श्री कृष्ण से कहते है कि आप ऐसे गुप्तचरों को शत्रुओ के राज्य में नियुक्त करें जिनके दोषों को दूसरा नहीं जानता तथा जो दूसरो के दोषो को स्वयं जानते है।

नैषधीयचरितम् में अनेकत्र सेवकों, दूतों का वर्णन मिलता है। जिससे पता चलता है कि सेवक, सेविकाए केवल सेवा के लिए ही नहीं होते थे प्रत्युत यथावसर अभिन्नमित्र का भी कार्य सम्पादन करते थे, यथा दमयन्ती विवाह प्रसंग।

कलाकार भी आजीविका हेतु वृत्ति के अधिकार को रखते हुए समाज में अमोद–प्रमोद हेतु सरस जीवन का अधिकार रखते थे। बृहत्त्रयी में विविध कलाकारों का वर्णन प्राप्त होता है। जिनमें नट, नर्तक, नर्तकियां, बादक, चित्रकार इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

राज परिवारों में दैनिक उत्तरदायित्वों के लिए संगीतज्ञों की नियुक्ति की जाती थी। तथा वे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का उत्साहपूर्वक निर्वाह करते थे यही नहीं युद्ध आदि प्रंसगो में भी संगीतज्ञ राजा द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए तूर्य भेरी पणव आदि वाद्ययंत्रो का उपयोग करते थे ताकि सैनिकों में युद्ध का उत्साह बढे।

वर्तमान युग में कलाओं का अध्ययन व्यवसायिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है परन्तु प्राचीनकाल में कलाएं आध्यात्मिक तथा व्यावसायिक दोनों ही रूप में प्रचलित थी। यथा शिशुपालवधम् में नारद जी की संगीत प्रतिभा आध्यात्म के लिए थी वही राजसी वर्णन, तथा लोक जीवन में कलाएं व्यवसायिक एवं मनोरंजन के रूप में मान्यता प्राप्त थी। संगीतज्ञो की विविध राज्य कार्यक्रमों तथा विवाह आदि मांगलिक कार्यो में अनिवार्य उपस्थिति होती थी

यही नहीं सामान्य प्रजा राजा से सम्मानपूर्ण व्यवहार पाने की अधिकारिणी थी। दुर्योधन प्रजा के सभी वर्गों के साथ सद्भावनापूर्ण और मर्यादित व्यवहार करता था। प्रजा के साथ दुर्योधन का ऐसा व्यवहार यथोचित और न्यायपूर्ण था और एक राजा के लिए अति शोभनीय था। निष्पक्ष न्याय पाना भी प्रजा का अधिकार है। दुर्योधन अपने गुरू द्वारा बताए गए उपदेशों का पूर्णतया पालन करते हुए यह नहीं देखता कि अन्यायी दुश्मन है या उसका कोई परिजन या पुत्र, सबको समदृष्टि से देखता है और उचित दण्ड देता है। राजा से सुरक्षा पाना भी प्रजा का अधिकार था।प्रजा वर्ग की सुरक्षा के लिए उस समय समाज के विविध वर्ग राजा को कर भी प्रदान करते थे। उदाहरण के लिए कृषक दुर्योधन को फसल का कुछ अंश कर के रूप में देते थे। तथा इसके प्रतिफल के रूप में राजा प्रजा को सुरक्षा प्रदान करता था। श्रीहर्ष के काल तक श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधृत वर्ण–व्यवस्था भग्नप्राय हो चुकी थी। आर्यो ने जिस स्वस्थ वर्ण–विभाजन को जन्म दिया था। समाज में अब उसका रूप विकृत हो चला था। यद्यपि कवि वर्णचतुष्ट्य की ओर इंगित करता है किन्तु समाज में अनेक जातियों एवं उपजातियों का उद्भव हो चुका था। नैषधीयचरितम् काव्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र के अतिरिक्त चाण्डाल, लुब्धक, किरात, धीवर,' बन्दीचारण वैतालिक, वनपाल, सारथि, जुलाहा, कुम्भकार, नापित, बढई (वार्द्धकि), रजक स्वर्णकार, नर्तकी, भण्ड, नट, ऐन्द्राजालिक, शिल्पी, चित्रकार आदि जातियों का भी उल्लेख मिलता है । समाज में इनके चित्रण अतिसंक्षिप्त है इनके अधिकारों के सन्दर्भ में कोई विशेष वर्णन प्राप्त नहीं होता है लेकिन जो भी विवरण प्राप्त हो रहे है उनसे यही प्रतीत होता है कि शूद्रवर्गीय कलाकारों को समाज में पूर्ण आदर प्राप्त था। जिसके आधार पर हम कह सकते है कि प्रजा में शूद्र वर्ग प्रायः उपेक्षित रहा था परन्तु उसके जीवन के अधिकारों का हनन नहीं किया गया था और वें अपने जीवन से सन्तुष्ट थे।

♦♦♦♦

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तररामचरितम् भवभूति, 1968 ई.
2. उत्तररामचरितम् डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती वाराणसी प्रकाशन 2013
3. कवि और काव्य, पं. बलदेव उपाध्याय
4. कामसूत्र–वात्सायन प्रतिभा प्रकाशन 2005
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र, वाचस्पति गैरोला
6. काव्यालङ्कार, आचार्य भामह, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1962 ई.
7. काव्यदर्श, आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विधाभवन वाराणसी, 2008 ई.
8. काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, गवर्नमेण्ट ओरियन्टल सीरिज 4, पूना, 1938 ई.
9. काव्या प्रकाश, आचार्य मम्मट, ज्ञान मण्डल लिमिटेड वारवणसी, 2017 वि.सं.
10. किरातार्जुनीयम् आचार्य भारवि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1961
11. किरातार्जुनीयम् घण्टा पथ "सुधा" आचार्य शेषराज शर्मा रेग्मीः कृत्या चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी द्वितीय प्रकाशन, 1999
12. कुमारसम्भवम्, कालिदास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,1963
13. ध्वन्य लोक आनन्दवर्घन गौतम बुक डिपो, दिल्ली, 1952
14. धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ. पी.वी.काणे
15. निरूक्तम, डॉ. कपिलदेव शास्त्री साहित्य भण्डार, मेरठ 2001
16. नैषधीयचरितम्, श्रीहर्ष निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1952
17. नैषघमहाकाव्यम्, श्री हर्षचरित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1954
18. नैषघमहाकाव्यम्, डॉ. देवर्षि सनाढय शास्त्री, चौखम्बा कृष्णादास अकादमी, बनारस, 1954

19. नैषधीयचरितम् की शास्त्रीय मीमासां, डॉ. रामबहादुर शुक्ल ईस्टर्न बुक लिंकर्स 2005
20. नैषध कालीन भारत, डॉ. गायत्री द्विवेदी, रचना प्रकाशन, जयपुर 2007
21. नैषध का काव्य शास्त्रीय अध्यन डॉ. मथुरादत्त जोशी बाके बिहारी प्रकाशन, आगरा 1999
22. नैषध परिशीलन डॉ. चण्डिका प्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहबाद, द्वितीय संस्करण 1992
23. नैषधीयचरितम् की शास्त्रीय मीमासां डॉ. रामबहादुर शुक्ल, ईस्टर्न बुक लिंकर्स 2005
24. नैषध समीक्षा, प्रो. देवनारायण झा, नाग पब्लिशर्स, 2001
25. प्राचीन भारतीय साहित्य, डॉ. रामजी उपाध्याय
26. प्राचीन भारतीय संस्कृति के मूलतत्व, डॉ. बाबूराम त्रिपाठी
27. बृहत्त्रयी–एकतुलनात्मक डॉ. सुषमा कुल श्रेष्ठ ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1983
28. बृहत्त्रयी परिशीलन काव्य, शास्त्रीय खण्ड, प्रो. राधाबल्लभ त्रिपाठी, 2013
29. बृहत्त्रयी परिशीलनम् (परिचय खण्ड), प्रो. सुखदेव भोइ श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विधा पीठम् नईदिल्ली, 2013
30. बृहत्त्रयी और लघुत्रयी पर वैदिक प्रभाव आचार्य डॉ. श्रीमति सुषमा स्नातिका 1992
31. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डॉ. नरेन्द्र
32. भारतीय नाट्य शास्त्र की परंपरा और दशरूपक, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1963 ई.
33. भारतीय प्रज्ञा मोनियर विलियम्स

34.भारतीय संस्कृति की रूप रेखा पृथ्वी कुमार अग्रवाल, 1969 ई.

35.भारतीय साहित्यशास्त्र, पं. बलदेव उपाध्याय, 1949ई.

36.भारत में मानवाधिकार, डॉ. अरूण चतुर्वेदी

37.भारत में मानवाधिकार, डॉ. संजय लोढ़ा

38.भारत का संविधान डॉ. पाण्डेय

39.भारतीय साहित्यशास्त्र काव्यांलकार, डॉ. भोला शंकर व्यास

40.मानवाधिकार, डॉ. मधुमंजरी दुबे

41.मानवाधिकार विविध आयाम, डॉ. रमेश प्रसाद गौतम

42.मानवअधिकार एवं कर्त्तव्य, प्रो. आर.पी. जोशी

43.मानवअधिकार एवं महिलाएँ, प्रकाश नारायण नाटानी

44.मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार, डॉ. जी. पी.नेमा

45.मानवाधिकार जेन्डर एवम् पर्यावरण डॉ. तपन विसवाल विवा बुक्स प्राइवेट लिमिटेड 2009

46.महाकवि भारवि एवं माघ, डॉ. शिवाकान्त शुक्ल, शारदा प्रकाशन फैजाबाद, 1992

47.मनु स्मृति पण्डित रामेश्वर भट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली 2011

48.महाभारतश्रीकृष्ण–द्वैपायन, गीता प्रेस, गोरखपुर 2013 वि.सं.

49.महाकविमाघ, डॉ. मनमोहन जगन्नाथ शर्मा, 1963 ई.

50.मेघदूत कालिदास, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी, 1962ई.

51.योग दर्शन, हरिकृष्ण, दास गोयन्दका, गीता प्रेस गोरखपुर, सम्वत् 2069

52.रघुवंश कालीदास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1961

53.विष्णु पुराण श्री मुनिलाल गुप्त, गीता प्रेस गोरखपुर, 2009 वि.सं.

54.शिशुपालवधम्, आचार्य माघ, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1955

55. शिशुपालवधम्, पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विधा भवन, वाराणसी 2013
56. शिशुपालवध महाकाव्य, में माघ का जीवन दर्शन डॉ. शंकरलाल शास्त्री वाड़्मय प्रकाशन, जयपुर 2010
57. संस्कृतक विदर्शन, डॉ. भोला शंकर व्यास, 1968ई.
58. संस्कृत काव्यकार, डॉ. हरिदत्त शास्त्री, 1962 ई.
59. संस्कृत के महाकवि और काव्य, डॉ. रामजी उपाध्याय 1965 ई.
60. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, 1963 ई.
61. संस्कृतसाहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिल देव द्विवेदी आचार्य कटरा रोड, इलाहबाद 2009
62. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. मैकडानल, 1962 ई.
63. संस्कृत साहित्य का इतिहास डॉ. जगन्नारायण पाण्डेय जगदीश संस्कृत पुस्तकालय जयपुर 2006
64. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. कीथ, 1960 ई.
65. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. बलदेव उपाध्याय, 1968 ई.
66. संस्कृत सुकवि समीक्षा, डॉ. बलदेव उपाध्याय, 1963 ई.
67. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. पुष्करदत्त शर्मा अजमेरा बुक डिपो जयपुर 1992
68. साहित्य दर्पण , डॉ. निरूपण विद्यालङ्कार साहित्य, भण्डार मेरठ 2001
69. वैदिक धर्म एवं दर्शन, डॉ. कीथ
70. वैदिक साहित्य और संस्कृति, वाचस्पति गैरोला, 1969 ई.
71. वैदिक संहिता ओंमेनारी, डॉ. मालती शर्मा, सम्पूर्णा नन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, विक्रम सम्वत 2048

72..वेणीसंहार–नाटकम्, पण्डित परमेश्वर दीन पाण्डेय एवं श्री अवनि कुमार पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2012
73.हिन्दुसभ्यता, डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी, 1958ई.
74.श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीता प्रेस गोरखपुर, 2002 वि.सं.
75.श्री महाकवि श्रीहर्ष, डॉ. वेदप्रकाश शर्मा ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर

कोष–ग्रन्थ

1. भारतीय साहित्य कोष डॉ. नरेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नईदिल्ली
2. संस्कृत हिन्दी कोष वामन शिव राम आप्टे प्रकाशन, जयपुर 2004
3. अमर कोष निर्णय, सागर प्रकाशन, मुम्बई
4. हिन्दी संस्कृत शब्द कोष, डॉ. प्रकाश पाण्डेय संस्कृत भारती माता मन्दिर गली झण्डे वाला, नई दिल्ली
5. आदर्श हिन्दी संस्कृत शब्दकोष, डॉ. रामस्वरूप–रसिकेश चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
6. महाभारतकोष (भाग –1,2), डॉ, रामकुमार राय

पत्र–पत्रिकाएँ

1. सम्भाषणसंदेश–चैन्नई
2. शोध प्रभा–नईदिल्ली
3. भारती पत्रिका–जयपुर (राज.)
4. राजस्थान पत्रिका–जयपुर संस्करण
5. सागरिका–सागर, मध्यप्रदेश
6. संस्कृतम्–अयोध्या

7. गाण्डीवम्–वाराणसी

8. भाषा–गन्तूर

9. शारदा–पूना

10. संस्कृत साकेत–अयोध्या

11. संस्कृत मंजुषा–कलकत्ता

12. जयतुसंस्कृतम्–काठमाण्डू

13. भारती–जयपुर

14. संस्कृतरत्नाकर–दिल्ली

15. भारतोदय –गुरूकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार

16. स्गमनी–प्रयाग

17. विश्वसंस्कृतम्–होशियारपुर

18. पुराणम्–वाराणसी

19. संस्कृत प्रतिभा–नईदिल्ली

20. विद्वत्कला–गुरूकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

21. अमृतवाणी–बैंगलोर

22. दृक्–इलाहबाद

23. सरस्वतीसौरभम्–जयपुर

24. संस्कृत भारती–नई दिल्ली

25. रिसर्च लिंक–इन्दौर

♦ ♦ ♦ ♦